शाहजहाँ के शासन काल के विशेष सन्दर्भ में 17वीं सदी ई० में उत्तर भारत की सामाजिक दशा

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अंतर्गत

इतिहास विषय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध - प्रबंध (Thesis)

2005

शोध निर्देशक

डॉ. राम सजीवन शुक्ल

एम.ए., पी-एच.डी., एल.टी., साहित्य रत्न

रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व

मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोंच, जालौन

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

प्रस्तुतकर्ता

विनोद कुमार शाही

कोंच (जालौन)

Dr. Ram Sajiwan Shukla
M.A., Ph. D., L.T., Sahitya Ratna
Reader, Dept. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
MPPG College, Konch, Jalaun
Bundelkhand University, Jhansi

Brajeshwari Colony
Konch, Jalaun
Ph. : o5165 - 244549

CERTIFICATE

This is to certify that the Research Work embodied in the thesis submitted for the degree of "Doctor of Philosophy" (Ph.D.) in History, entitled. "Social Condition of Northern India During Seventeenth Century A.D. with special reference to the reign of Shahjahan." is the original research work done by Vinod Kumar Shahi.

He has worked under my guidance and supervision for the required period.

(Dr. Ram Sajiwan Shukla)
M.A., Ph. D., L.T., Sahitya Ratna
Reader, Dept. of Ancient Indian History
Culture & Archaeology
MPPG College, Konch, Jalaun
Bundelkhand University, Jhansi

प्रस्तावना

मुगलो के इतिहास में शाहजहाँ के शासनकाल को 'स्वर्ण काल' कहा गया है यह वह काल है जो ऐतिहासिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इतना समुन्नत हो चुका हो जो आने वाली पीढ़ियो के लिए अनुकरणीय बन जाय। निःसन्देह शाहजहाँ का काल सभी क्षेत्रों में उन्नति की उच्च पराकाष्ठा पर पहुच चुका था। यह काल सुव्यवस्थित, मुगल प्रशासन, सामाजिक, सांस्कृतिक उन्नति, वास्तुकला, साहित्य, समन्वय तथा शान्तिमय जीवन के लिए विशेष रूप से याद किया जाता हैं 17वीं शताव्दी के इतिहास में विद्वानो एवं शोध कर्त्ताओं ने उत्तर भारत के इतिहास को उजागर करने की दृष्टि से अपने-अपने प्रयास किये है किन्तु उत्तर भारत के सामाजिक इतिहास का सम्यक अध्ययन अभी तक नहीं किया जा सका है। अतएव यह शोध प्रबन्ध शाहजहाँ कालीन उत्तर भारत के सामाजिक इतिहास को प्रकाश में लाने का एक विनम्र प्रयास है।

शाहजहाँ कालीन सामाजिक इतिहास पर कुछ लेख प्रकाशित हुए है इन प्रकाशनो का मूल स्रोत समकालीन फारसी साहित्य हैं। इस काल में अनेको विदेशी यात्री आये तथा अपने यात्रा वृतान्त में उत्तर भारत की सामाजिक स्थिति पर लेख भी प्रस्तुत किए। समकालीन हिन्दी कवियों ने भी उस समय के रीति-रिवाज, सामाजिक जीवन, सामाजिक संरचना, मान्यताओं इत्यादि का वर्णन कई स्थानों पर अत्यन्त स्पष्ट और सुन्दर रूप में किया है। आवश्यकतानुसार गैर फारसी ग्रन्थों के साथ-साथ समकालीन फारसी ग्रन्थों का भी इस शोध प्रबन्ध में प्रयोग किया गया है। ताकि तत्कालीन समाज का स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया जा सकें।

उत्तर भारत शाहजहाँ के शासन काल में एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। ऐतिहासिक घटनाक्रम के पूर्व मुगलकाल में इसकी सीमाओं में अनेक परिवर्तन हुए। सर्वप्रथम इसकी सीमाओं कों सुनिश्चित और सुरक्षित करने का श्रेय अकबर को मिला आइन-ए-अकवरी में अवुलफजल ने यह उल्लेख किया है कि दस-साला बन्दोबस्त शुरू करते समय अकबर ने साम्राज्य को 12 भागों में इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, विहार, वंगाल, देहली, काबुल, लाहौर, मुल्तान और मालवा विभक्त किया एवं उनमें से प्रत्येक का नाम सूबा रखा।

इस शोध प्रबन्ध में 1627ई0 से 1658 ई0 तक के सामाजिक इतिहास को प्रस्तुत किया गया है उस समय हिन्दू और मुसलमान दोनो सामाजिक दृष्टि से उच्च, मध्यम एवं निम्न वर्गो में विभाजित थे। उच्च वर्ग के अन्तर्गत जागीरदार, जमीदार, सरकारी अधिकारी, व्यापारी एवं सरकारी अमीर आते थे। मध्यम वर्ग के अन्तर्गत उलेमा, वैद्य, हकीम, कवि, लेखक, चित्रकार, छोटे-मोटे साहूकार तथा लघु उद्योगो के स्वामी आते थे। यह वर्ग अत्यन्त छोटा था और मुख्य रूप से नगरों एवं बड़े-बड़े कस्वों तक में ही सीमित था। समाज के निम्न वर्ग में किसान, भूमिहीन, खेतीहर करीगर एवं मजदूर आते थे। यह वर्ग अत्यधिक बड़ा एवं निर्धनता का शिकार था।

शाहजहाँ के शासन में उत्तर भारत का राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास पर अनेक विद्वान इतिहासकारों ने प्रभूत प्रकाश डाला है उनके समस्त अभिलेखो का एक से अधिक वार सम्पादन व प्रकाशन किया जा चुका है, इन इतिहासकारों में बेनी प्रसाद, अब्दुल अजीज, इरफान हवीव, सरटामस रो, लईक अहमद, पी0एन0 चोपड़ा, वी0 एन0 पुरी, एम0 एन0 दास, परमात्माशरण, हरिश्चन्द्र वर्मा, आर्शिवादी लाल श्रीवास्तव, हरिशंकर श्रीवास्तव, आदि प्रमुख है इन समस्त विद्वानों की कृतियो का यथासम्भव अध्ययन करने के पश्चात मैं शाहजहाँ के शासनकाल से प्रभावित होकर उसके सामाजिक दशा' को अपने शोध विषय के रूप में चुना। अपने इस संकल्प को असली रूप प्रदान करने में मैं तव सफल हो सका जब मेरी मुलाकात, मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय कोंच, जालौन के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के रीडर एवं लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासकार डॉ रामसजीवन शुक्ल से

कोंच में हुयी, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा 'माइनर रिसर्च प्रोजेक्ट' के अन्तर्गत अनुदानित 'बुन्देलखण्ड का ऐतिहासिक भूगोल' पर कार्य कर रहे है, डॉ शुक्ल अपने शोध प्रबन्ध 'इण्डिया एज नोन टू हरिभद्रसूरि' पर पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके हैं। उन्ही के द्वारा समय-समय पर प्रदत्त उत्साह तथा निर्देशन के परिणाम स्वरूप इस विषय को मैं शोध स्वरूप दे सका हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रवन्ध को आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है प्रथम अध्याय में 'समाज की संरचना' पर सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें शाहजहाँ कालीन उत्तर भारतीय समाज, मुस्लिम समाज, हिन्दु समाज की संरचना, जाति प्रथा पर सक्षिप्त और समीचीन प्रकाश डाला गया है इसी अध्याय में परिवार के संस्कार, हिन्दुओं के संस्कार, जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, अन्नप्रासन संस्कार, मुण्डन संस्कार, उपनयन संस्कार, विवाह संस्कार, अर्न्तजातीय विवाह, अन्त्येष्टि संस्कार और उससे सम्बन्धित रीतियों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। मुसलमानों के संस्कारों पर भी प्रकाश डाला गया है जैसे मुसलमानों के जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, वार्षिक जन्मोत्सव छट्ठी तथ अत्त्योष्टि संस्कार और उससे सम्बन्धित रीतियों पर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस्लाम का हिन्दू समाज पर प्रभाव, इस्लाम का हिन्दू धर्म पर प्रभाव तथा इन दोनो के समन्वय की प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय में मुगलों तथा हिन्दुओं के भोजन एवं पेय पदार्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। उत्तर भारत में शाकाहारी भोजन एवं मांसाहारी भोजन का वर्णन किया गया है। उच्च वर्ग के भोजन तथा मध्यम और साधारण वर्ग के भोजन परिस्थितियाँ रूचि एवं आर्थिक सम्पन्नता आदि पर पूरी तरह से निर्भर करती थी। मध्यम एंव निम्न वर्ग के हिन्दू और मुसलमान दोनो उत्तम किस्म के भोजन पर ही सन्तोष करते थे। हिन्दुओं का सामान्य भोजन चावल, साग सब्जी, रोटी, दाल आदि था जबकि सामान्य मुसलमान रोटी, पराठे तथा गोस्त व कबाब खाना पसन्द करता था, इस तथ्य का गवेषणापूर्ण अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। हिन्दुओं के रसोई घर तथा मुसलमानों के खाने की विधि का वर्णन किया गया है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनो में ही धर्म के अनुसार मादक द्रव्यों का सेवन निषिद्ध है परन्तु मुगलकाल में हिन्दू और मुसलमान दोनो

ही शराब, ताड़ी, अफीम, भांग आदि का सेवन करते थे साथ में तम्बाकू पान एवं सुगन्धित द्रव्यों का सेवन समाज का बहुसंख्यक वर्ग नहीं करता था इन तथ्यों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

तृतीय अध्याय में वेष भूषा, एवं सौन्दर्भ प्रसाधन तथा आभूषण का नवीन व्याख्याओं एवं सुझाओं के साथ वर्णन किया गया है इनमें उच्च वर्ग के हिन्दू, मुसलमानो का बस्त्र (पोशाक) लगभग एक तरह की होती थी। उस समय की पोशाक में सिर पर पगड़ी बदन में नीमजामा टांगो में टंखनो से ऊचा तंग मोहरी का पायजामा, पाँवो में ऊची एड़ी का जूता और कमर में जामे के उपर पटका सम्मिलित था। इन वस्त्रों के स्वरूप क्रमशः नये फैशनो के अनुसार परिवर्तन होता रहा। जैसे अगंरखे के बाद नीमा का प्रचलन समाप्त हो गया और उसके स्थान पर शलुके का प्रचलन हो गया। अंगरखे की बनावट में भी परिवर्तन आया। सिर की पगड़ी क्रमशः छोटी होती गयी और विभिन्न तरह की टोपियों का प्रचलन हुआ, जिन्हे इस अध्याय में वर्णित किया गया है। मध्यम और निम्न वर्ग के हिन्दू और मुसलमानों की पोशाक साधारण कमीज, पायजामा तथा टोपी होती थी। इसी तरह एक हिन्दू का पोशाक धोती अथवा सूती लगोंट और उपरी वस्त्र के रूप में चादर तथा सिर पर पगड़ी होती थी लेकिन दोनों वर्गों के हिन्दू तथा मुसलमानों के मध्य पोशाको के आधार पर अन्तर करना कठिन था क्योंकि वे पारस्परिक मेल जोल के कारण एक दूसरे के वस्त्रों को भी धारण करते थे आदि का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रियों के पोशाक में स्पष्टतया भेद था हिन्दू स्त्रियां साड़ी तथा आंगिया धरण करती थी जबकि मुस्लिम स्त्रियां तंग मोहरी का पायजामा सीने पर छोटी और तंग आस्तीनो का अंगिया और पेट तथा पीठ को छिपाने के लिए विशेष प्रकार की कुर्त्ती तथा दुपट्टा धारण करती थी। स्त्रियों की इस पोशाक में आर्थिक समानता का प्रभाव उसके कपड़ो आदि पर पड़ता था आदि का सम्यक वर्णन किया गया है। उत्तर भारतीय हिन्दू तथा मुसलमान दोनो स्त्री पुरूष अपने शारीरिक सौन्दर्य एवं आकर्षण को बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रसाधनो का उपयोग करते थे। स्नान के लिए सुगन्धित जल, कस्तूरी चन्दन, धूप-केसर,

कुमकुम आदि का उपयोग करते थे। हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रियाँ अपने चेहरे को आकर्षक बनाने के लिए सोलह श्रृगांर करती थी और विभिन्न प्रकार के प्रसाधनों का उपयोग करती थी आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनो स्त्री पुरूष विभिन्न प्रकार के आभूषण जैसे कुण्डल, पायल, विछिया, हार आदि धारण करते थे, उच्चवर्ग के लोग, सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात तथा निम्नवर्ग के लोग चाँदी,ताँवा,हाथी दाँत,पीतल आदि के आभूषण धारण करते थे इत्यादि का सम्यक अध्ययन इस अध्याय मे किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में शाहजहाँ के शासन काल के खेलकूद एवं आमोद प्रमोद तथा त्योहारों से सम्बन्धित विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनमें विभिन्न प्रकार के मनोरंजन के साधन जैसे शिकार, घुड़सवारी, जानवरों की लड़ाई, तीरंदाजी, मल्लयुद्ध, कवड्डी, चिक्का, तैराकी आदि मध्यम एवम् साधारण वर्ग के मनोरंजन का साधन था। गृहखेल एवं मनोरंजन के साधनों के अन्तर्गत शतरंज, चौपड़, चौगान, कुश्ती, मुक्के का युद्ध, दौड़, गंजीफा, गोटियों का खेल आदि का विस्तृत अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त नाटक, भाँट, चारण, चक्कालो एवं पेशेवर विदूषको द्वारा भी लोगो का मनोरंजन किया जाता था और कबूतर का उड़ाना, पशुओं की लड़ाई नाव चलाना आदि मनोरंजन के साधनो का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में हिन्दू तथा मुसलमानों के धार्मिक एवं सामाजिक त्योहारों की भी विवेचना की गयी है इनमें मुसलमानों में नौरोज, मुहर्रम, शवे-वरात, ईद-उल-फितर, ईद-उल-जुहा, वारा-वफात, आवी-पाशा, ईद-मिलाद आदि त्योहारों का विस्तृत वर्णन किया गया है। हिन्दुओं में वसन्त पंचमी, होली, रक्षा-बन्धन, हिडोल उत्सव, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, राधाष्टमी, बामन जयन्ती, दशहरा, धनतेरस, दीपावली, गोवर्धन पूजा, भैयादूज, शिवरात्रि, रामनवमी, गनगौर, रथयात्रा तथा अन्य त्योहार प्रमुख रूप से मनाये जाते थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न अवसरो पर हिन्दू और मुसलमानो में व्रत एवं रोजा रखते थे। सूवा अवध में हिन्दूओं तथा मुसलमानों के अनेको मेले लगते थे जिनमें निमखार अयोध्या, सूरजकुण्ड, वहराईच एवं लखनऊ के मेले प्रमुख थे आदि का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में उत्तर भारतीय हिन्दू और मुसलमानों के संस्कारो का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है जिसमें अतिथि सत्यकार तथा सामाजिक शिष्टाचार एवं व्यवहार के अनेको तरीके प्रचलित थे। दोनो वर्गो के लोग किसी व्यक्ति से मिलने पर अलग-अलग ढंग से अभिवादन, अतिथियों का स्वागत एवं बड़ो के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिए वार्तालाप एवं बैठने के समय विशिष्ट बातो का ध्यान रखते थे। राजपूतो तथा शासको का स्वागत, नजराना एवं दरवारी शिष्टाचार आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है इसके साथ ही हिन्दू तथा मुस्लिम स्त्रिया भी इन तरीको का आपस में व्यवहार करती थी क्योंकि पर्दा प्रथा के कारण स्त्री पुरूषो का परस्पर मेल मिलाप नही होता था। हिन्दू तथा मुसलमान, पान-नमस्कार कुरनीश एवं तसलीम, सिजदा जमीवोस, दान आदि का विवरण प्रस्तुत किया गया है, यात्रीयो के लिए सड़को पर जल की व्यवस्था, यात्रीयो के रहने के लिए विश्रामगृह, जनता के लिए अस्पताल, धार्मिक स्थानों पर दान की व्यवस्था आदि से सम्बन्धित विचारो का तथ्यपरक अनुशीलन किया गया है।

षष्ट्म अध्याय में उत्तर भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति पर समसामयिक अभिलेखों के आधार पर विवेचना की गयी है, जिसमें मुगलकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति भी लगभग आज के ही समान थी। उनको लड़की के रूप में बोंझ समझा जाता था। एक पत्नी के रूप में उन्हे कर्तव्यों के बोंझ से दवा दिया जाता था। उनको पति के घर कड़े नियन्त्रण में रहकर पतिब्रत धर्म का निर्वाह करना पड़ता था। यद्यपि हिन्दुओं में उन्हें अर्द्धांगिनी के रूप में माना जाता था परन्तु सभी निर्णयों में पुरूष की प्रधानता रहती थी। पत्नी के रूप में मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी आदि का समीचीन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। उत्तर भारत में बड़े पैमाने पर सती प्रथा का प्रचलन नही था। एक विधवा स्त्री को कड़े नियन्त्रण में सादा और एकांत जीवन व्यतीत करना पड़ता था। स्त्रीयों को समाज में केवल माता के रूप में विशेष सम्मान मिलता था। नर्तकी तथा वेश्या के रूप में स्त्रियों को हेय एवं घृणा की दृष्टि से देखा जाता था आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है स्त्रियों की सामाजिक स्थिति को

दयनीय बनाने में पर्दाप्रथा, वाल-विवाह, वहुविवाह, सतीप्रथा एवं शिक्षा की कमी का महत्वपूर्ण योगदान था। मुगलकाल में स्त्रियों की शिक्षा पर समुचित ध्यान नही दिया गया उनको केवल विलासिता का साधन समझते थे जिससे उनका नैतिक पतन भी हो रहा था। इस प्रकार उनकी सामाजिक स्थिति बड़ी ही दयनीय थी आदि का समसामयिक अभिलेखो से प्राप्त विचारधाराओं को इस अध्याय में अधीत किया गया है।

सप्तम् अध्याय में साहित्य और शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। उत्तर भारत में मुगलों के काल में फारसी साहित्य को पर्याप्त वढ़ावा दिया गया। आइन-ए-अकवरी में अकवर के दरवार में 59 सर्वश्रेष्ठ कवियों के नामों का उल्लेख है शाहजहाँ ने अपने दरवार में अवूह जालिह, कलीमहाजी, मुहम्मद जान और चन्द्रभान ब्रह्मण जैसे महान कवियों को रखा था। अब्दुल हमीद लाहौरी ने वादशाहनामा, इनायत खाँ ने शाहजहाँनामा और मुहम्मद सालिह ने अमल-ए-सालिह नामक ग्रन्थों की रचना की आदि से सम्बन्धित अभिलेखो से प्राप्त ज्ञान के आधार पर इस अध्याय में सम्यक प्रकाश डाला गया है। इस काल में काव्य, नाटक, नाटयशास्त्र दर्शन आदि सभी पर ग्रन्थ लिखे गये। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि चिन्तामणी, मतिराम, विहारी और कविन्द्र ने अवधी तथा ब्रजभाषा में रचनांए की। हिन्दू शिक्षा के केन्द्र लखनऊ, वाराणसी, नालन्दा तथा मुस्लिम शिक्षा के केन्द्रो में आगरा, जौनपुर, दिल्ली, काश्मीर, गुजरात, ग्वालियर, लखनऊ, सियालकोट, अम्वाला, थानेश्वर प्रमुख रूप से थे इनमें उर्दू, फारसी, अरबी आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। मुगलकाल में वर्तमान की भाति परीक्षा प्रणाली नही थी। शिक्षक की सलाह पर छात्रों को निम्न से उच्च्व शिक्षा की ओर बढ़ाया जाता था। विद्यार्थियों को उनमें अच्छे कार्य के लिए पुरस्कृत किया जाता था वही पर उनकी गलतियों के लिए उन्हे दण्डित भी किया जाता था। मुगलकाल में वर्तमान समय की भाँति सैन्य शिक्षा के लिए किसी भी प्रकार का विद्यालय नही था शासक अपने शाहजादों को सैनिक शिक्षा दिलाने के लिए तथा शासन प्रबन्ध को सिखाने के लिए व्यक्तिगत रूप से शिक्षा की व्यवस्था करते थे आदि

का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अष्टम् अध्याय में शाहजहाँ के काल में कला का विकास किस अवस्था तक हुआ है का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, इनमें स्थापत्य कला, विकास की चरम सीमा तक पहुच गयी थी। शाहजहाँ कालीन कला दो संस्कृतियों के पारस्परिक सम्पर्कों का प्रतिफल था। शाहजहाँ को संगमरमर अत्यधिक प्रिय था अतः उसने सभी भवनों का निर्माण भी संगमरमर से करवाया। दीवान-ए-आम, जहाँगीर महल, दीवान-ए-खास, शीश महल, मोती मस्जिद खास महल, मुसम्मन वुर्ज, नगीना मस्जिद, जामा मस्जिद, लालकिला, ताज महल आदि सुन्दर भवनों का निर्माण संगमरमर से कराया गया है इन भवनो में स्तम्भ, गुम्बद, खम्भे, वुर्ज, मीनारें आदि बनाये गये है आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही उच्च वर्गों के महल, सूरत के भवन, कश्मीर के भवन, गरीवो के लिए मकान, मध्यम वर्ग के मकान, सराय तथा विश्राम गृह, कालपी में स्थित खानकाह मुहम्मदया भवन, कोंच में स्थित हजरत खुर्रमशाह की खानकाह (दरगाह) आदि पर सम्यक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। चित्रकला में अनेक परिवर्तनों के साथ नयी विधि द्वारा चित्र बनाये गये, इस काल के प्रमुख चित्रकार मोहम्मद फकीरूल्ला, मीरहाशिम आदि थे। इस काल के चित्रकला में स्वाभाविकता तथा स्वच्छता का अभाव था इसमें तड़क-भड़क तथा कृत्रिमत्ता आ गयी थी आदि का समीचीन अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। मुगलकाल में नृत्य एवं संगीत को विशेष महत्व दिया जाता था। इसका आयोजन मनोरंजन के लिए महलो में नियमित रूप से किया जाता था। हिन्दुओं में नृत्य स्त्री तथा पुरूषों के लिए ही एक महत्वपूर्ण सौन्दर्य वोधी तथा आध्यात्मिक अभ्यास था और सम्पन्न हिन्दू परिवारो में लड़कियों को वचपन से ही नाचने, गाने तथा खेलने कूदने की शिक्षा दी जाती थी आदि पर सम्यक प्रकाश डाला गया है।

अन्त में समस्त उपलब्ध सामग्री का समवेत अध्ययन करने के उपरान्त सामान्य पाठकों के लिए सम्पूर्ण विषय वस्तु को उपसंहार के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। शाहजहाँ कालीन उत्तर भारत में उपलब्ध समस्त साधनों, स्रोतों और निष्कर्षो को एक स्थान पर पूर्णता प्रदान कर पाना उतना ही कठिन है जैसे पेड़ की ऊँची डाल पर लगे फल को तोड़ने के

लिए कोई छोटा आदमी (बौना) हाथ उठाये खड़ा हो कालिदास के शब्दों में -

"प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः।"

तथापि हमने शाहजहाँ कालीन उत्तर भारत के सामाजिक इतिहास से सम्बन्धित विवरणों को इस शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत करने का यथासम्भव प्रयास किया है। आशा है कि पाठक हमें न्यूनताओं के लिए अवश्य ही क्षमा करेंगे।

आभार प्रदर्शन

इस शोध-प्रवन्ध को पूर्ण करने में हमें जिन विद्वानों, मनीषियों, लेखको, इतिहासकारो, संस्थानों, पुस्तकालयों, और विज्ञजनों का सहयोग मिला है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

सर्वप्रथम मैं परमपिता परमेश्वर का धन्यवाद करते हुए शत्-शत् प्रणाम करता हूँ कि उनकी असीम कृपा से मुझे मानवीय जीवन प्राप्त हुआ। इसी जीवन के जीवंत अनुभव ने मुझे भारतीय होने का सौभाग्य प्रदान किया। मैं स्वयं को सौभाग्य शाली मानता हूँ कि मुझे मुगलकालीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में शोध करने एवं तत्कालीन सामाजिक विषय पर प्रकाश डालने का अवसर प्राप्त हुआ।

मैने प्रयत्न किया है कि उपरोक्त विषयों का क्रमबद्ध तरीके से वर्णन करूँ। मेरा लघु विश्वास यह भी है कि मेरा यह प्रयास पाठकों को पसन्द आएगा और इस दिशा में शोध करने वाले शोधार्थी वन्धुओं के लिए सहायक और प्रेरणा स्रोत होगा।

मै हृदय से आभारी हूँ अपने पूज्यनीय श्रद्धेय गुरू एवं लव्ध प्रतिष्ठ इतिहासविद् डां रामसजीवन शुक्ल जी का जिनकी प्रेरणा, आदर्शो एवं मार्गदर्शन द्वारा मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हो सका। मैं अपने गुरूजी के अविस्मरणीय सहयोग और ज्ञान का सम्मान करते हुए उनकी सराहना करता हूँ साथ ही मैं अपने परमपूज्य पिता एवं पूज्यनीया माता जी को भी धन्यवाद देना अपना गौरव समझता हूँ, जिन्होंने प्रथमतः मुझे शोध कार्य करने के लिए

न केवल प्रोत्साहित किया, अपितु पग-पग पर सदा सर्वदा मेरे हिम्मत को बढ़ाया। मै अपने भाइयों तथा रिश्तेदारो और पत्नी का भी आभारी हूँ जिन्होने समय-समय पर अनेक प्रकार से मेरी सहायता की है। मै उन विद्वानों तथा लेखकों एवं इतिहासकरों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। जिनकी कृतियों का इस शोध प्रवन्ध के लेखन में हमने भरपूर उपयोग किया है।

मैं हृदय से धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ अपने गुरू लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासविद डॉ राधेधर द्विवेदी रीडर इतिहास विभाग वुद्धस्नातकोत्तर महाविद्यालय कुशीनगर का जिन्होंने मेरे शोध ग्रन्थ को पूरा करने में मेरा भरपूर सहयोग किया। मैं अपने मित्र डा0 जे0पी0 राव और प्राचार्य डा0 जेड0 खान वारसी, एस0 एस0 विलायत हुसैन डिग्री कालेज, सीतापट्टी, देवरिया का आभारी हूँ जिन्होने इस शोध ग्रन्थ को पूरा करने में भरपूर सहयोग तथा उत्साह वर्द्धन किया। अन्त में शुभी कम्प्यूटर (नीरज कुमार द्विवेदी) सुभाष नगर कोंच को भी साधुवाद देता हूँ जिसने बड़ी तत्परता पूर्वक मेरे शोध प्रबन्ध को कम से कम समय में यथा सम्भव त्रुटि रहित टंकित किया।

मैं निम्नलिखित पुस्तकालयों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित करना चाहता हूँ जहाँ से मुझे पूर्ण सहायता एवं सहयोग प्राप्त हुआ, गायकवाड़ ग्रन्थालय काशी, हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी, कार्शीनागरी प्रचारिणी सभा काशी, इलाहावाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय इलाहावाद, शिवली अकादमी आजमगढ़, खुदावक्श पुस्तकालय पटना, नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय ग्रन्थालय, रेलवे ग्रन्थालय गोरखपुर, वुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय पुस्तकालय झाँसी, मथुरा प्रसाद स्नातकोत्तर महाविद्यालय पुस्तकालय कोंच। मैं उपरोक्त सभी वाचनालयों के प्रबन्धको को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होने समय-समय पर पुस्तकों एवं अपने अनुभवो द्वारा मेरा मार्गदर्शन किया।

V.K.Shahi
विनोद कुमार शाही
शोधकर्ता

विषय-सूची (अनुक्रमाणिका)

प्रथम अध्याय

समाज की संरचना

प्रथम अध्याय

समाज की संरचना

शाहजहाँ के काल का भारतीय समाज प्राचीन काल तथा मध्यकाल के सम्मिश्रण का प्रतिफल था। उस समय भारत में दो प्रमुख धर्मावलम्वी हिन्दू तथा मुसलमान निवास करते थे। यद्यपि कुछ भागों में वौद्ध, जैन, सिख तथा अन्य धर्मावलम्वी भी थे।

मोहसिन फानी ने अपनी किताव 'दविस्तान-ए-मजाहिव में जो शाहजहाँ के कुछ दिन पूर्व लिखी गयी थी, इन धर्मावलम्वीयों का उल्लेख किया है। जैसा सर्वविदित है मध्ययुग में धर्म और समाज एक दूसरे से सम्बन्धित थे अगर सही पूछा जाय तो समाज का पूरा ढाचा धर्म पर ही अवलम्बित था। इस लिए समाज भी धार्मिक विभाजन के आधार पर विभाजित था।

शाहजहाँ के काल में अनेक विदेशी यात्री आयें, जिन्होने समकालीन सामाजिक संरचना का चित्र उपस्थित किया हैं। साथ ही साथ शाहजहाँ के काल के समकालीन फारसी, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं के ग्रन्थों से उस काल के समाज का विवरण मिलता है। अतएव इसी आधार पर शाहजहाँ के काल के सामाजिक संरचना एवं जीवन का वर्णन करने जा रहा हूँ।

समाज का संरचना :-

हिन्दू तथा मुसलमान शाहजहाँ के साम्राज्य के प्रमुख अंग थे। यद्यपि इस्लाम का भारत में प्रवेश सिन्ध के अरब आक्रमण से माना जाता है। किन्तु इसका वास्तविक प्रभाव दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात हुआ है। प्रारम्भ में विजेताओं और भारतीय जनता में राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रो में संघर्ष

हुआ किन्तु कालान्तर में समन्वयवादी प्रवृति राजनीति, खानपान, वेशभूषा, रीति रिवाज, वस्तुकला, चित्रकला, इत्यादि में प्रकट होने लगें। धार्मिक क्षेत्र में भक्ति आन्दोलन और विशेषतया उसकी निर्गुण शाखा में इस्लाम का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

शाहजहाँ के राज्यारोहण के पूर्व अकबर ने एक समन्वयवादी भारतीय राष्ट्र का विकल्प उपस्थित किया था जिसके परिणाम स्वरूप भिन्न भिन्न क्षेत्रो में हिन्दू और मुसलमानों के सामाजिक मान्यताओं में समन्वय की धारा स्पष्ट रूप से चल पड़ी। कट्टर मुल्लाओं ने उसकी धार्मिक सहिष्णुता से असन्तुष्ट होकर जहाँगीर को अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हे सफलता नही मिली। इस तरह शाहजहाँ के राज्यारोहण के समय समन्वयवादी और विरोधी शक्तियाँ एक दूसरे से होड़ ले रही थी और इस शीत युद्ध का प्रभाव समाज पर भी दिखायी देता है।[1]

शाहजहाँ कालीन भारतीय समाज को हम दो भागों में विभाजित कर सकते है- मुस्लिम समाज तथा हिन्दु समाज। मुस्लिम समाज में सम्राट,अधिकांश मनसबदार, राज्य कर्मचारी तथा साधारण मुसलमान आते थे। हिन्दू समाज में कुछ मनसबदार, राजपूत राजा उनके कर्मचारी तथा अन्य जनता के लोग आते थे।[2]

---

1. इस प्रवृति के वृहद विवेचना के लिए देखिए-
डा0 ताराचन्द्र- इन्फ्लूएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर इलाहावाद,1954
शर्मा, श्रीराम- दि रेलिजस पालिसी आफ दि मुगल एम्पायर्स आम्सफोर्ड,1940
त्रिपाठी, राम प्रसाद- राइज एण्ड फाल आफ दि मुगल एम्पायर्स इलाहावाद,1955
वेनी प्रसाद- हिस्ट्री ऑफ जहाँगीर, इलाहावाद, 1940
टाइटस,एम0टी0- इण्डियन इस्लाम, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1930
2. सल्तनतकालीन संरचना के लिए देखिए-
अशरफ, के0एम0- लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, कलकत्ता,1935

यह विभाजन निम्नलिखित ढंग से स्पष्ट हो जायेगा-

मुस्लिम समाज
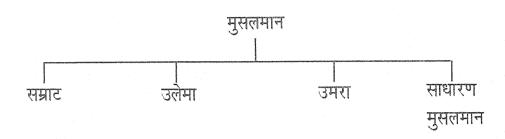
मुगल सम्राट धर्मावलम्वी थे। वे न केवल मुस्लिम समाज वल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज के सर्वोच्च व्यक्ति थे किन्तु उनके जीवन की मान्यतायें इस्लाम धर्म से अधिक प्रभावित थी।

सम्राट का जीवन :-

मुगल शासन राजतन्त्र था। सम्राट उसका सर्वोच्च व्यक्ति होता था। सर्म्पूण शाक्ति उसी में केन्द्रित थी। विना उसकी सहमति या स्वीकृति तथा जानकारी के कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय नही लिया जा सकता था। वह सेना का प्रधान सेनापति, प्रधान न्यायधीश तथा कार्यकारिणी का प्रमुख अधिकारी था। शाहीमहल, वित्त, केन्द्रीय मन्त्रालयों, प्रान्तीय शासन, किसानो की दशा, वस्तुओं के मूल्य, व्यापार यातायात, न्याय, विद्वान तथा कलाकारो का संरक्षण, विदेश नीति, नियुक्तियां इत्यादि राज्य के सभी कार्य प्रायः उसी के निर्देश से होते थे। सभी सरकारी कर्मचारी तथा मनसबदार अपनी नियुक्ति तथा पदोन्नति के लिए उस पर निर्भर रहते थे।[1]

सम्राट शाहजहाँ का रंग गेहुँआ तथा कद साधारण था। ललाट चौड़ा, भृकुटि उपर उठी हुई थी, नासिका तिरछापन लिए सीधी, आँखे भूरी तथा अत्यन्त चमकदार और पुतलियाँ काली थी। शाहजहाँ मुमताज महल की मृत्यु के

1. श्रीवास्तव, हरिशंकर- मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली 1974 पृ.27

पश्चात चश्मा भी लगाने लगा था।[1] और उसकी मृत्यु के दिन वुधवार को वह सफेद वस्त्र पहनता था। उसकी नाक में बाये तरफ एक मस्सा था। उसका मुँह छोटा था परन्तु उसके दाँत बहुत ही सुन्दर और साफ थे। उसकी वाणी वहुत ही मृदुल थी।[2] वह फारसी भाषा धारा प्रवाह बोलता था। अपने पिता एवं पितामह के विपरित उसकी दाढ़ी कट्टर मुसलमानी ढंग की थी। उसकी भुजाएँ न तो बहुत लम्वी थी और न ही बहुत छोटी थी। उसके दाहिने हाथ की चार उंगलियो पर तिल थे जो सौभाग्य की निशानी थी। वह धार्मिक व्यक्ति था तथा इस्लाम के नियमों पर चलने का प्रयत्न करता था। नमाज पढ़ना वह कभी नही भूलता था। जब वह राजधानी में रहता था नियम पूर्वक रोजा भी रखता था तथा इन पवित्र रात्रियों में वह आधा समय प्रार्थना और दान देने में व्यतीत करता था। वह बहुत सादा वस्त्र पहनता था जिसका उल्लेख आगे किया गया है। उसे इत्र का शौक था उसके कपड़े पर बहुत ज्यादा मात्रा में इत्र लगा रहता था। वर्तालाप में वह शिष्ट एवं सुसभ्य था।[3]

उलमा :-

इस्लाम धर्म पर चलने के लिए शरीयत का ज्ञान होना वहुत आवश्यक है। शरीयत के ज्ञाता तथा उसके अध्ययन में समर्पित व्यक्ति को आलिम (विद्वान) तथा सामुहिक रूप में इन्हे 'उलमा' कहा जाता है। इस्लामी शासन में उलेमाओ को शरीयत पर आधारित होने के कारण महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।[4] शासक स्थानीय कार्यों में शरीयत तथा इस्लामी कानून के विषय में परामर्श देने के अतिरिक्त सद्र के पद पर उलमा नियुक्त होते थे एवं उससे सम्वन्धित कार्यों का संचालन करते थे। इस तरह से न्याय तथा दान विभाग इनके प्रभाव में रहता था।[5]

---

1. कजवीनी, मिर्जा अमीनाई- वादशाहनामा, पव्लिक लाइव्रेरी लाहौर, पृ. 318
2. सक्सेना, वनारसी प्रसाद- मुगल सम्राट शाहजहाँ, जयपुर 1974, पृ. 249
3. सक्सेना, वनारसी प्रसाद- मुगल सम्राट शाहजहाँ, जयपुर 1974, पृ. 249
4. श्रीवास्तव, हरिशंकर- मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली 1978, पृ0 17
5. वही पृ. 17

अकबर के शासनकाल के प्रारम्भ में सद्र तथा उसके विभाग का महत्व था। उनके भ्रष्टाचार को देखकर अकबर ने उनकी शक्ति एवं उनके अधिकार को कम कर दिया। धर्म सहिष्णुता नीति के कारण भी अकबर के काल में उलमाओं को रचनात्मक कार्यों में लगा दिया। अव्दुर कादिर वदायूनी तथा कुछ अन्य उलमाओं को संस्कृत की पुस्तकों के अनुवाद में लगा दिया गया। किन्तु जो रूढ़िवादी उलमा थे वे सदा राज्य को एक इस्लामी राज्य के रूप में देखने की कल्पना करते थे। उन्होने अकबर की धर्म सहिष्णुता की नीति को इस्लाम विरोधी नीति समझा।[1] जहाँगीर के राज्यारोहण के समय रूढ़िवादी उलमा अकबर के शासनकाल में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करना चाहते थे।[2] इस सम्बन्ध में तत्कालिन धार्मिक नेता मुल्लाशाह अहमद ने मुगल दरबार के अनेक उच्च पद प्राप्त अधिकारियों को पत्र लिखा की जहाँगीर के शासन के आरम्भ में ही उसकी नीति में परिवर्तन करना आवश्यक है क्योकि यह कार्य बाद में कठिन हो जायेगा।[3]

शेख फरीद को जहाँगीर ने चार ऐसे विद्वान नियुक्त करने का आदेश दिया जो साम्राज्य को शरीअत के विरूद्ध होने वाले कार्यों को रोक सके। मुल्ला अहमद ने इस आदेश को वेकार समझकर इसका विरोध किया और उसने कहा कि ऐसे चार विद्वानों का मिलना मुश्किल है जो किसी बात पर एक मत हो सकें। उन्होने इस बात का सुझाव दिया कि इस कार्य के लिए एक ही विद्वान को नियुक्त किया जाय। किन्तु मुल्ला अहमद की इस बात का कोई प्रभाव नही पड़ा। रूढ़िवादियों को अकबर की अपेक्षा जहाँगीर पर अधिक विश्वास था। जहाँगीर ने उलेमाओं को प्रसन्न करने के लिए मुसलमानों के हितो पर विशेष ध्यान दिया परन्तु उसने अकबर कालीन नीति में परिवर्तन नही किया। उसके शासनकाल में भी उलमाओं को पर्याप्त सफलता नही मिली।[4] शाहजहाँ गद्दी

---

1. श्रीवास्तव, हरिशंकर- मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली 1978, पृ0 17/18
2. वही, पृ. 20
3. वही, पृ. 20
4. वही, पृ. 20

पर वैठने के पश्चात उलमाओं को सन्तुष्ट करना चाहता था। इस कारण शासन के प्रथम दशक में उसकी धार्मिक नीति का झुकाव रूढ़िवादियों के पक्ष में था। उसके वाद फिर से जहाँगीर कालीन धार्मिक साहिष्णुता की नीति स्थापित हो गई।[1]

शाहजहाँ के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह का इसमें प्रमुख योगदान था। इससे उलेमा निराश नही हुए और धीरे-धीरे उन्होने राजकुमार औरगजेंब को अपने पक्ष में कर लिया। उन्होंने दाराशिकोह के समन्वयवादी धार्मिक विचारधारा के विरूद्ध एक जिहाद की घोषणा कर दी। औरंगजेब ने दारा से अपने संघर्ष को एक धर्मयुद्ध का रूप देकर उलेमाओं को अपने पक्ष में कर लिया। यद्यपि दारा और औरंगजेब का युद्ध धार्मिक युद्ध नही था। वाढ़ा के सैय्यद जैसे धार्मिक लोग दारा की तरफ थे और राजपूत उमरा औरंगजेब के पक्ष में थे। औरंजगजेब का व्यक्तिगत झुकाव भी रूढ़िवादी परम्परा की तरफ था। उलेमाओं के सहयोग ने उत्तराधिकार के युद्ध में उसे और भी दृढ़ कर दिया। इस कारण इस काल में उलमाओं की शक्ति वढ़ गयी।[2]

उमरा वर्ग का जीवन

मुगलकालीन उमरा वर्ग राज्य का प्रतिरूप था और सम्राट जिस तरह रहता था उमरावर्ग भी उसी तरह रहने का प्रयत्न करता था। प्रायः साम्राज्य की सभी संस्थाए उसकी राजशक्ति को दृढ़ करने के लिए कार्य किया करती थी। सिद्धान्त सबसे उपर होने पर भी सम्राट अपनी नीतियों तथा आज्ञाओं के कार्यान्वयन के लिए उमरावर्ग पर ही निर्भर था। इन्ही की सहायता और परामर्श से शासन चलता था।[3]

मुगलकाल में उमरा दिल्ली सल्तनत की तरह शक्तिशाली न हो सके।

---

1. श्रीवास्तव, हरिशंकर- मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली 1978, पृ0 20
2. वही, पृ. 20
3. वही, पृ. 22

स्वंय उन्होंने गद्दी को प्राप्त करने का प्रयास नही किया केवल एक वार उमरा महावत खाँ ने जहाँगीर को अपने अधिकार में कर लिया था। यदि वह चाहता तो उसे मारकर राजगद्दी हासिल कर लेता। लेकिन मुगल सम्राट का गौरव इतना ज्यादा वढ़ गया था कि उसे साहस नही हुआ।[1]

राजगद्दी को स्वंय हस्तान्तरित करने का साहस न होने पर भी अपने महत्व को वढ़ाने के लिए उमराओं ने दल बनांए। इनमें जो महत्वाकाक्षी उमरा थे, विद्रोही राजकुमारों का साथ देकर कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर देते थे। शाहजहाँ के काल में औरंगजेब, मुराद और शुजा तथा औरंगजेब के काल में उसके पुत्र शाहजादा अकबर के विद्रोह में सम्राट के विरूद्ध उमराओं के एक वर्ग ने राजकुमारों का साथ दिया।[2] साधारण तथा मुगलकाल में उमरा सम्राट के प्रति स्वामिभक्त रहे। कुछ उमराओं ने विद्रोह किया किन्तु उनकी संख्या वहुत ही सीमित थी। सभी विद्रोह दबा दिये गये। सम्राटो ने भी उदारता का परिचय दिया। विद्रोहियों का साथ देने या विद्रोह करने पर भी अकसर उन्हे क्षमा कर दिया जाता था।[3]

प्रायः सम्राट उमराओं को सन्तुष्ट रखते थे किन्तु उनके अधिक शक्तिशाली होने के भय से वे सदा सर्तक रहते थे। सम्राट का राजत्व सिद्धान्त, दरबार की शान, सेना तथा राजसी संस्थाए उमराओ के मन में आदर तथा भय उत्पन्न किया करती थी। इस कारण वे सम्राट बने तथा मुगल राजत्व के प्रति स्वामिभक्त बने रहते थे।[4]

मुगलकाल में उमरा भिन्न-भिन्न देशो के लोग थे जिनमें ईरानी, तुरानी तथा भारतीय विशेषतया राजपूत प्रमुख थे। सम्राट मनसब, पद, उपहार तथा जागीर इत्यादि देकर इनको सम्मानित किया करता था। सम्राट तथा उसके

---

1. श्रीवास्तव, हरिशंकर- मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली 1978, पृ0 23
2. वही, पृ. 23
3. वही, पृष्ठ 23
4. वही, पृष्ठ 23

परिवार के वैवाहिक सम्बन्ध इन्ही के साथ स्थापित होते थे।[1]

ईरानी :-

हिन्दुस्तान में इस्लाम के प्रार्दुभाव से भारत और ईरान के वीच सांस्कृतिक सम्पर्क का नवीनीकरण हुआ। मुसलमानो के विजय के पूर्व चरण में तुर्की और अफगानियों का शारीरिक योगदान रहा जवकि पारसियों ने भारत में शासन कर रहे मुसलमानो के वुद्धि का उपयोग किया।[2]

चंगेज खाँ के प्रार्दुभाव से मध्यपूर्व में वौद्ध मंगोलो की संख्या में वृद्धि के कारण वड़ी संख्या में मुसलमान अपना सुरक्षित स्थान पाने के लिए हिन्दुस्तान आये, जिनकी राजधानी दिल्ली सुल्तान इल्तुतमिश के समय में एक ऐसा शहर था जहाँ विश्व के हर स्थान के मुसलमान एकत्र हुए और ऐसे लोगो के लिए एक अलग मुहल्ला वन गया जहाँ इस्लामी देशो से लोग आकर रहने लगे।[3]

पारसी सभ्यता मध्य पूर्व में अरब सभ्यता से भी कही अधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई। इस्लाम का साहित्यिक और सास्कृतिक योगदान जातीयता के आधार पर इस वात को प्रमाणित करता है कि इरानियों ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। ऐसा इसलिए सम्भव हुआ कि मुस्लिम विजय के प्रारम्भ से ही अधिक संख्या में मध्यवर्गी ईरानी और वुद्धिजीवी हिन्दुस्तान आए।[4] शिया मुसलमान को हिन्दुस्तान में विशेष लाभ मिला। शिया सुन्नी कटुता इस नये स्थान पर वहुत कम थी।

सुन्नी शासन में वैरम खाँ की शासकीय स्थिति इस वात का द्योतक

---

1. श्रीवास्तव, हरिशंकर- मुगल शासन प्रणाली, दिल्ली 1978, पृ0 23
2. मुहम्मद, यासीन- ए शोसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ 1958, (प्रथम संस्करण), पृष्ठ 5
3. अहमद, निजामुद्दीन- तबकात-ए-अकवरी, वी0डे0 द्वारा अग्रेजी अनुवाद, भाग-1, कलकत्ता 1927, पृष्ठ 216
4. ए-शोसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 6

है कि दरबार में शिया लोगो का विशेष प्रभाव था।[1] यह प्रभाव में सुन्नीयो के लिए इतना आक्रामक और असह्य नही था, क्योकि शिया अपने को वाह्य सुन्नी वातावरण से अपने को समायोजित कर लेता था। केवल पर्शिया के विरूद्ध लड़ाई को छोड़कर मुगल शासन में शिया लोग विश्वास पात्र माने जाते थे।[2]

पारसी सदैव बावर और उनेक उत्तराधिकारियों[3] के साथ वड़ी संख्या में लगे रहे और मुगल दरबार में उनकी सफलता ने वहुत से लोगो को आकृष्ट किया कि उनके पद चिन्हों पर चले।[4] अपनी योग्यता और निष्ठा के आधार पर उन्होने कई महत्व पूर्ण पद प्राप्त किए। यद्यपि उनकी संख्या तूरानियों की अपेक्षा कमी थी। उन्होने शासन के कई महत्वपूर्ण कार्यालयों पर अपना अधिकार जमा लिया था और मुगल दरबार पर अपना अधिकतम प्रभाव वना रखा था।[5] उनमें विभिन्न श्रेणी और व्यवसाय के लोग थे जैसे डाक्टर, कवि, विधिवेत्ता (वकील) सैनिक। उन्होने इस्लाम के शिया पक्ष को अपनाया और बड़ी निष्ठा से इस धर्म का पालन किया। शिया लोग कम संख्या में होने के कारण ऐसे राज्य में सेवा करते थे जो सुन्नी पक्ष का था और जिसका शिया पक्ष से सदैव विरोध रहता था, उन्होने अपने शासको को प्रसन्न रखने के लिए कुछ दिखावटी कार्य करना पड़ता था। यद्यपि वे पारसी थे अपने सेवाकाल में निष्ठा और कार्य कुशलता के साथ-साथ उन्होने सदैव इस वात का प्रयास किया कि उनके अपने देश का नाम हो।[6] और इस तरह अपने स्वामिभक्त

---

1. ए-शोसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 6
2. लाहौरी, अव्दुल हमीद- पादशाहनामा, अग्रेजी अनुवाद, इलीएट एण्ड डाउसन, पृष्ठ 563
3. वदायूनी, अव्दुल कादिर- मुन्तरवब-उल-तवारिख, अग्रेजी अनुवाद रेकिगं, भाग-1 पृष्ठ 468
4. सर टामस रो और जॉन फ्रायट- ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, लन्दन 1873, पृष्ठ 179
5. वर्नियर फ्रेन्कोइस- ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, अनुवादक ए0 कान्सटेवुल, 1861, आक्सफोर्ड 1934 पृष्ठ 9
6. वही, पृष्ठ 146

राजा शाह और पर्शिया के प्रति उनकी श्रद्धा वनी थी।[1] ईरान के शासक के विरूद्ध उनपर सदैव संदेह किया जाता था[2] ओर इस सदेह की कई वार पुष्टि भी हुई।[3]

तूरानी :-

तूरानी जाति के लोग जो भारत वर्ष के मूल निवासी थे, जाति से तुर्की मंगोल थे। धर्म से सुन्नी थे, अपनी शारीरिक वनावट से कही अधिक अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध थे। उस समय के शासन का समर्थन उन्हे प्राप्त था और अधिक संख्या में होने के कारण भी उन्होने अपनी योग्यता के वल पर सेना तथा राज्य दोनो ही जगहो पर अपना वहुत प्रभावशाली स्थान वना लिया था।[4]

औरंगजेव ने अपनी अन्तिम इच्छा में तूरानियों के चरित्र की प्रशंसा करते हुए कहा है "तूरानी सैनिक हर तरह की लड़ाई में माहिर थे हर तरह से इस जाति को समर्थन मिलना चाहिए क्योंकि अवसर आने पर यह लोग और जातियों की अपेक्षा अधिक सेवा कर सकते है।"[5]

ये तूरानी वड़े अच्छे स्वभाव के अनुशासित ओर कुशल व्यक्ति थे।[6] उन्हे अपनी योग्यता पर वहुत आत्मविश्वास था क्योंकि वे कुछ भी कर सकने में समर्थ थे, चाहे समस्या कितनी ही गम्भीर क्यों न हो।

अफगान :-

अफगानों की शक्तिशाली और युद्ध में दक्ष जाति ने एक वार हिन्दुस्तान पर शासन किया। यद्यपि उनका शासनकाल कम परन्तु सम्मानजनक था। अफगानो का एक अलग महत्व है ऐसा इसलिए था क्योंकि इस समुदाय के गुलाम और पानी ढोने वाले भी महत्वकांक्षी योद्धा थे।[7] वे सदैव इस देश के शासक दुवारा वनने की इच्छा करते थे इनकी यह एक ऐसी इच्छा थी जो कभी पूरी नहीं हुई। मुगलों और अफगानों के वीच मैत्री सम्बन्ध कभी नहीं रहा। अफगानो में मुगलों के प्रति घृणा के गहरे भाव थे। लेकिन मुगलो

---

1. वर्नियर फ्रेन्कोइस- ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, अनुवादक ए0 कान्सटेवुल, 1861, आक्सफोर्ड 1934 पृष्ठ 146-153
2. वही, पृष्ठ 185
3. वही, पृष्ठ 185
4. वही, पृष्ठ 10-11
5. सरकार यदुनाथ- हिस्ट्री ऑफ औरगजेंव, 5वां भाग कलकत्ता 1912-25 पृ. 265-66
6. मेन्डेलस्लो अलवर्ट- द वायेजेज एण्ड ट्रेवल्स आफ अम्वेसडर्स, द्वितीय संस्करण लन्दन 1669, पृष्ठ 65
7. यासिन मुहम्मद-ए शोसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया,लखनऊ 1958,प्रथम संस्करण,पृष्ठ 11

के प्रभुसत्ता से अफगानों ने समझौता कर रखा था और समय के साथ उनके वीच का अन्तर भी कम हो गया।[1]

मुगलों के मुकावले में अफगान सभ्यता विद्वता एवं सदाचार के वदले में शौर्य के अलावा पिछड़ापन, निरक्षरता एवं दुर्व्यवहार के लिए जाने जाते थे। उन्होने मुख्यतः विहार और वंगाल में गंगा के किनारे अपना स्थान वनाया।[2] पठान एक जिद्‌दी सैनिक हुआ करता था उसके वारे में कहा गया है कि विना तलवार खीचें ही उनकी लड़ाई में खून वहने लगता था।[3] वे राजपूतो की ही तरह लड़ाई में दृढ़ संकल्प लेकर उतरते थे और लड़ाई के पहले मादक द्रव्यों का सेवन भी करते थे।[4] अधिकतर अफगान सुन्नी थे।[5] यद्यपि उनमें से कुछ ने नागरिक प्रशासन के लिए अपनी रूझान प्रदर्शित की थी, लेकिन सामान्यतः वे नागरिक जीवन में निष्ठुर थे।

साधारण मुसलमान :-

इस समुदाय में दो तरह के लोग थे एक तो वे जो विदेश से भारतीय भूमि पर आये और अपने को स्थापित किये। दूसरे वे जो हिन्दू मुसलमान वन गये। पहली श्रेणी के लोगो ने भारतीय लोगो के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करके वास्तव में हिन्दूस्तानी वन गये और सदैव भारतीय जीवन और प्रशासन के पक्ष में ही रहे इन दोनो तरह के लोगो में कोई विशेष अन्तर नही रह गया तथा दोनो ही मुस्लिम सम्प्रदाय के अन्तर्गत आ गये।[6]

परिवर्तित मुसलमान जो स्वेच्छा से या जवरदस्ती हिन्दू से मुसलमान

---

1. यासिन मुहम्मद- ए शौसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ 1958, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 12
2. वर्नियर फ्रेन्कोइस- ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, अनुवादक ए0 कान्सटेवल 1861, आक्सफोर्ड, पृष्ठ 206
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन टि सेवेन्टीथं सेचुरी (पूर्वोद्धत) पृष्ठ 285
4. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर- पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 39
5. निकोलोमनुची- स्टोरिया दी मोगोर, अनुवादक, विलियम इरविन लन्दन 1907-08, भाग-2, पृष्ठ 454
6. ए सोसल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूर्वोद्धत, पृष्ठ 13-14

वने थे उनके दृष्टिकोण और सामाजिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ। यद्यपि अन्य मामलो में वे आगे वढ़े।[1] भारत में उनके धर्म ने वह सफलता नही प्राप्त की जो मिस्र और फारस में प्राप्त की थी। हिन्दुस्तानी मुसलमान आदत, रीति रिवाज और तौर तरीकों में मुसलमान समुदाय से भिन्न थे।[2] उनमें से सभी सुन्नी थे।[3] वे अफगानो और मुगलों की तुलना में साधारण व्यक्ति थे।[4]

इसी समुदाय के बारहाँ के सैयद की भी चर्चा यहाँ की जा सकती है जो अपने को वास्तविक अर्थ में भारतीय मानते थे। उनमें विदेशियों के प्रति हमदर्दी नही थी और ईरान एवं तुरान से आने वाले व्यक्तियो को वे विदेशी मानते थे। उनके पूर्वज इस्लाम के विजय के साथ ही इस देश में आये थे और भारतीय निवासी वन गये। यद्यपि कि वे छोटे-छोटे समुदायो में पूरे देश में फैल गये थे। लेकिन मुख्यतः वे मुजफ्फर नगर के मूल निवासी माने जाते थे जहाँ एक साथ बारह गाँव थे।[5] सैयदो ने जिन्हे केवल धार्मिक कार्यालयों में स्थान मिला था, थोड़े समय के लिए दिल्ली में अपनी सल्तनत कायम की, लेकिन व्यक्तित्व हीन होने के कारण भी उनके सामाजिक या धार्मिक स्थिति में कोई अन्तर नही हुआ। सत्रहवी शताब्दी में उन्होने देश की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है[6] और एक शताब्दी के पश्चात एक तरह से वे ही शासक बने क्योकि शासको को बनाने में उनकी महत्व पूर्ण भूमिका रही।[7]

बारहा के सैयद पूरे देश में अपने शौर्य और लड़ाई के प्रति प्रेम के लिए

---

1. फरिश्ता- तारिखे फरिश्ता अंग्रेजी अनुवाद, जानब्रिग्स, हिस्ट्री आफ दि राइज आफ मोहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग-2,3,4 कलकत्ता 1909-10, भाग-4, पृष्ठ 487
2. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ अमवेसडर्स पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 62
3. मुन्तरवब-उल-तवारिख अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृज पृष्ठ 337
4. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ द अमवेसडर्स पूर्वोद्धृत पृष्ठ 65
5. ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 16
6. अवुल फजल- अकवरनामा, अंग्रेजी अनुवाद ए0 वेवरिज, भाग-1,2,3 कलकत्ता 1904, भाग-3 पृष्ठ 225, 244; मुन्तखव-उल तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद भाग-2, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 237
7. इरविन, विलियम- लेटर मुगल्स भाग-1,2 कलकत्ता 1922 भाग-2 पृष्ठ 101

विख्यात थे ओर ऐसा लगता था, कि राजकीय सेना का नेतृत्व करने का उनका जन्म सिद्ध अधिकार था। धार्मिक प्रवृत्ति और प्रदर्शन इस समुदाय की विशेषतांए थी। इनमें से वहुतो को राज्य की सेवाओं के लिए "खान" की उपाधि भी मिली।[1]

मुसलमानों के विभिन्न वर्गो के आपसी सम्वन्ध :-

मुगल शब्द से तात्पर्य उन सभी ऐसे मुसलमानों से होता था जो हिन्दुस्तान में विदेशी मुसलमान हुआ करते थे। मूलतः इसका अर्थ तैमूर और उनके अनुयायिओं के निवास से होता था। लेकिन समय के साथ इसका अर्थ भी बदल गया और पारसी, तुर्की अरव, उजवेक भी मुगल कहलाये।[2] बाद में कान्धार के अफगान भी मुगल कहलाने लगें। उदाहरण स्वरूप मराठो के लिए अहमद शाह अव्दाली के सैनिक विलायती मुगल कहलाये। धीरे-धीरे मुसलमान संमाज में एक भिन्नता आ गयी। ऐसे मुसलमान जो भारतीय थे और जिनके पूर्वज भी कई शताव्दीयों से भारत में रह रहे थे, ऐसे मुसलमान जो हिन्दू से मुसलमान हुए थे और अन्य मुसलमान के बीच अन्तर स्पष्ट हो गया।[3]

मुसलमान समुदाय के विभिन्न वर्गों में आपस में द्वेष और शत्रुता वढ़ने लगी। इसके तीन प्रमुख कारण थे। मूल वर्गीय भेदभाव और स्वार्थ। फारस और आक्सियाना दूसरी ओर केवल देश नही थे बल्कि ऐसे स्थान जहाँ दो भिन्न तरह के लोग रहते थे। जिनमें जातिगत और धार्मिक अन्तर थे।[4] ईरान और तुरान के बीच प्रतिद्वन्दिता वड़े लम्बे समय से थी। जब उनके प्रतिनिधि भारत आये तो अपने साथ घृणा और शत्रुता के बीज भी लाये।[5]

---

1. ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 19
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 48
3. ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूवोद्धृत पृष्ठ 20
4. वही, पृष्ठ 21
5. मांसरेट, एस0 जे0- दि कमेटोरिज, अनुवादक जे0 एस0 हालैण्ड लन्दन 1922 पृष्ठ 164-165

भारत में शासको ने इन दोनो में से किसी को भी इतना वढ़ावा नही दिया कि वे सिंहासन के लिए खतरा पैदा कर सकें। अफगान जो मुगलो को हमेशा से अनाधिकार गद्दी हड़पने वाला मानते थे। राज्य के उच्च पदो से वहिष्कृत थे। उन्होने यह महसूस किया कि उनके सम्मान और पद को वड़ी क्षति पहुच रही है और तूरानी भी भारतीयो के विरूद्ध खड़े हो जाते थे लेकिन साधारणतः आपस में वे जानी दुश्मन थे।[1]

मुसलमानों के उच्च वर्गों में एक विशेष वात यह थी कि मुगल शासन में सम्मान एवं सम्पत्ति के लिए व्यक्तिगत होड़ लगी थी।[2] प्रत्येक व्यक्ति इस वात का प्रयास कर रहा था कि वह अन्य के मुकावले में कैसे उच्च स्थान प्राप्त कर ले। इस तरह के व्यक्तिगत होड़ के विना दूसरे का ख्याल किये हुए स्वार्थसिद्धि के लिए अथक प्रयास चल रहा था। इसके फलस्वरूप आपसी कटुता में वृद्धि हुई और साथ ही स्वार्थपरता के वातावरण में राज्य को विशेष क्षति पहुँची।

धार्मिक स्तर पर भी मुसलमानों में दो वर्ग स्थापित हो गये शिया और सुन्नी। उनमें आपस के सम्बन्ध कटु और तीखे हो गये और सम्पूर्ण मुस्लिम समाज के प्रत्येक वर्ग में फैल गये। इस तरह से आपस का वातारण इतना दूषित हो गया कि व्यक्तिगत लड़ाई ने सामुहिक दंगो का रूप ले लिया, जिसको रोकने के लिए राज्य को सेना लगानी पड़ती थी।[3]

हिन्दू समाज की संरचना :-

हिन्दू समाज की मुख्य विशेषता जाति और उपजाति प्रथा है[4] इस समय मुस्लिम प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही प्राचीन सामाजिक और कानूनी कार्य जाति नियमों की कार्य सीमा के वाहर चली गयी थी।

हिन्दुस्तान की रूढ़िवादी और लोकप्रिय परम्पराओं में ऐसी छत्तीस जातियाँ

---

1. ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 22
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 177
3. ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, पुर्वोद्धृत पृष्ठ 23
4. इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, जिल्दप्रथम, पृष्ठ 311

बतायी जाती है जिसमें ब्राह्मणों, क्षत्रियो, वैश्यो की उपजातियों के अतिरिक्त अलग-अलग व्यवसायी जातिया जैसे शराव वनाने वाले स्वर्णकार, जुलाहे पनवाड़ी, कसेरे, गड़रिये, ग्वाले, लुहार, वढ़ई, भाट, कायस्त, अहीर, माली, रंगरेज, कपड़ो के चित्रीत करने वाले, तेली, नाई, वहुरूपिये, वाजीगर, संगीतकार और अन्य लोग भी सम्मिलित थे। कभी-कभी हिन्दू और मुसलमानों के आपसी समागम के कारण अलग और नवीन जातिया निर्मित हो जाती थी। मुख्य-मुख्य जातियो की अगणित उपशाखाएं अलग-अलग जाति का रूप धारण करने लगी थी केवल राजपूतों में ही बीस उपजातियाँ पायी जाती थी।[1] हिन्दू धर्मों के अपेक्षाकृत ऊची श्रेणी में रखें जाने योग्य इन सब जातियों के नीचे लाखों अछूत लोग आते है ये स्वतः अपनी जातियों में विभाजित हो जाया करते थे यद्यपि अस्पृश्यता की भावना उत्तर में दक्षिण के समान उत्कट नहीं थी। उसके अस्तित्व और अछूतो के प्रति उच्च्व वर्ग के वहिष्कार पूर्ण भावना के प्रति संदेह नही किया जा सकता था। भारतवर्ष में सामाजिक जीवन की यह विशेषता आधुनिक परिस्थितियों के दवाव के वावजूद भी लुप्त नही हुई थी।

जाति प्रथा :-

मुगलकाल में हिन्दूओं में प्रायः प्रमुख रूप से चार जातियाँ पायी जाती थी। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य, शुद्र। ये जातियाँ उपजातियों में विभाजित थी। उस समय के अनुसार इनकी संख्या लगभग 84 मानी जाती थी।[2] इन सभी जातियों के अपने विशेष रीतिरिवाज एवं व्यवसाय हुआ करते थे। बच्चे भी प्रायः अपना पैतृक व्यवसाय ही अपनाया करते थे और शायद ही कभी अपनी जातीय व्यवसाय छोड़कर वे कोई अन्य पेशा ग्रहण करते थे।[3] कुछ प्रमुख जातियों के विवरण इस

---

1. अवुल फजल- आईन-ए-अकवरी, अग्रेजी अनुवाद, भाग-1 व्लाखमैन एच0 कलकत्ता 1873,भाग-2 तथा 3; एच0 एस0 जैरट तथा जदुनाथ सरकार, कलकत्ता 1949 तथा 1948, भाग 2 पृष्ठ 57।
2. करेरी- इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, भाग-3, अनुभाग-3 (सम्पादक सुरेन्द्र सेन), नई दिल्ली 1949, पृष्ठ 254
3. वही, पृष्ठ 254-255

प्रकार से माने जाते हैं।

ब्राह्मण :-

जान प्रंगसिल करेरी अपनी यात्रा वर्णन में ब्राह्मणो की दस उपजातियों में विभाजित हुआ लिखा है वास्तव में उसने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में रहने वाले ब्राह्मणों को उपजाति का नाम दिया है।[1] मराठा[2] (महाराष्ट्र के रहने वाले), तेलगू[3] (तिलंग के रहने वाले), द्रोवर[4] (द्रविण के रहने वाले), गुजराती[5] (गुजरात में रहने वाले), गौड़ी[6] (गौड़ के रहने वाले), कन्नड़[7] (कन्नड़ के रहने वाले), कन्नौजिया[8]

---

1. करेरी- इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, भाग-3, अनुभाग-3 (सम्पादक सुरेन्द्र सेन), नई दिल्ली 1949, पृष्ठ 255
2. सेन्सस आफ इण्डिया, भाग-1 अनुभाग 3, 1931, पृष्ठ 29 के अनुसार- महाराष्ट्रियन ब्राह्मणो में तीन जातियां पायी जाती थी, कोकनस्थ, देशस्य तथा सारस्वत ब्राह्मण।
3. शियरिंग- हिन्दू टाइम्स एण्ड कास्ट्स, भाग-1, वनारस 1872, पृष्ठ 91-92 के अनुसार- तेलगू ब्रह्मणों में 8 जाजियां थी, जिनमें अन्तर भोज तथा अन्तर विवाह वर्जित था।
4. वही, पृष्ठ 27 के अनुसार- इनमें पाँच प्रमुख भेद थे।
5. सेन्सस आफ इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 26-27, गुजरात में रहने वाली दो प्रमुख जातियाँ थी, उत्तर प्रदेशीय ब्राह्मण तथा नागरा।
6. हिन्दू टाइम्स एण्ड कास्टस, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 19 के अनुसार- कान्यकुब्ज, सारस्वत, गौड़, मैथिल तथा वत्कल ये पाँच मुख्य भेद थे।
7. वही, पृष्ठ 95।
8. रिसले, हरवर्ट- दि पीपुल आफ इण्डिया, 1960 पृष्ठ 159 इनके विषय में एक कहावत है तीन कन्नौजिया तेरह चूल्हा।

(कन्नौज के रहने वाले), त्रिहुति[1] (गोवा के रहने वाले), गयावली[2] और पोगांपूत। इन दस ब्राह्मण जातियों मे भी अनेको भेद उपभेद पाये जाते थे।

ब्राह्मणों में शुद्धता का विशेष ध्यान रखा जाता था। उनमें विधवाओं का पूर्वविवाह वर्जित माना जाता था। कभी कभी पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात विधवाएं सती प्रथा का पालन किया करती थी। ऐसी स्त्रियों का विशेष सम्मान का पात्र समझा जाता था।[3] उस समय पर्दा प्रथा भी प्रचलित था और जो स्त्री पर्दा करती थी उसे आदर की दृष्टि से देखा जाता था। पुरूष लोग जनेऊ धारण किया करते थें यदि कभी उनका जनेऊ टुट जाता था तो वे जब तक दूसरा जनेऊ नहीं धारण कर लेते थे तब तक वे कुछ खाते-पीते भी नहीं थे।

मराठा, तेलगू, कन्नड़ तथा द्रोवर ब्राह्मण एक दूसरे के यहाँ खाया पिया करते थें; परन्तु गुजराती ब्राह्मणो के यहां से खान-पान का सम्वन्ध नहीं रखा करते थे। अन्य पाँच जातियों गौड़, कन्नौजिया, त्रिहुति, गयावली और पोंगापूतों में परस्पर-भोज प्रचलित नही था।[4] आपसी भेद-भाव की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के कन्नौलिया ब्राह्मण प्रमुख माने जाते थे, जिनके लिए कहावत प्रसिद्ध माना जाता था कि तीन कन्नौजिया तेरह चूल्हा।[5] उनमें पारस्परिक भेदभाव इतनाअधिक होता था कि वे विवाह आदि के अवसरों पर भी जब कभी इकठ्ठा होते थे। तव भी अपना भोजन अलग-अलग वनाने की व्यवस्था किया करते थे। आज भी गाँवों में रहने वाले वृद्ध कन्नौजिया ब्राह्मणो में खान-पान

---

1. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 255 ये गोवा निवासी ब्राह्मण थे, जिनके विषय में यह कहा जाता है कि उनके पूर्वज त्रिहुति और मिथिला में रहने वाले थे।
2. गया निवासी ब्राह्मण।
3. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 255
4. वही, पृष्ठ 255
5. दि पीपुल आफ इण्डिया, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 159

सम्वन्धी नियमों का कट्टरता से पालन किया जाता है।

क्षत्रीय :-

दूसरी जाति क्षत्रियों की थी जो राजपूतो के नाम से जाने जाते थे। राजपूतो की केन्द्र भूमि राजस्थान के भू-भाग में था। क्षत्रीय देश की राजनीति के मेरूदण्ड थे। मुगल वादशाहों में भी उनके महत्व को ध्यान में रखते हुए उन्हे बड़े-बड़े मनसव प्रदान किए; उनकी वीरता और योग्यता का भली प्रकार उपयोग किया।[1] कोई भी भारतीय साम्राज्य विना राजपूतो के मिलायें हुए स्थिर नहीं हो सकता था और न उनके चातुर्यपूर्ण तथा सहयोग के बिना सामाजिक अथवा राजनीतिक समन्वय ही स्थापित, हो सकता था।[2] अकबर ने विवाह सम्वन्धो के इच्छुक राजपूत राजाओं को अपनी अधीनता मे लेना और उनको मुगल सेवा में लेकर उनके राज्य उन्ही को वापस कर देने की नयी परिपाटी का सृजन किया। 1562 में जब अकबर अजमेर के शेख मुइनुद्दीन चिश्ती के दरगाह की यात्रा पर गया तो रास्ते में आमेर (जयपुर) के शासक भारमल (विहारीलाल) पहला राजपूत था जिसने अकबर से भेंट की और अपनी पुत्री का विवाह अकबर से करने की इच्छा प्रकट की। अकबर ने इसे स्वीकार कर लिया और इस वैवाहिक सम्वन्ध से न केवल राजपूतो से अच्छा सम्वन्ध स्थापित हुआ वल्कि इसी राजपूत राजकुमारी से जहाँगीर का जन्म हुआ। अकबर ने विहारी मल के पुत्र भगवान दास और पोते मानसिंह को मुगल सेना में रख लिया और उन्हें उच्च्व मनसवदार वनाया।

जिस समय अकवर नागौर में ठहरा हुआ था। विकानेर के राजा कल्याणमल अपने पुत्र राय सिंह के साथ सम्राट की सेवा में उपस्थित हुआ और कर भेंट किया । पिता पुत्र दोनों की राजभक्ति प्रकट हो जाने पर सम्राट ने

---

1. कवि श्यामल दास और विनोद, राज्य मन्त्रालय उदयपुर द्वारा प्रकाशित, 1886 भाग-2, पृष्ठ 414-27.

2. शर्मा, एस0 आर0- भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास आगरा, 1937, पृष्ठ 321

कल्याणमल की लड़की से बिवाह कर लिया।[1] जैसलमेर के शासक हरराय ने भी अकबर से भेंट की और न केवल अकबर की अधीनता ही स्वीकार की वल्कि अकबर से बिवाह सम्बन्ध भी स्थापित किया। अकवर ने जिस राजपूत नीति का सृजन किया। जहांगीर को भी निरंतर राजपूतों से युद्ध करना पड़ा। अधीनता स्वीकार कर लेने पर जहाँगीर ने राजपूतो के साथ अच्छा व्यवहार किया।

शाहजहाँ की राजपूत नीति की विशेषता 1614 में मेवाड़ विजय से स्पष्ट होती है इससे उसके साहस और युद्ध नीति का परिचय मिला। जहाँ अन्य अनुभवी सेनानायक विफल हो चुके थे वहाँ उसे असाधारण सफलता मिली। मेवाड़ की विजय से मुगल साम्राज्य की प्रतिष्ठा वहुत वढ़ गयी और खुर्रम की एक 'परिपम्व' कुशल, तथा योग्य सेनानायक के रूप में निर्विवाद ख्याति स्थापित हो गयी, और वह एक उदीयमान नक्षत्र समझा जाने लगा।[2]

जय सिंह और जसवन्त सिंह जैसे राजपूत सेनानायक अब भी शाहजहाँ के दरबार के प्रमुख उमराओं में से थे। राजपूतों में परस्पर भोज प्रचलित था। वे व्राह्मणों के वहां भी भोजन कर सकते थे।[3]

राजपूतों में सती प्रथा भी प्रचलित था, और सती को अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उसे पारिवारिक गौरव प्रदान करने वाला समझा जाता था। समकालिन यात्री करेरी लिखता है- ''यही कारण था कि लोग कभी कभी स्त्रियों को सती हो जाने के लिए बाध्य करते थे।[4]

यद्यपि राजपूत मांसाहारी होते थे, परन्तु वे गाय, बैल और पालतू सुअर का गोश्त नहीं खाते थे।

---

1. शर्मा, एस0 आर0- भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास, आगरा 1937, पृष्ठ 324।
2. वही, पृष्ठ 461।
3. इण्डियन ट्रेवल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 255।
4. वही, पृष्ठ 255।

वैश्य :-

हिन्दूओं की तीसरी मुख्य जाति वैश्य थी। उनका मुख्य व्यवसाय कृषि और वाणिज्य था, किन्तु वाद में वे क्रमशः व्यापार से ही अधिक सम्बन्धित होते गये। प्रायः उन समय वैश्यों में वीस उपजातियाँ पायी जाती थी।[1] वैश्य मुख्यतः शाकाहारी हुआ करते थे।

शूद्र :-

हिन्दुओं मे चौथी जाति शूद्रों की थी। तत्कालिन इतिहास में सेवा कार्यों में लगे हुए अनेक जातियों के विवरण मिलते हैं, जैसे चमार, वढ़ई, ग्वाला, माली, सिक्के वनाने वाले आदि। इन सभी की गणना शूद्रों में की जाती थी। इनमें विधवा विवाह भी प्रचलित माना जाता था।[2] उपर्युक्त वर्णित जातियों के अतिरिक्त कायस्थ जाति का उल्लेख मिलता है। मुगल काल में कायस्थ लोग, प्रभु या चन्द्रसेन कायस्थ के नाम से सम्बोन्धित किए जाते थे। कायस्थ लोग प्रायः तलवार तथा कलम के धनी माने जाते थे। मुगलों की सेवा में लगे हुए कायस्थ मुख्य रूप से राजत्व तथा लेखा विभाग से सम्बन्धित माने जाते थे। औरगंजेव के काल में मराठा अधीश्वर शिवाजी का व्यक्तिगत सचिव वाजी प्रभु तथा बालाजी कायस्थ जाति से सम्बन्ध रखते थे।[3]

परिवार :-

संयुक्त परिवार की परम्परा आधुनिक काल में भी प्रचलित थी।[4] संयुक्त परिवार का चलना सदस्यों के सहयोग तथा प्रेम भाव पर निर्भर करता है। मुगल कालीन समाज के भी संयुक्त परिवार की व्यवस्था वनी रही।[5] कहीं-कही

---

1. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 256।
2. वही, पृष्ठ 256 ।
3. वही, पृष्ठ 256 ।
4. लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 165
5. घुर्ये, जी0एस0- कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, न्यूयार्क 1950, पृष्ठ 176

पर इसके विघटन के लक्षण की स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगते थे। उदयपुर में यह नियम था कि राजकुमारों का रनिवास राणा के रनिवास के साथ ही रहा करता था। लेकिन राणा जयसिंह के वड़े पुत्र अमर सिंह ने अपना अलग से आवास वनवाया था जिससे पिता और पुत्र में मनमुटाव पैदा हो गया और यह सम्बन्ध तभी सुलझा जब राणा ने राजकुमार को तीन लाख रूपये की जागीर का पट्टा दे दिया और यह आश्वासन दिया कि वह राजकुमार की जागीर मे किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं करेगा।[1] सामान्यतः हिन्दू परिवारों मे पिता को विशेष अधिकार प्राप्त होता था। पिता ही परिवार के सभी कार्यो का कर्ता धर्ता था। परिवार के अन्य सदस्य उनकी आज्ञा का पालन किया करते थे। पिता के वाद पुत्र ही सर्वे-सर्वा होता था। स्त्रियों को सम्मान तो प्राप्त था, परन्तु उन्हे अन्योन्य आश्रित रहना पड़ता था। एक पुत्री के रूप में पिता के आश्रित रहना पड़ता था, पत्नी के रूप में पति के तथा विधवा के रूप में पुत्र के आश्रित होकर रहना पड़ता था।[2]

पति की सम्पत्ति में पत्नी को किसी प्रकार का अधिकार नहीं प्राप्त होता था।[3] पुत्र ही समस्त धन का मालिक माना जाता था। राजपूतों में यह स्थिति कहीं-कहीं भिन्न दिखायी देती है जहाँ पुत्र के छोटे-होने पर स्त्रियां संरक्षिका वन कर राजकाज भी सम्भालती थी। सामान्य वर्ग की स्त्रियां काम करके परिवार को अर्थिक सहयोग प्रदान किया करती थीं।

---

1. मीरा मित्रा- महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1973, पृष्ठ 121-122
2. चोपड़ा, पी0एन0- सम ऐसपेक्टस आफ सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, आगरा 1963, पृष्ठ 108।
3. अल्टेकर, ए0 एस0 - दि पोजिशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, वनारस 1956, पृष्ठ 261

संस्कार :-

हिन्दुओं में सोलह संस्कारों का प्रचलन था।[1] जन्म संस्कार, नामकरण संस्कार, चूणाकरण (मुण्डन), उपनयन और विवाह तथा अन्तिम संस्कार महत्वपूर्ण माने जाते थे। भारत के पूरवर्ती भागों में सस्यानुसार थोड़ी वहुत भिन्नतायें थी, परन्तु मुख्य संस्कारों का सामान्य रूप से पालन किया जाता था। विदेशी यात्री लोग केवल विवाह संस्कार के वारे में लिखते है क्योंकि विवाह वड़े ही धूमधाम के साथ मनाया जाता था जो कुछ भी संकेत समकालिन फारसी इतिहासकारों ने किया है या विदेशी यात्रीयों ने लिखा है उससे हम लोग यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि इन संस्कारों का पालन मुगल काल में प्रायः उसी प्रकार से होता रहा जैसा कि साधारणतया आजकल लोग पालन करते है।[2]

हिन्दुओं के संस्कार :-

हिन्दुओं को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक धार्मिक पवित्रीकरण की क्रियाओं से होकर गुजरना पड़ता था। इसे संस्कार कहा जाता था। इससे हिन्दू जीवन शुद्ध एवं परिष्कृत हो जाता था और इसकी सम्पूर्ण मौलिक एवं आध्यात्मिक महत्वाकांक्षाए गतिशील हो जाती थी।[3]

जन्म संस्कार :-

जन्म संस्कार के वारे में अवुल फजल लिखते है कि उस समय बच्चे के मुहँ में घी में शहद मिलाकर सोने की अंगूठी के द्वारा डाले जाने की

---

1. पाण्डेय, राजवली-ए-सोशियों रिलिजस स्टडी आफ दि हिन्दू सैकरेमेन्ट्स, विक्रमा पब्लिकेशन्स, भदेनी, वनारस, 1949, पृष्ठ 79, 480
2. चोपड़ा, पी0एन0- सम ऐसपेक्टस आफ सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिग दि मुगल एज, आगरा 1963, पृष्ठ 2
3. पाण्डेय, राजवली- हिन्दू संस्कार, वाराणसी, 2014, पृष्ठ 18;
   थामस, पी0- हिन्दू रिलिजन कस्टम्स एण्ड मैनर्स वम्वई 1956, पृष्ठ 87

प्रथा थी।[1] तुलसीदास और सूरदास नन्दीमुख श्राद्ध[2] की चर्चा करते हुए ऐसा लिखते है कि वच्चे के जन्म के वाद सोना, गाय, प्लेट व आभूषण व्राह्मणो को दिया जाता था। उत्सव में मुख्य रूप से एक रस्सी में डूवा[3] घास व आम की पत्ती को वाँधकर दरवाजे पर टाँग दिया जाता था। यह प्रथा अच्छे परिवारों में प्रचलित थी। वच्चें के जन्म के वाद ही उसकी कुंडली भी वनवायी जाती थी।[4]

नामकरण संस्कार :-

ओविग्टंन ने नामकरण संस्कार[5] के बारे में भी विस्तार पूर्वक चर्चा की है उनका कहना है कि चालीस दिनों के वाद वच्चें का नाम रख दिया जाता था।[6] विदेशी यात्री फ्रायर भी इस वात की पूष्टि करते है।[7] सूरदास ने लिखा है कि दही, दूध व हल्दी मिलाकर के वच्चे के माथे पर लगाये जाने की प्रथा थी।[8] जायसी और सूरदास भी जन्म के छठवें दिन संस्कार की चर्चा करते है लेकिन ऐसा पता चलता है कि यह केवल धनी परिवारों में ही प्रचलित था। सूरदास लिखते है कि इस अवसर पर प्रायः मालिन फूल व मालाए भेंट किया करती थी और स्वर्णकार सोने का हार जो हीरे व मोतियों से जड़ा हुआ रहता था, भेंट करते थे। नाइन नवरंगा माहुर माँ के पैरों में लगाती थी और वढ़ई की स्त्री चंदन की लकड़ी का पालना वनाकर नये वच्चे के लिए ले आती थी।[9]

---

1. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग 3 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 314
2. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत, पुष्ठ 123
3. सूरदास-सूरसागर,काशी नागरी प्रचारिणी सभा,प्रयाग1916,भाग-1पृष्ठ 263
4. सरकार, जे0एन0 - चैतन्य की लाइफ एण्ड टीचिग्ंग, एस0 सी0 सरकार एण्ड सन्स, कलकत्ता, पृष्ठ 20
5. वही, पृष्ठ 20
6. मैकालिफ,एम0ए0- दि सिख रिलिजन,आक्सफोर्ड, 1909,भाग-1 पृष्ठ 242
7. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ, सेन्चुरी, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 94
8. सूरसागर, भाग-1, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 290
9. वही, पृष्ठ 274-275

अन्नप्रासन :-

सूरदास इस वात की चर्चा करते है कि अन्नप्रासन संस्कार के वाद ही वच्चे को ठोस पदार्थ खाने को दिया जाता था।[1] जन्म के छह महीने के वाद ही इस संस्कार को मनाया जाता था। ऐसे अवसरों पर वच्चो के सम्वन्धी मित्र व पड़ोसी इक्कठा होते थे। वच्चे के सामने खीर, शहद व घी रखा जाता था।[2] ये सब चीजे पिता ही वच्चे के मुहँ में खिलाता था और यह संस्कार वड़े ही धूमधाम से मनाया जाता था।[3] आज भी हिन्दुओं में इस संस्कार को मनाये जाने की परम्परा है।

मुण्डन :-

जन्म के तीसरे साल वच्चे के बाल काटने की प्रथा थी। जब वच्चे का मुण्डन होता था तो उसके सिर पर एक चोटी छोड़ दिया जाता था। उसी दिन वच्चे का कान भी छेद दिया जाता था।[4] सूरदास कर्णवेद[5] संस्कार के वारे में चर्चा करते हैं। उनका कहना है कि श्री कृष्ण को पूड़ी और दही देकर ही उनका कान छेदा गया था।[6]

उपनयन संस्कार :-

मुण्डन हो जाने के उपरान्त जब वालक शिक्षा प्राप्त करने के योग्य होता था यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। मुगल काल में यह प्रथा व्यापक

---

1. हिन्दू संस्कार , पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 151-57
2. सूरसागर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 29
3. वही, पृष्ठ 29
4. सान्याल, एन0 एस0 वी0 - श्रीकृष्ण चैतन्य, प्रकाशन त्रिदान्ती स्वामी, भक्ति, 1933, भाग-1, पृष्ठ 304
5. सूरसागर, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 32, श्रीकृष्ण चैतन्य भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 304
6. सूरसागर, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 32

किया जाता था। मुगल काल में यह प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी। सम्राट जहाँगीर इस संस्कार की चर्चा करते हुए लिखते है।[1] कि समाज के उच्च वर्ग के लोग ही इस संस्कार को किया करते थे।[2] उनका यह विचार है कि आठ साल के पहले ही उपनयन हो जाया करता था और इस अवसर पर एक विशेष प्रकार का उत्सव मनाया जाता था। इसमें वहुत से ब्राह्मण लोग आमन्त्रित किए जाते थे। एक मूज घास[3] या धागें[4] को जो सवा दो गज लम्बा होता था, लड़के के कमर में वाँध दिया जाता था और साथ ही साथ भगवान की स्तुति भी की जाती थी। इस पवित्र धागे[5] में तीन धागा मिला हुआ होता था जिसका दाम चार दमड़ी माना जाता था। यह लड़के के वाये भुजा में लटका दिया जाता था और उसका किनारा उसके दाहिने भुजा में बाँध दिया जाता था। ये तीनो धागे, तीनो भगवान, ब्रह्मा विष्णु व महेश[6] का संकेत करते थे। सफेद रंग का होना इसकी पवित्रता का सूचक माना जाता था।[7]

विवाह संस्कार :-

सृष्टि प्रक्रिया के लिए नारी पुरूष का साहचर्य प्राथमिक आवश्यकता माना जाता है। आधुनिक युग के विचारकों ने भी विवाह को स्त्री पुरूष के साम्मिलित जीवन की प्राथमिक[8] संस्था माना जाता है। जिसमें स्थायी रूप से एक पत्नी सम्वन्धी प्रेम[9] और समाज स्वीकृत संस्कार द्वारा स्त्री पुरूष का उचित

---

1. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 16-18
2. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 49
3. वही, पृष्ठ 224
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चूरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 392
5. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 225
6. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 260
7. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 226
8. जेम्स, ई0ओ0-मैरेज एण्ड सोसाइटी, पृष्ठ 191
9. थामस, एच0 बानडे वेल्डे-आइडियल मैरेज, पृष्ठ 151

सम्मेलन[1] वताया जाता है। प्रत्येक संस्कारों के साथ ही साथ लोकाचार एवं मंगल कृत्यों का समावेश अनिवार्य वताया जाता है। विवाह के समय मे भी मूल संस्कार विधियों के अतिरिक्त अनेको प्रकार के लोकाचार, कुलाचार, मांगलिक कार्यों एवं रीतियों का पालन किया जाता है।[2] मुगल काल में हिन्दू लोग इसे मानव जीवन का सवसे महत्वपूर्ण संस्कार मानते थे।[3] विवाह उत्सव की प्रकृिया विभिन्न जातियों, वर्गों और प्रान्तो मे विभिन्न प्रकार से की जाती थी।[4] इनमें सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवादिता अधिक पायी जाती थी। अवुलफजल के अनुसार संस्कारो की रूपरेखा का हर जगह एक जैसा पालन होता था। अवुल फजल ने स्मृतियों में मान्य आठ प्रकार के विवाहों की चर्चा की है, लेकिन व्रह्म विवाह अधिकाशतः प्रचलित माना जाता था। स्त्री के लिए लाल रंग व्रेसलेट पहनना जरूरी माना जाता था।[5] स्त्री के घर मण्डप सजाया जाता था।[6] जायसी और मनुची मण्डप की चर्चा करते हुए लिखते है कि वादशाह से लेकर के एक गड़ेरिया के लिए भी आवश्यक माना जाता था।[7] यह फूल पत्तियों से सजाया जाता था। सम्बन्धियों और मित्रों के इक्ठठा हो जाने पर दूल्हा अपने घर से सज - धज कर सजे संजाए घोड़े पर बैठकर

---

1. वेस्टमार्क, ई0-मैरज, पृष्ठ 5
2. पाण्डेय, राजवली- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, प्रथम भाग, अध्याय-5, पृष्ठ 132
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 54
4. महालिगंम, टी.वी.- एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अन्डर विजयनगर, यूनिवर्सिटी आफ मद्रास, 1940
5. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 145
6. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 62
7. स्टोरिया दि मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55

दुल्हिन के घर जाता था।[1] उसके सम्बन्धी और मित्र लोग भी अच्छे वस्त्र पहन कर जाया करते थे। स्त्रियां भी पालकी में जाया करती भी। हिन्दू लोग इस अवसर पर पीला वस्त्र धारण करते थे।[2] और उनके साथ में बाजे भी रहते थें विदेशी यात्री डेलावेले बड़े अजीब प्रकार के वस्त्र धारण किए हुए वाजो वालो से आकर्षित हुए थे जिसके वस्त्रो पंर चित्रकारी हुई थी। ब्रेसलेट और नेकलेस सोने के पहने हुए थे और अनेक रंगो की पगड़ी वाँधे हुए थे।[3] जूलूस में रोशनी का प्रवन्ध किया जाता था। अतिशवाजियाँ भी छोड़ी जाती थी।[4] स्त्री के घर पर वारात पहुचने पर स्वागत किया जाता था और अच्छे-अच्छे भोजन परोसे जाते थे। मनुची[5] ने साधारण लोगो के भोज के वारे में चर्चा की है। स्त्री के तरफ से वस्त्र भेटं किया जाता था उसके वाद एक समय निश्चित किया जाता था। जब कि दूल्हा और दुल्हिन वैठकरके विवाह के कार्य को सम्पन्न करते थे। यूरोपियन यात्रियों ने भी सुनकरके वर्णन किया है। इसलिए ये भी वहुत ज्यादा विश्वसनीय नही हैं कन्यादान और पाणिग्रहण भी वैद मन्त्रों के साथ में किया जाता था। मनुची[6] और वरतोलीम्पू तरह-तरह के फूल और मालाओं के प्रयोग के वारे में चर्चा करते है। लड़की का पिता लड़के वाले के पिता को रूपया, कपड़ा, सोना भेट के रूप में देता था। अकबर ने ऐसा नियम वना दिया था कि हिन्दुओं में विवाह में ग्राम अधिकारियों की तरफ से दो नारियल भेंट किया जाय। जो एक

---

1. डेलावेले, पित्रा- दि ट्रेवेल्स आफ ए नोवुल रोमन इन टू ईस्ट इंडीज एण्ड अरेवियन डिसर्टा, लन्दन 1664, पृष्ठ 430-31
2. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 248
3. डेलावेले, पित्रा- ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, अनुवादक जी0आवर्स सम्पादक ग्रे, हकल्यूत सोसायटी, लन्दन 1892, भाग-2, पृष्ठ 418
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 150-51
5. वही, पृष्ठ 57
6. वही, पृष्ठ 54,63

उनके तरफ से होता था और यह मुगल सम्राट के तरफ से भेंट माना जाता था।[1] कभी-कभी विवाह को ही सूक्ष्म तरीके से नदी के किनारे पुरोहित के द्वारा करा दिया जाता था। वहाँ पर एक गऊ भी रखी जाती थी और फिर उसके वाद विवाह सम्पन्न किया जाता था।[2]

मुगल काल में विवाह कम उम्र में प्रचलित था। सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियां एक पिता को बाध्यकर देती थी कि वह अपने पुत्री का विवाह जल्दी से जल्दी कर दे।[3] अवुल फजल ने देश की सामाजिक व्यवस्था की चर्चा करते हुए लिखा है कि यह उचित माना जाता था कि दुल्हिन आठ वर्ष से कम न हो और दुल्हिन का दस वर्ष से अधिक होना अनुचित माना जाता था।[4] यूरोपियन यात्री पेलसार्ट, मेन्डेलस्लो, थेवेनाट और अन्य लोग ऐसा वताते है कि वर्वर जातियों के लोग दस वर्ष तक अपने वच्चों का विवाह कर दिया करते थे।[5]

जायसी ने ऐसा लिखा है कि संगल दीप के राजा गन्धर्वसेन ने अपने दो वर्ष की लड़की के विवाह की तैयारी आरम्भ कर दी थी।[6] वुद्धिवादी शासक अकवर ने इसके भयानक प्रभावों के कारण ऐसा नियम वना दिया था कि सोलह साल से कम के लड़के और चौदह वर्ष से कम की लड़की का विवाह नही किया जा सकता था।[7] कोतवाल का यह कर्तव्य होता था कि वह इसकी जाँच करें। वदायूनी[8] ने लिखा है कि "इस प्रकार की दुर्व्यवस्था फैल गयी थी कि पुलिस अधिकारी

---

1. जर्नल, पंजाव हिस्टोरिकल सोसायटी, भाग-1, पृष्ठ 1-3
2. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 257
3. सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 3
4. दि पोजिशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइवेशन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 731
5. द वायजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51
6. जायसी, मलिक मुहम्मद-पद्मावत, उर्दू अनूवाद, पंडित भगवती प्रसाद नवल किशोर प्रेस, लखनऊ पृष्ठ 96
7. आइन-ए-अकवरी, भाग-2 एक, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 195,203
8. मुन्तरवव-उत-तवारिख, अग्रेजी अनुवाद, भाग-2 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 404-6

लोग इसमें काफी पैसा कमाने लगे थे।" यह नियम तो सख्ती से लागू ही किया गया और न ही वाद वाले सम्राटों ने इसे लागू किया।[1] समकालीन यात्रीयों के विवरण से ऐसा पता चलता है कि कम अवस्था वाले विवाहों में केवल नाम मात्र के उत्सव सम्पन्न किये जाते थे।[2] जव लड़किया बड़ी हो जाती थी तो ससुराल जाती थी। इस वीच की अवस्था में लड़किया अपने पिता के घर ही रहती थी।[3] मनुची, परचाज और लिन्सयाटेन यात्रीयों का विचार इस प्रकार है कि "मुगल राजकुमारों का विवाह तभी होता था जव वे वड़े हो जाया करते थे।"[4]

मुगलकाल में दहेज प्रथा वहुत अधिक प्रचलित था। कई यूरोपिय यात्रीयों ने इस प्रथा के वारे में वर्णन किया है।[5] गरीवो के लिए यह दुखद माना जाता था।[6] क्योकि वे अपने लड़कियों के विवाह पर अधिक दहेज नही दे सकते थे। कभी-कभी गरीव अपने लड़कियो के विवाह के लिए आवश्यक वस्त्र तक नही जुटा पाते थे।[7] तुकाराम ने गाँव वालो से चंदा लेकर अपने लड़कियों का विवाह किया था।[8] वल्लभाचार्य, चैतन्य को अपनी लड़की देने के लिए इसलिए हिचकिचा रहे थे क्योकि उनके पास दहेज में देने के लिए धन नही था।[9] जायसी[10] सूरदास और तुलसीदास ने वहुत अधिक दहेज देने की चर्चा की है।

---

1. अकबरनामा- अग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 561-66
2. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन टी सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 185
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 65
4. दि सिख रिलिजन, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 18-19
5. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 248
   स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 152
6. जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, वाम्वे-3 पृष्ठ 15
7. दि सिख रिलिजन भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 145
8. ज0रा0ए0सो0, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 15
9. श्री कृष्ण चैतन्य, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ366
10. पद्मावत, उर्दू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 148, 203

सलीम का जव विवाह हुआ था तो राजा भगवान दास ने जो लड़की का पिता था कई सोने के चेन दहेज में दे दिया और वहुत सी गुलाम स्त्रियों को भी दहेज में दिया। घोड़े जिन पर सोने की काठी लगी होती थी उपहार में दिया जाता था।[1] और कभी-कभी तो पूरा गाँव ही दहेज में दे दिया जाता था।

अन्तर्जातीय विवाह :-

अर्न्तजातीय विवाह व्यवहारिक नही माना जाता था।[2] किसी भी परिवार में सम्बन्ध स्थापित करने से पहले परिवार की भली भांति जाँच की जाती थी। अवुल फजल ने इसका कारण वताते हुए लिखा है कि अच्छे सन्तान जो शारीरिक, मानसिक और नैतिक दृष्टिकोण से स्वस्थ होते थे, अपने पिता और माता के गुणो को ही प्राप्त करते थे।[3] आइन-ए-अकवरी में जाति प्रतिवन्ध[4] का पूरा वर्णन किया गया है। करेरी[5] और मनुची[6] ने भी इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

अन्त्येष्टि संस्कार और उससे सम्बन्धित रीतियां :-

अन्तिम संस्कार को ही अन्तयेष्टि कहा जाता है। हिन्दुओं के सभी धर्मावलम्वियों में अंतिम संस्कार का विधान है। इस संस्कार के प्रसंग में, वेद विधि से शव का स्नान, विमान रचना, अर्थी सज्जा, चिता निमार्ण, तिलांजलि देना, शास्त्रानुसार दसगात्र विधान, क्रिया कर्म, दान आदि क्रियाएं सम्मिलित है।[7]

---

1. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ677-78
   मुन्तखब-उत तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 353-541
2. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 255
3. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 677
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 339
5. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 255
6. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पृष्ठ 55
7. शर्मा, रतनचन्द्र- मुगल कालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण, संस्कार 1979 ई0 जयपुर पुस्तक सदन जयपुर, पृष्ठ 181

दाह संस्कार को उदाक कर्म, असोच, अस्थि संचयन, शान्ति कर्म ओर सपिन्ड करन का नाम दिया जाता है। मुगल काल में शरीर का जलाना भी प्रचलित था।[1] टेरी और ऑविंग्टन[2] के अनुसार शव को इसलिए जलाया जाता था कि जिससे कीड़े मकोड़े न खा जाय। कही-कही पर जहाँ पानी की सुविधा नही रहती थी शव को गाड़ दिया जाता था।[3] आसाम[4] और मालावार[5] में गाड़ने की प्रथा थी। बच्चो को और साधुओं को जल प्रवाह कर दिया जाता था। अवुल फजल लिखते है कि मरने के पहले गंगाजल, सोना, मोती और तुलसी दल मुँह में डाल दिया जाता था और गऊ दान भी करना पड़ता था। जिससे वो दूसरे ससांर को आसानी से पार कर सकें।[6]

वंगाल[7] में अंतरजली की प्रथा थी, जिसकी चर्चा करेरी[8] ट्रेवर्नियर, डेलावेले ओर अवुल फजल[9] करते है। मरने के वाद स्त्रियां छाती पीट करके रोती ओर चिल्लाती थी।[10] वृद्ध लोगो के मरने पर दुख नहीं प्रकट किया जाता था। इसकी पुष्टि डेलावेले पीटर मुण्डी, ओविंग्टन और मनुची करते है। मरने के वाद जल्द से जल्द कुछ संस्कारो का पालन करके जैसे नाखून रंगवाकर बालवनवाकर[11]

---

1. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 443
2. ओविंग्टन,जे0ए0वायोज-टू सूरत इन द इयर,1689,लन्दन1696,पृष्ठ342
3. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 34
4. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 412
5. इण्डियन ट्रेवल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी पूर्वोद्धृत पृष्ठ 249
6. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 355
   स्टोरिया दी मोगोर, भाग-4, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 441
7. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 431
8. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 249
9. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 354
10. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 156
11. हिन्दू संस्कार, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 439

ठंडे पानी से नहलाकर और नये चद्दर से ढक करके अंतिम क्रिया किया जाता था।

अवुल फजल लिखते है कि एक विवाहित स्त्री अपने कपड़ो में ही अंतिम संस्कार के लिए भेजी जाती थी। तरह-तरह के सुगंधित चंदन और इत्र लगाकर ही अन्तयेष्टि संस्कार किया जाता था। नदी के किनारे[1] उसकी अंतिम क्रिया की जाती थी। शव के साथ वहुत लोग जाते थें वृद्ध लोगो के शव के साथ वैंड वाजा भी जाता था और शंख भी वजा करते थे।[2] उसके सम्बन्धी लोग साथ में जाते थे और वह राम राम[3] की ध्वनि करते थे।

साधारण लोगो को जलाने के लिए साधारण लकड़ी का प्रयोग किया जाता था और वड़े लोगो को जलाने के लिए चन्दन की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। उसके वाद उसके निकट के सम्बन्धी लोग बाल वनवाते थे।[4] शोक काल की अवधि स्थान-स्थान पर वदला करती थी। इस शोक काल में वाल का वनवाना, वेदो का पढ़ना, पूजा करना मना रहता था।[5] तीन दिनो तक लोग खाना खरीदकर खाते थे। केवल दिन मे खाने की प्रथा प्रचलित थी।[6] मिट्टी का वर्तन जो घर में रहता था उसे तोड़ दिया जाता था। स्त्रियां सफेद वस्त्रों को धारण करती थी। संचालन क्रिया भी लोग किया करते थें हड्डियो का मरने के वाद इक्ट्ठा करना प्रथा थी और उसको दूध से धोकर[7] ही उसका अंतिम संस्कार किया जाता था। दस या बारह दिनो तक मरे हुए के नाम भोजन निकालना एक प्रथा थी। ऐसी धारणा थी कि मरी हुई आत्मा स्वर्ग पहुंच जाती थी।

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 355,356
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 156
3. ए वायेज टू सूरत इन दी इयर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 342
4. एगस्टर विलियम- अर्ली ट्रेवेल्स इन इण्डिया, लन्दन 1927 पृष्ठ 217
5. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 294
6. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 356
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 154

मनुची ऐसा लिखते है कि तेरहवें दिन निकट के सम्बन्धी लोग जेवर और कपड़े दान में देते थे।[1] अवुल फजल लिखते है कि वर्षी के दिन श्राद्ध किए जाने की प्रथा थी। जहाँगीर भी हिन्दुस्तान के इस प्रथा की चर्चा करते हुए लिखते हैं। आइन-ए-अकवरी में इसका विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है।[2] मरी हुई आत्मा के नाम पर ही चार या पाँच व्राह्मणों को भोजन करा के कपड़ा दान में दिया जाता था।[3] गया में इस श्राद्ध को करना अत्यधिक पुनीत माना जाता था।

मुसलमानों के संस्कार :-

मुसलमानों में मुहम्मद साहव के समय से ही अकीका[4] प्रचलित माना जाता था। इसके पश्चात अन्य संस्कारों में विस्मिला व सुन्नत इत्यादि की चर्चा मिलती है।

इसी प्रकार से वहुत से अन्य संस्कारों की भी चर्चा की जाती है जो भारतीय परम्पराओं और रीतिरिवाजों के अनुकूल माना जाता था।[5]

जन्म संस्कार :-

प्राचीन काल से ही वच्चे के जन्म के तुरन्त वाद मुंह में शहद डालने की प्रथा थी।[6] मुसलमान लोग ऐसे वख्त पर नमाज पढ़ा करते थे और यह संस्कार वड़े ही धूमधाम से और विधिवत मनाया जाता था।

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पुर्वोद्धृत पृष्ठ 357
2. वही, पृष्ठ 307
3. ज0रा0ए0सी0, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 19
4. "अकीका का शाव्दिक अर्थ है नये पैदा हुए वच्चे का वाल" लेकिन इसका ये अर्थ लगाया जाता है कि जन्म के सातवे दिन वाल वनाना एक त्याग है। एक लड़के के लिए दो बकरा और लड़की के लिए एक वकरा उस दिन वलि चढ़ाई जाती थी। (चोपड़ा द्वारा उदधृत), पृष्ठ 9
5. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10
6. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भोग-1, पुर्वोद्धृत पृष्ठ 129

नामकरण संस्कार :-

वच्चे के जन्म के दिन ही उसका नामकरण संस्कार किया जाता था। उसके पितामह लोग उसका नाम रखते थे।[1] अकबर का नाम वदरी वदरूद्दीन पड़ गया था।[2]

वार्षिक जन्मोत्सव :-

धनी परिवारों में जन्म का वार्षिकोत्सव वड़े ही धूम धाम से मनाया जाता था। प्रत्येक वर्ष पीले सिल्क या सूती रस्सियों में वच्चे के जन्म दिन के दिन एक गाँठ वाँध दिया जाता था।[3] वादशाह का जन्मोत्सव पूरे राज्य में वड़े ही धूमधाम के साथ मनाया जाता था।[4] हुमायूँ के समय से ही वादशाह के वरावर धातू की चीजें और वहुत सी चीले तौलकर दी जाती थी। औरंगजेव ने अपने शासन के 91वे वर्ष इस प्रथा को वंद करवा दिया था।[5] उस समय राज कुमारों के भी तौल के बराबर दान दिया जाता था।

छट्ठी :-

छट्ठी प्रायः छठवें दिन ही मनाया जाता था। मनुची ने इस दिन वहुत वड़े उत्सवों की चर्चा की है।[6] वे कहते है कि दांवते होती थीं और रोशनी की जाती थी। आतिशवाजियां भी छोड़ी जाती थी।[7] उस समय यह प्रथा थी कि बच्चे को नहलाकर नया कपड़ा पहनाया जाता था और छट्ठी मनाया जाता था।

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 343
2. स्मिथ, वी.ए.-अकबर दि ग्रेट मुगल, आक्सफोर्ड, 1919, पृष्ठ 18
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 346
4. मुन्तरवव-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद भाग-2 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 85
5. हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 85-86
6. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 150
7. वही, पृष्ठ 150

अकीका :-

अकीका प्रायः सातवे दिन मनाया जाता था।[1] यदि लड़का हो तो दो बकरे की बलि चढ़ाई जाती थी और यदि लड़की हो तो एक बकरी की बलि चढ़ाई जाने की प्रथा थी। इसी दिन लड़के का मुंडन भी करवाया जाता था। अवुल फजल मुगलों की इस रीति को तुर्की पद्धति बताते हैं। अकबर जब एक साल चार महीने के थे। मिर्जा अस्करी ने इस रीति का पालन किया था।[2] इसे वुराई दूर करना भी कहा जा सकता है। मुसलमानो के यहाँ बाल काटने का कोई संस्कार नहीं था। दरवार-ए-अकबरी लिखते है कि अकबर को हसन अख्ताल के दरगाह पर इसी संस्कार के लिए ले गए थे।

मकतब संस्कार :-

विस्मिल्ला या विद्यारम्भ या मकतव संस्कार बालक का उस समय किया जाता था जब वह चार वर्ष और चार महीने और चार दिन का होता था।[3] उसी दिन मुगल राजकुमार लोग पढ़ाई आरम्भ करते थे।[4] और यह संस्कार हिन्दुओं के उपनयन संस्कार से ही मिलता जुलता था।

विवाह संस्कार :-

मुसलमानों के यहाँ बहुत ही निकट के सम्वन्धी जैसे माता, दादी, वहन, भतीजी, चाची इत्यादि को छोड़कर किसी से भी विवाह कर सकते थे। शिया और सुन्नी में तथा तुर्की और भारतीयों में विवाह वहुत कम होता था।[5] मुगलो में भी यह भेद प्रचलित माना जाता था। अकबर इस वात के विरूद्ध था

---

1. ह्ग, टी0पी0-ए डिक्शेनरी आफ इस्लाम, लन्दन 1885, पृष्ठ 51
2. आजाद, मुहम्मद हुसैन दरवार-ए-अकबरी, 1921 (उर्दू) पृष्ठ 7-8
3. ए डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51
4. अकबर नामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 105-6
5. इण्डियन कल्चर, भाग-4, न0 1, 1937

कि वहुत निकट के सम्वन्धी के साथ विवाह किया जाय।[1] अवुल फजल इस वात की चर्चा करते है कि कभी-कभी किसी विशेष प्रयोजन के लिए इस तरह के विवाह भी हो जाया करते थे।[2]

हिन्दुओं के यहाँ दुलहा दुल्हिन से अधिक उम्र का होना चाहिए ऐसा नियम था।[3] लेकिन मुसलमानों में ऐसा कोई नियम नही था। अकवर इस तरह के विरूद्ध था और उसने आदेश दिया था कि यदि स्त्री पुरूष से बारह वर्ष वड़ी है तो विवाह अवैधानिक माना जायेगा।[4]

मुसलमानों के यहाँ तीन, चार शादियाँ करने की स्वतन्त्रता दी जाती थी। साधारण मुसलमान लोग केवल एक ही विवाह करना पसन्द करते थे। अकवर केवल एक ही विवाह करने के पक्ष में थे। उसने ऐसा आदेश दिया था कि एक साधारण व्यक्ति एक ही शादी कर सकता है जबकि उसकी स्त्री वांझ न हो।[5] धनी वर्गों के लोग चार से भी अधिक विवाह कर लिया करते थे।[6] विवाह पिता और माता की इच्छा से ही सम्पन्न माना जाता था। उस समय पुरोहितों के माध्यम से ही विवाह तय किया जाता था। अकवर का यह विचार था कि विवाह के लिए माता पिता के अलावा पति-पत्नी की भी अनुमति लेना आवश्यक है।[7] अमीरों के वच्चों के विवाह के लिए शासक से अनुमति लेनी पड़ती थी। मुगल वादशाह अपनी लड़कियों का विवाह नहीं करते थे, यद्यपि आगे चलकर के औरंगजेव ने अपनी दो लड़कियों का विवाह किया था।[8] हेजेंस

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 217
2. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 352
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55
4. मुत्तखव-उत-तवारिव, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 212
5. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 357
6. वही, पृष्ठ 212
7. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 277
8. हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55

ने इस वात की चर्चा की है कि मुसलमानों के यहाँ विवाह वहुत ही शानदान और खर्चीला होता था। यूरोपीय यात्री पेलसार्ट[1], थेवेनाट[2] और मनुची[3] ने वड़े ही विस्तार से इसका उल्लेख किया है। ग्रोस ने वंगाली सौदागरों को लाखों रूपयें खर्च करते हुए देखा है। दारा की शादी में वत्तीस लाख रूपया खर्च किया गया था।[4] फारसी के पुस्तकों में भी राजकुमारों के विवाहों की चर्चा मिलती है।[5] तीन से चार रोज तक विवाह चलता रहता था और लड़के वालो के तरफ से चार उपहार "साचक" लड़की वालों के यहाँ पर भेजा जाता था। जहाँगीर ने खुर्रम के विवाह के अवसर पर पचास हजार 'साचक' मुजफ्फर हुसैन की लड़की के घर भेज दिया था। दारा के विवाह के समय दो लाख रूपयें का 'साचक' भेजा गया था। कुछ महीने के वाद विवाह होना वन्दी संस्कार के द्वारा आरम्भ होता था।[6] जिसमें दूल्हे के हाथों को लाल हिना से रंग दिया जाता था। मनुची के अनुसार एक गिलास पानी वह ग्रहण करता था जो शादी की पुष्टि का द्योतक माना जाता था।[7]

निकाह काजी के द्वारा ही सम्पन्न माना जाता था[8] और इसके दो गवाह होते थे। दुलहिन शादी की अनुमति देती थी।

---

1. पेलसार्ट- जहाँगीरर्स इण्डिया, अनुवादक, मोरलैण्ड तथा गेइल, कैम्ब्रीज 1925, पृष्ठ 82
2. इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 31-33
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 152
4. कानूनगो, के0आर0-दारा शिकोह, कलकत्ता, 1936, पृष्ठ 14
5. वही, पृष्ठ 14
6. वही, पृष्ठ 14-15
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 152
8. दारा शिकोह, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 14-15

दुल्हा प्रार्थना दुहराता था और फिर मेहर की घोषणा की जाती थी।[1] शाहजहाँ ने मुमताज के लिए पाँच लाख का मेहर स्वीकार किया था।[2] इसके वाद फिर कुरान के आयत जिसमें ईश्वर के तरफ से आर्शीवाद रहता था उसे दुहराया जाता था।

अन्त्येष्टि संस्कार और उससे सम्बन्धित रीतियाँ :-

मुसलमानों के वहाँ स्त्री व पुरूष दोनो का ही अंतिम संस्कार एक ही ढंग से किया जाता था।[3] सभी रीतिया पैगम्वर के वताए हुए नियम के अनुसार की जाती थी। केवल दो कार्य नही बताया गया था। जैसे स्त्रियों का रोना और मरे हुए की प्रशंसा करना।

समकालीन ग्रन्थों में इन रीतियों की कोई भी चर्चा नही की गयी है मुसलमानों के यहाँ अधिकांश संस्कार उसी तरह से किया जाता था जैसा कि आज भी किया जाता है। वड़े आदमियों की मृत्यु होने पर घोषणा की जाती थी। मुगलों के काल में एक निश्चित पद्धति का पालन किया जाता था। जिससे राजकुमार या सम्राट की मृत्यु की सूचना दी जाती थी। यूरोपिय यात्री इस वात की भी चर्चा करते है कि मरने के वाद स्त्रियों के रूलाई की चर्चा सुनायी पड़ती थी।[4]

एक पलंग पर लिटा करके सिर को पूरव की ओर रखकर शव को ले जाते थे। अमीरो के शव को वड़े ही इज्जत के साथ ले जाया जाता था। श्रेणी के हिसाव से हाथियो, घोड़े शव के साथ ले जाते थे। उसके सम्वन्धी व मित्र लोग भी शव के साथ जाया करते थे स्त्रियों के मरने पर कोई भी दुआ नही किया था और मुसलमानों का ऐसा विश्वास था, कि स्त्रियां स्वर्ग में नहीं जाती है।[5] कुरान

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 152
2. दारा शिकोह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 14-15
3. ए डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 80-82
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 282
5. स्टोरिया दी मोगोग, भाग-2, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 153

की आयत को पढ़ा जाता था और जल्द से जल्द लाश को नहलाकर कपड़े से ओढ़ाकर गाड़ दिया जाता था।[1] कुरान के आयत काजी पढ़ता था और सभी कार्य उसके उपस्थिति में सम्पन्न किया जाता था।[2] कुरान की आयत पढ़कर ही सब लोग मिट्‌टी डालते थे। मुख्य अंतिम संस्कार का नमाज मस्जिद में ही किया जाता था और वहाँ पर इमाम नमाज कराते थे और फिर उसको कब्र में गाड़ा जाता था। कब्र में उसका सिर उत्तर की तरफ किया जाता था और उसके मुँह को मक्का की तरफ कर दिया जाता था। मुसलमानों का ऐसा विश्वास था कि कयामत के दिन वह मरा हुआ व्यक्ति खड़ा हो जायेगा।[3]

मनुची लिखते है कि चालीस दिन तक शोक मनाया जाता था।[4] मुगल वादशाँह अमीरों के लड़को को अमीरो के मरने पर शोक व्यक्त करने के लिए कपड़े दिया करते थे। अच्छा वस्त्र और अच्छा भोजन इस काल में नही प्रयोग किया जाता था।[5] जहाँगीर कुतुवुद्‌दीन कोका की माँ के मरने पर कई दिनो तक कपड़ा नही वदले थे।[6] शाहजहाँ ने मुमताज महल के मरने पर रंगीन कपड़ा पहनना छोड़ दिया था। संगीत सुनना वन्द कर दिया था। दावत तवाजे में जाना भी उन्होंने छोड़ दिया था।

राजकुमार आजम खाँ ने भी अपनी स्त्री के मरने पर ऐसा ही किया था। शाहजहाँ के मरने पर भी औरंगजेव व राजकुमार लोग भी सफेद कपड़े

---

1. ए-डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 81
2. सरकार, जदुनाथ- एनेक्डोट्रस आफ औरंगजेब एण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज, द्वितीय संस्करण, 1925 पृष्ठ 124
3. सोशल लाइफ डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 48
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 153
5. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 282
6. जहाँगीर- तुजुक-ए-जहाँगीरी, अंग्रेजी अनुवाद, ए0 रोजर्स एवं वेवारिज, कलकत्ता 1909-14, भाग-1 पृष्ठ 85

पहनते थे।[1] हिन्दुओं की तरह से ही मुसलमान लोग भी सर मुड़वा लिया करते थे। स्त्रियां शोक व्यक्त करने के लिए हरे कपड़ों को पहनती थी।[2] तीसरे दसवें और उन्नीसवे दिन कुरान के कुछ आवश्यक खण्ड पढ़े जाते थे। तीसरे दिन शर्वत और खाना बाटा जाता था। चालीसवें दिन सम्वन्धी लोग कव्रगाह पर जाते थे और वहाँ पर वे खाना कपड़ा और रूपया गरीवो को बाँटते थे।[3] मुसलमानों के यहाँभी वर्षी मनायी जाती थी। उस दिन गरीव लोगों को खाना व कपड़ा बाटा जाता था। धनी लोग पूर्वजो के कव्र पर रोशनी जलाया करते थे।[4] साधारण लोग मोमवत्ती जलाते थे और इस प्रकार श्रद्धांजली अर्पित की जाती थी।

इस्लाम का हिन्दू समाज पर प्रभाव :-

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसका प्रभाव यहाँ के शिल्प, कला, संगीत कला, चित्रकला और साहित्य पर देखने को मिलता है। यहाँ तक कि हिन्दुओ में जाति प्रथा का अधिक रूढ़िवादी हो जाना इस्लाम का ही प्रभाव वताया जाता है।[5]

दूसरा प्रभाव जो विशेष रूप से देखने को मिलता है वह नगर संस्कृति अर्थात लोग नगरों में रहना पसन्द करते थे। सिले हुए कपड़े पहनते थे और वड़ी सजावट के साथ रहते थे। वही उनके रहने का ढंग वन गया था।[6]

मुसलमान शासको को संस्कृत से कोई प्रेम नहीं था और न वे व्राह्मणों

---

1. मुहम्मद लतीफ (सैययद) खान वहादुर- आगरा हिस्टोरिकाल एण्ड डिस्क्रिप्टिव, कलकत्ता, 1896, पृष्ठ 40
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 253
3. वही, पृष्ठ 153
4. ए वायेज टू सूरत इन द इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 245
5. मुजीव, एम0- इस्लामिक इन्फ्लुएण्स आन इण्डियन सोसायटी,मेरठ 1972, पृष्ठ 8
6. वही, पृष्ठ 9

की पूजा करते थे। सूफी मुसलमान अपने विचारों का प्रचार करते थे और वे जनता की भाषा को अधिक सुगम समझते थे। उनको हिन्दुओं में कोई रूचि नहीं थी वल्कि वे छोटे तपके के मुसलमानों में अधिक रूचि लेते थे जो उनकी वातों से अधिक प्रभावित थे। मुसलमान लोग फारसी और अरबी को भी भारत वर्ष में लाना चाहे। लेकिन सामान्य जनता हिन्दी भाषा को ही समझती थी।[1]

इस्लाम विलासिता के विरूद्ध था और उनका यह विश्वास था कि अच्छे मुसलमान का जीवन हिन्दुओं से सादा होना चाहिए। लेकिन इस्लाम की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति विल्कुल ही भिन्न थी और इस्लाम ने नगरीय जीवन और विलासिता को अधिक प्रोत्साहन दिया।[2]

जहाँ तककि इस्लाम के उपर हिन्दुओं के प्रभाव का प्रश्न है इनका ये कहना है कि इस्लाम हिन्दू प्रभाव के कारण जमीन के अन्दर ढक गया। इसको खोदकर के साफ करके और तव इसको सही रूप में लाया जा सकता है।[3]

इस्लाम का हिन्दू धर्म पर प्रभाव

इरान और खुरासान के मुसलमान सूफीयों ने दसवी शताब्दी में एक आन्दोलन चलाया कि इस्लाम को जन समूह में फैलाया जाय। भारत वर्ष के मुसलमान सूफियों ने इस आन्दोलन को चलाना जारी रखा। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण में राम की पूजा को उत्तरी भारत के जन समूह का धर्म वताया और अप्रत्यक्ष रूप से जाति प्रथा को एक दैवी प्रेरणा मानकर अपरिवर्तनशील वताया।[4] यह निश्चित रूप से इस्लाम का भारतीय समाज पर

---

1. मुजीव, एम0- इस्लामिक इन्फ्लुएन्स आन इण्डियन सोसायटी,मेरठ 1972, पृष्ठ 10
2. वही, पृष्ठ 10
3. वही, पृष्ठ 11
4. वही, पृष्ठ 8

प्रभाव ही था, जो जाति प्रथा में रूढ़िवदिता आती गई। इस्लाम धर्म में सामूहिक जीवन पर अधिक जोर दिया जाता था। जैसे मस्जिद में इकठ्ठा होकर पाँच वार नमाज पढ़ना। मुसलमान शासकों ने ही नगरों के विकास में अधिक जोर दिया और उसके द्वारा तरह-तरह के व्यवसाय की वृद्धि हुई। अच्छी से अच्छी और कीमती से कीमती चीजें लोग यहाँ वनाने लगें। उदाहरण स्वरूप यहां पर भी पचास हजार तक के एक जोड़ी चप्पल खरीदे जाते थे।[1]

हिन्दू धर्म मे सामूहिक जीवन पर जोर नही देते थे।[2] वल्कि हर व्यक्ति अलग-अलग मन्दिर मे एकाग्रचित होर भगवान की पूजा आराधना करता था। मौर्य और गुप्त काल में कुछ वड़े-वड़े नगर थे। लेकिन हिन्दू आदर्श यही था कि नगरों से वहुत दूर जीवन हो। जिससे कि नगर के धूल और शोरगुल से और भौतिक जीवन से अलग रह करके मनुष्य शान्ति के वारे में सोंच सके।[3] इस लिए हिन्दुओं का जीवन मुख्यतया ग्रामीण था। गाँव में ही लोग रहते थे, कृषि से सम्वन्ध थे और इनकी पूरी सभ्यता ग्रामीण सभ्यता थी।

इन दोनों के समन्वय की प्रक्रिया :-

कवि सन्त कवीर का भी नाम लिया जा सकता है जिन्होने मुसलमानों और हिन्दुओं के उपर अलग-अलग धर्म के लिए आक्षेप किया। हम लोग भी निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि वह हिन्दू थे या मुसलमान। इस्लाम में यह धार्मिक भावना होती है कि गलत धारणाओं का उन्मूलन किया जाय, इसलिए कवीर की धारणा इस्लाम ही का प्रभाव था।[4]

उत्तरी भारत के वहुत से सन्तो ने हिन्दू और इस्लाम संस्कृति में सामंजस्य

---

1. मुजीव, एम0- इस्लामिक इन्फ्लुएण्स आन इण्डियन सोसायटी,मेरठ 1972, पृष्ठ 8-10
2. वही, पृष्ठ 11
3. वही, पृष्ठ 11
4. वही, पृष्ठ 8,9

स्थापित करने की कोशिश की। समन्वयवादी धारा ने लोगो के भिन्नताओं को दूर करने का प्रयास किया और इस वात पर जोर दिया गया कि दोनो एक साथ मिलकर प्रेमभाव में रह सकें। न केवल हिन्दू सन्तो और भक्तों ने वल्कि मुसलमान सन्तो ने भी दोनो में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया और यह मूलरूप से वताया कि दोनो ही मुख्यतया एक ही ईश्वर में विश्वास करते है चाहे नाम कुछ भी हो और दोनों की सभ्यतायें भारतीय है। दोनों में मेल स्थापित करने का प्रयास इन महर्षियों ने किया।

मुगल शासकों में अकबर का काल इसी लिए भारतीय इतिहास में एक युग माना गया है क्योकि पृथकतावादी विचारों का परित्याग करके दो वर्गों अथवा हिन्दू और मुसलमानों मे सहृदयता की भावना लायी गयी। हिन्दुओं में सवसे प्रभावशाली वर्ग राजपूतों का था। अकवर ने राजपूतों से वैवाहिक सम्वन्ध स्थापित करके हिन्दुओं से स्थायी मेल कायम किया। इससे यह स्पष्ट है कि अकवर ने समन्वयवादी विचारों को कार्यरूप में परिणत किया। यह समन्यवादी भावनाओं का ही परिणाम था, कि शासक ने एक राष्ट्र की कल्पना की और इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वहुत हद तक सफल भी हुआ। जिस स्वस्थ परम्परा का सृजन अकबर ने किया वह जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में भी देखने को मिलता है। हिन्दू और मुसलमान जो एक दूसरें से अपने को अलग समझते थे। वह समन्वयवादी नीति के कारण एक दूसरे के निकट होते गयें और सौहार्द पूर्ण भावनायें जागृत हुई।

द्वितीय अध्याय

भोजन
एवं
पेय पदार्थ

द्वितीय अध्याय
भोजन एवं पेय पदार्थ

जिस प्रकार श्वास क्रिया के लिए वायु जरूरी है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर के लिए भोजन की आवश्यकता है। संस्कृति के विकास के साथ-साथ मानव की भोजन सम्वन्धी रूचि तथा स्वाद हमेशा परिवर्तित होती गयी। आज भोजन की अनेकों विधियाँ और उसके सम्वन्ध में अनेकों मान्यताएं संसार में पायी जाती हैं।

भारत के जनमानस की विचार धारा धर्म से प्रभावित होने के कारण हमारे दार्शनिक और आचार्यो ने भोजन जैसी विशुद्ध शारीरिक आवश्यकता का सम्बन्ध धर्म नैतिकता एवं अध्यात्म के साथ जोड़ दिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनो ही मांस के अतिरिक्त और सभी एक से खाद्य पदार्थ प्रयोग में लाते थे। मध्यवर्ती और दक्षिणी प्रान्तों में हिन्दू लोग मांस खाना पसन्द नही करते थे।[1]

दिल्ली, लाहौर और आगरा के वाजारों में मुसलमान पका हुआ तथा स्वादिष्ट भोजन पाते थें।[2] शाकाहारी और मासांहारी दोनो ही तरह के भोजन

---

1. एवायेज टू सूरत इन द इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 303 में लिखा है कि मांस चाहे जितने अच्छे ढंग से वनाया जाय या विमारी अथवा मृत्यु के भय से खाने के लिए कहा जाय। धर्मनिष्ठ हिन्दू इसे ग्रहण नहीं करते थे। (चोपड़ा द्वारा उद्धृत)
2. मैनरिक, ऐवेशियन-ट्रेवल्स, अनुवाद, सी.ई.लार्ड एण्ड हाम्पटन, लन्दन 1927, भाग-2, पृष्ठ 186-87

मिल जाया करते थे।[1] जनसाधारण तथा निम्न वर्ग के लोगों के भोजन में दाल, रोटी की प्रमुखता होती थी।[2] पश्चिमी क्षेत्र के लोग प्रायः गेहूँ और पूर्वी क्षेत्र में चालव का प्रयोग अधिक करते थे। इस समय गेहूँ, जौ, धान, चना, मोंठ, मसूर, कलका, ज्वार, उरद, मूंग, तिल, मटर, सरसो आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[3]

चावल से निर्मित व्यंजन :-

धान का उल्लेख अनेक स्थानों पर हुआ है।[4] उसी को कूट कर चावल बनाया जाता है[5], धान की अनेक जातियाँ पायी जाती है। जायसी ने सोलह सौ प्रकार के चावलों की चर्चा की है किन्तु नाम केवल सत्ताईस गिनाये गये है। राजभोंग, रानीकाजर, झिनवा, रदुआ, दाऊदखानी, कपूरकान्त, लेजूरि,, रितुसारी, सगुनी, वेकरी, पढ़िनी, गड़हन, जड़हन, वड़हन, मुधुकर, दिकुला, जीरासारी, धृतकांदा, कुवरविलास, राम-राम, संसार, तिलक, खंडचिला, राजहंस, हसाभौरी, रूपमंजरी, केतकी तथा विकौरी। इनमें के कुछ अव भी उत्तर भारत के विभिन्न भागों मे पायें जाते हैं।

मुगलकाल में परम्परागत रूप से चावल से वने तीन मुख्य पकवान प्रचलित थे। भात या ओदन, खीर और खिचड़ी। सामूहिक भोजो में सुगन्धित भात के परोसे जाने का वर्णन किया गया हैं कवीर[6], मीरा[7], धर्मदास, सूरदास[8],

1. मैनरिक, ऐवेशियन-ट्रेवल्स, अनुवाद, सी.ई.लार्ड एण्ड हाम्पटन, लन्दन 1927, भाग-2, पृष्ठ 186-87
2. रफी, मिर्जा मुहम्मद सौदा-कुल्लियात-ए-सौदा, पृष्ठ 198,
3. कवि सूदन-सुजान चरित्र, पृष्ठ जंग, छंद 42
4. तुलसीदास- श्री कृष्ण गीतावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 373
5. तुलसीदास- कवितावली, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 81
6. कवीर, कवीर ग्रन्थवाली, सम्पादक, पुष्पपाल सिंह, पृष्ठ 346
7. मीरा- मीरा सुधा सिन्धु, पृष्ठ 313.966
8. सूरसागर- पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10, 12, 13, 270

आदि ने खीर का वर्णन किया है। सूर ने खांड़ को खीर का नाम दिया है। कृपानिवास ने मेवा मिली हुई लाल खिचड़ी का उल्लेख किया है।[1]

झालर या झलरा :-

यह रीवा की ओर का एक विशेष भोज्य पदार्थ है, जो चावल के मांड़ से बनाया जाता है। चालव वनाने के वाद जो मांड़ पसाया जाता है, उसे थाली में इक्ठठा कर लिया जाता है जब वह गाढ़ा होकर जम जाता है तो उसे घी में तल दिया जाता है।[2]

दाल या पहिति :-

दाल में घी डालकर भात के साथ खाने का वर्णन किया गया है। सूरदास ने मसूर, मूँग और उरद की दाल का भी वर्णन किया है[3] मीरा के उल्लेख से दाल के लवण युक्त होने की सूचना मिलती है।[4] विभिन्न प्रकार के मसाले डालकर5 उसे सरस, स्वादिष्ट हल्का पतला व चिकना वनाया जाता था।[6]

गेहूँ और आटा से निर्मित व्यंजन :-

गेहूँ को चक्की में पीस कर आटा बनाने की परम्परा वहुत पुरानी है। उस समय के कवियों ने दो प्रकार के आटे का उल्लेख किया है, मोटा आटा जो सामान्य लोगों का भोजन था[7] और खूब महीन पिसा हुआ वढ़िया आटा अथवा

---

1. कृपानिवास- कृपानिवास पदावली, डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के नीजी संग्रह में है, पृष्ठ 60
2. पदमावत् पूर्वोद्धृत, टिप्पणी-2 पृष्ठ 584
3. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, टिप्पणी 2, पृष्ठ 584
4. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 966
5. व्रजवासीदास- व्रजविलास, महाराजा वलरामपुर, पुस्तकालय वलरामपुर गोण्डा में सुरक्षित, पृष्ठ 62, 65, चाचा वृन्दावनदास लाड़सागर, पृष्ठ 199, 244
6. पदावली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 60
7. कवीर-ग्रन्थावली, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 218

मैदा[1] जिसका उपयोग उच्च वर्ग के लोग करते थें आटे और मैदे को पानी मिलाकर गूँथा जाता था[2], उसके वाद उसे खूब माड़कर मुलायम वनाया जाता था।[3] तब उससे अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ वनाये जाते थे।

रोटी :-

नरोत्तमदास[4] ने फुले हुए फुलकों का वर्णन किया है। फूली हुई रोटी आज की तरह उस समय भी पसन्द की जाती थी। गेहूँ के ऑटे में चने का वेंसन और नमक मिलाकर छोटी-छोटी मिस्सी रोटी बनायी जाती थी। जिससें घी लगाकर या मक्खन से खाया जाता था।

लुचुई :-

खूब भिगोये हुए मैदे की दो लोई वनाकर वीच में घी लगाकर बेलन से खूब वड़ा तवे पर घी से सेंका हुआ मुलायम और पतली पूरी को लुचुई कहा जाता था।[5] डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने आजकल की प्रचलित पूरी (पूड़ी) का उस समय की सोहारी वताया है।[6]

सेंवाई :-

गूँथे हुये आटे का सूत जैसा लम्वा तार वनाकर उसे सुखाकर और घी में तलकर दूध में चीनी और मेवे के साथ पका कर खाते थे। पहले आटा छानने वाले 'छननी' में आटे के तार वनाये जाते थे किन्तु अव हाथ से चलाई जाने वाली मशीनें उसके लिए वनाई गयी है।

---

1. रहीम-रहीम रत्नावली पृष्ठ 20
2. कवीर ग्रन्थावली, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 145
3. पद्मावत, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 583
4. नरोत्तमदास-सुदामाचरित, पृष्ठ 40
5. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, (टिप्पणी सख्या-3), पृष्ठ 271
6. वही, पृष्ठ 271

कचौड़ी :-

कचौड़ी का उल्लेख जमाल[1] और मीरावाई ने किया है। मीरावाई[2] ने घी में बनी हुई कचौड़ी का वर्णन किया है। कचौड़ी शब्द में "कच" भी दाल का वाचक माना जाता है। प्राचीनकाल से ही इसका भारतीय भोजन में महत्वपूर्ण स्थान था। मुगलकाल में इसमें मेवा डालकर तथा विभिन्न प्रकार के मसालों को डाल कर सुगंध युक्त वनाया जाता था।[3] यह खाने में रूचिकर भी होता था।[4]

पकौड़ी :-

पकौड़ी अधिकतर वेसन की वनती थी। तेल में इसको तल कर दही में भिगो दिया जाता था। व्रजवासीदास और कृपानिवास ने पकौड़ी के "कोरे" और दही में मिला हुआ दोनों रूपो का वर्णन किया है मेली मठा पकौड़ी छोटी के आधार पर कहा जाता है।[5]

पूआ :-

तुलसीदास ने पूआ का भी वर्णन किया है।[6] कई कवियों ने कई स्थानों पर व्यजनों में इसका नाम लिया है।[7] सूर ने दोपहर के भोजन में इसका उल्लेख किया है।[8] पूआ शहद में सानकर पतले आटे को घी में तलकर वनाया जाता था।

---

1. जमाल-जमाल के दोहे, सम्पादक, पंडित महावीर सिंह गहलोत, पृष्ठ 25
2. मीरा सुधा सिन्धु, पुर्वोद्धृत पृष्ठ 517
3. चाचा वृन्दावन दास- व्रजप्रेमानन्द सागर, 47वीं लहरी छन्द 32
4. लाड़सागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 294
5. व्रजविलास,पुर्वोद्धृत,पृष्ठ 60, पदावली पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 60, लाड़सागर,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 294
6. तुलसीदास- गीतावली, वालकांड, गीताप्रेस, गोरखपुर, पद 32
7. सूरसागर, पूर्वोद्धृत 10-214, 227 और 396, कृष्णदास- कृष्णदास के पद पृष्ठ 272 एवं 443
8. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10, 12, 13

पापड़, मुँगौरी, कचरी, सालन, कढ़ी, सालन :-

पापड़ का वर्णन जायसी[1], नरोत्तमदास[2], सूरदास[3] आदि ने किया है। मूँग की दाल से बने नमकीन पदार्थ को लोग मुँगौरी और मुगौही कहते थे। कचरी का नामोल्लेख सूरसागर में हुआ है। सूर ने वेसन के सालन और जायसी ने वेसन की कढ़ी[4] का वर्णन किया है।

शकरपारा :-

शकरपारे का नाम सूरदास ने कृष्ण के लिए किया है।[5] जायसी ने इसे खण्डरा कहा है। अवधी में भी शकरपारे का यही नाम लिया जाता है। डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने वेसन के खण्डरे, आटे के खण्डरे, मूँग, चना, अरहर, उरद की दालों के खण्डरे, नमकीन और मीठा अनेक प्रकार के खण्डरों की चर्चा की है।[6]

पेराक या गूँझे :-

बड़े-बड़े गूँझे को पेराक कहा जाता था[7] इसका प्रचलन विवाह के अवसर पर अधिक होता था। सूरदास ने इसका उल्लेख पिराक[8] के रूप में किया है। पिसी हुई सोंठ और चीनी को आटे की गुझियां में भरकर घी में तल दिया जाता था। उसे चीने या गुड़ की पाग में रख दिया जाता था।[9]

---

1. पदमावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 593
2. सुदामाचरित्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 40
3. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10, 12, 13
4. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 293
5. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10, 183, 211, 212 और 810
6. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 270, 271
7. वही (टिप्पणी 7), पृष्ठ 594 एवं 637
8. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 10-183, 211, 212 और 810
9. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 593 (टिप्पणी 4)

गुझियाँ :-

यह भी आटे की ही वनती थी। इसे भी समोसे के ही तरह बनाकर उसमें खोवा, मेवा आदि भरकर उसे घी में तल दिया जाता था। यह गुझे या पेराक से छोटी होती थी। इसे मीरावाई ने "उल्लेगुजा"[1] और सूर ने गूझा की संज्ञा दी है। सूर ने एक जगह पर गोझा[2] और राजा आसकरण ने गुंजा की संज्ञा दी है।

माठ या मठरी :-

मठरी का नाम राजा आसकरण ने लिया है सूरदास ने कृष्ण के कलेवा में इसके प्रयोग के वारे में वताया है। मैदे या आटे की मठरियों को घी में तलकर मीठा वना लिया जाता था। चौड़ा फैला हुआ मैदे के थान को पाग कर माठ वनाया जाता था। विवाह के अवसर पर इसका अधिक प्रचलन होता था।[3]

खुरमा और खाजा :-

आटे की मोटी सी रोटी बेलकर उसे छोटे-छोटे, टुकड़ो में काटने के वाद उसे घी में तल दिया जाता था और फिर उसको चाशनी में डालकर खुरमा वनाया जाता था। खाजा को वेलकर तल दिया जाता था और जब वह पक जाता था तो उसको चाशनी में डाल दिया जाता था। दोनो का ही उल्लेख राजा आसकरण ने किया है। सूरदास ने खुरमा को कलेवा[4] के समय और खाजा को रात्रि के[5] भोजन के समय रखा है।

---

1. मीरा सुधा सिन्धु, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 818
2. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 10-12, 13, 183, 211, 212, और 810
3. पदमावत्, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 593, 594
4. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 10-183, 211, 212 और 810
5. वही, पृष्ठ 10, 214, 227 और 396

घेबर, सोलमा, लपसी :-

मीरावाई ने घी वाले घेवर, सोलमा और लपसी के नामों का उल्लेख किया है[1] सूरदास ने प्रत्येक समय के भोजन में घेवर का नाम लिया है।[2]

फेनी :-

जायसी ने पापर के साथ फेनी की चर्चा की है।[3] सूरदास ने इसे दोनों समय के खाने का आवश्यक अंग वताया है।[4]

खिरौरी :-

जायसी ने चावल के आटे से गर्म पानी में वनाये हुए लड्डू को खिरौरा के नाम से वर्णन किया है। आचार्य शुक्ल ने इसे खाण्ड़ का लड्डू वताया है।[5]

बूंदियाँ और लड्डू :-

जायसी ने वुँद ढ़रहरी का उल्लेख किया है।[6] डॉ0 अग्रवाल ने उसे हरे मटर की या चने की वुंदिया के लड्डू होने की सम्भावना व्यक्त की है।[7] वैसे लड्डू के नामों का भी उल्लेख मीरा[8], कृष्णदास[9] जमाल[10] आदि ने किया है। सूरदास ने लाडू का नाम लिया है।[11]

---

1. मीरा सुधा सिन्धु, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 770
2. सूरसागर, पूर्वोद्धृत 10-183, 211, 212, 214, 227, 396, 810 और 1213
3. पद्मावत, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 637
4. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 10-183, 211, 213, 214, 227, 396, 810 और 1213
5. पद्मावत, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 637 एवं टिप्पणी, पृष्ठ 638
6. वही, पृष्ठ 593
7. वही (टिप्पणी नं.7) पृष्ठ 594
8. मीरा सुधा सिन्धु, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 386, 387 और 818
9. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 443
10. जमाल के दोहे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 14
11. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10-1213

मोरंडा :-

दूध के छेने और दही को कपड़े में वाँध दिया जाता था। इसी प्रक्रिया को मोरंडा कहते थे। उसका पानी निचोड़ कर उसे घी में भून दिया था और मोर के अंडे के समान रसगुल्ले वना कर उसे चाशनी में डाल दिया जाता था। पश्चिम मे और पंजाव में भुने हुए गेहूँ, मक्का, मुरमुरे या चने के मुरंडे भी वनते थे। घी में भुने हुए नमकीन मुरंडे वनाने का भी प्रचलन था।[1]

दूध और उससे निर्मित विभिन्न खाद्य पदार्थ :-

आलोच्य काल में दूध और उससे वने हुए दही, घी, मक्खन, मलाई, खोवा आदि प्रचुरता से व्यवहार में लाये जाते थे।[2] दही को मथकर मक्खन और मक्खन को मथकर घी निकाला जाता था।[3] दूध से ''पेक्सी'' भी वनायी जाती थी।[4] यह सब दूध फाड़ कर वनाया जाता था।

छाक या छाछ :-

दही को मथने पर उसका मक्खन निकाल लिये जाने के वाद जो पतला अंश वचता था उसे ही छाछ या छाक का मठ्ठा कहते थे। यह अनेक प्रकार की विमारियों में दवा के रूप में छाछ[5] का वहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है घर में गायों के साथ गये हुए ग्वालों का छाछ या छाक पीना कवियों का रूचि पूर्ण विषय रहा।[6] तुलसी ने इसका उल्लेख निकृष्ट पेय के रूप में किया है।[7]

---

1. पद्मावत, पूर्वोद्धृत (टिप्पणी 6) पृष्ठ 272, टिप्पणी 4, पृष्ठ 594
2. व्रजविलास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 220, लाड़सागर, पूर्वोद्धृत, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 294, दास श्रीकृष्ण - माधुर्य लहरी, पृष्ठ 143
3. पद्मावत- शब्दावली, छन्द 123
4. व्रजप्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, 24 वी लहरी, छंद 7
5. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 10-1213
6. रसखान-सुजान रसखान, पृष्ठ 14, वर्मा धीरेन्द्र-अष्टछाप, पृष्ठ 249
7. तुलसीदास-रामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर पृष्ठ 39

फल और मेवा :-

मौसमी फलो में आम, बेर, संतरा, अमरूद, अन्जीर, अंगूर वहुत अधिक मात्रा में होता था। धनी और गरीब दोनों ही इसे खाते थे। विदेशो से भी फल मंगाया जाता था लेकिन वह केवल धनी लोग प्रयोग करते थे।[1] वर्नियर लिखते है कि उमरा लोग फल का प्रयोग अधिक करते थे और वहुत अधिक मात्रा में फल दूसरे देशो से मंगाया जाता था। वर्नियर ने देखा कि दिल्ली में वहुत से ताजे फल विदेशों से मगा कर प्रयोग किये जाते थे।

मेवा में गरी, मुनक्का, मखाना का लगट्टा, काजू, अखरोट, पिस्ता इत्यादि प्रयोग किया जाता था।[2] मुगल वादशाह और अमीर लोग प्रायः गंगा नदी का पानी प्रयोग करते थे।[3] धनी लोग गुलाव का जल, शर्वत तथा नीवू का पानी पीते थे।[4]

शाक, तरकारियाँ और उनसे वनने वाले व्यंजन :-

आलोच्ययुगीन काव्य के उल्लेखों के आधार पर तत्कालीन भोजन में शाक भाजी का महत्वपूर्ण स्थान ज्ञात होता है। वस्तुतः सभी प्रकार के व्यंजनों में सरसता और स्वादों में विभिन्नता इन्हीं से आती हैं। नाभादास ने तो भोजन के समय तरकारियों का रेला लगाने का वर्णन किया है और तरकारियों के अनेक रूप भी वताये है[5] मीरा ने भोजन के साथ छत्तीस प्रकार के शाक[6] का उल्लेख किया है। उन्होने तोरी के शाक का विशेष रूप से उल्लेख किया है।[7] तरकारियों

---

1. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 936
2. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 65-66
3. ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 221, 364
4. अकवर नामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 421
5. दास, राम चरण- अष्टयाम, पूजाविधि, पृष्ठ 68
6. मीरा सुधा सिन्धु पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 528
7. वही, पृष्ठ 351

में मूली[1] भांटा, गाजर, लौकी[2], परवल[3] आदि के नाम आये है। लालदास ने सब्जियों में भांटा, करेला, पोई, चिक्स, ककोरा डिडिसा, वूक, फाफर, बधुआ, परवल, सोना-पालक, लौकी, कोहड़ा, मेथी, सूरंड, अरूई, कुदुजू, चौराई, हुरई सेम आदि के नाम लिए है[4] रामचरण दास ने भांटा और कटहल की तरकारी तथा अत्यधिक रूचिकर शाक का उल्लेख किया है[5] इसी प्रकार सूदन[6] और रामसरवे ने अनेकों प्रकार की तरकारियों की चर्चा की है।

अरूई को अरिहन डालकर वनाया जाता था। तोरई चिचिड़ा और टिंडे को तलकर जीरे से छौक कर घी में कलकला कर वनाया जाता था। परवल को घी में तलकर वनाया जाता था। करेले का तीतापन निकाल दिया जाता था और उसको काटकर उसमें अदरक डालकर तला जाता था। खड़े सेम का फांक वनाकर पकाया जाता था। सांगो को छौंक कर सोंधा करके रखा जाता था। अपने शाही मेहमानों के लिए रत्नसेन ने अनेकों तरह की तरकारियों की तैयारी करवायी थी।[7] कुछ तरकारियों और पत्ते की पकौड़ी तथा रायते आदि भी वनाये जाते थें अरवी के पत्ते की पकौड़ी को रिक्वंछ कहा जाता था।[8] अरवी के पत्तों को महीन महीन काट कर उरद की पीटी में लपेट दिया जाता था और फिर उसे घी में तल दिया जाता था। फिर उसे सुखा करके या रसेदार छौंक दिया जाता था। विहार में इसे रिक्वंछ या सेढ़ा कहा जाता था।[9]

---

1. रामचरित मानस, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 242, रहीम रत्नावली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 27
2. वही, पृष्ठ 27
3. जमाल के दोहे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 25
4. लालदास- अवधविलास, पृष्ठ 185
5. अष्टयाम पूजाविधि, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 94
6. सुजान चरित्र, षष्ट जंग, द्वितीय अंक, पूर्वोद्धृत छंद 43
7. पदमावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 591
8. वही पृष्ठ 593 (टिप्पणी 8)
9. वही, पृष्ठ 593 (टिप्पणी 8)

सूरदास ने अजवाइन, इमली, जीरा, मिर्च, राई, नमक, सोंठ, हल्दी, हींग आदि का वर्णन मसालों के अन्दर किया है[1] भोजन को स्वादिष्ट और रूचिकर वनाने के लिए अचार और चटनी का प्रयोग भारत में वहुत प्राचीन काल से होता चला आ रहा है।[2]

सामिष भोजन :-

आदि काल से ही मांस मनुष्य के भोजन का अंश माना जाता था। आलोच्ययुग में धार्मिक आन्दोलन हो जाने के कारण तथा अहिंसा के व्यापक रूप में प्रचार होने के कारण समाज में इसका प्रचलन कम हो गया था जो लोग मांस मछली खाते थे उनको निन्दा का पात्र समझा जाता था। इस तरह की भावना निश्चित रूप से प्राचीन कालीन साहित्य की देन मानी जाती है। इस काल के सभी सन्तो और कवियों ने मांस खाने और पशुओं की हत्या करने की निन्दा की है। किन्तु एक तरफ जहाँ मांस खाने को कम किया जा रहा था वही दूसरी तरफ मुसलमान लोगों के निकट सम्पर्क से हिन्दू लोगों में भी मांस खाने का प्रचलन सदैव वढ़ता जा रहा था।

कवीर ने मछली[3] और मांस[4] खाने को पाप और दुराचार की संज्ञा दी है। दादू ने भी मृग को मारकर[5] एक अन्य प्रकार के मांस खाने को हेय कर्म कहा है। तुलसी ने अनेक प्रकार के पशुओं में मांस खाने का उल्लेख किया है[6] जायसी ने पक्षीयों में तीतर, वटेंर, लवा, सारस, कवूतर, कुंज, मोर, पाण्डुक खेटा, गुडरू, असखगेरी, हारिल, चरज, बनमुर्गी जलमुर्गी, चकवा, चकवी, केवा

1. टंडन माया रानी- अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्याँकन, पृष्ठ 129
2. शान्ति कुमार नानूराम, व्यास- रामायण कालीन संस्कृति, पृष्ठ 75
3. कवीर ग्रन्थावली, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 155
4. वही, पृष्ठ 188-189
5. दादू दयाल- श्री दादू दयाल की वाणी, पृष्ठ 205 एवं 252
6. रामचरित मानस, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 177

पीछे, नकटा, लेदी, सोन और सिलारे का नाम गिनाया है।[1]

इन पक्षियों का परिचय डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने वहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। चाकू से इन पक्षियों की गर्दन काट कर इन्हे मारा जाता था[2] और इनके मांस को अनेको प्रकार से तैयार किया जाता था।

मुसलमानों के समय में मछलियों में पढ़िया (पाठीन), रोहू संघ (सभा), मोंगरी (मंगुरी) नारिया (नैनी), मोथ (मुंजी), बाव (बावी), वांगुरी (वांगुटी), चरखी (चरक), चेहलना (चाल्हा), पयासी (परियांसी) का प्रचलन था।[3] उस समय मांस को धोकर खूव साफ करने के वाद उसे दो प्रकार से वनाया जाता था। टुकड़ों में कटे हुए मांस को कटवा और पिसे हुए मांस को पिसवाया बटवा[4] कहा जाता था। पिसे या कटे हुए मांस को आजकल कीमा कहा जाता है। कीमा में गंध के लिए अनेकों प्रकार के मसाले डालकर उसे सुगन्धित पदार्थों और घी से वंघार दिया जाता था। आधा पक जाने के वाद उसमें केसर पीस कर डाला जाता था। मांस में विशेष रूप से सेंधा नमक डाला जाता था। उसमें कंदमूल की गांठे भी डाली जाती थी। मांस में ऊपर से सोवा, सौंफ और धनिया को खूव महीन पीस कर डालते थे जिससे उसकी दुर्गन्ध समाप्त हो जाय और वह सुगन्धित होकर महकने लगें। वड़े-वड़े वर्तनों में पानी डालकर मांस को घी के साथ पकाया जाता था। घी की मात्रा पर्याप्त रहा करती थी। मांस के टुकड़ो को अलग-अलग हाड़ियों में पकाया जाता था।[5] कभी-कभी पूरे खड़े वकरे को लोटे की छड़ी में पिरोकर आग पर सेंका जाता था।[6] और खाने वाले एक साथ वैठकर खाते थे।

---

1. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 580
2. वही, पृ0 580
3. वही, पृष्ठ 582 एवं टिप्पणी पृष्ठ 582-83
4. वही, पृष्ठ 587
5. वही, पृष्ठ 587
6. वही (टिप्पणी 2,3,4,6,8), पृष्ठ 587-88

जायसी ने मांस के समोसे वनाने का वर्णन किया है इसकी विधि की चर्चा आइन-ए-अकबरी में विस्तार पूर्वक की गई है।[1] आटे में मांस भरकर समोसा वनाया जाता था और फिर उसे घी में तला जाता था।[2] जायसी ने भरवा (फल और तरकारियों में भरकर तैयार किया जाने वाला मांस) का वर्णन विशेष रूप से किया है। मांस खाने का प्रचलन आलोच्य काल में इतना वढ़ गया था कि प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से ब्राह्मण लोग मछली, चिड़िया व भेड़ा आदि का मांस खाने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते थे।[3]

पेय पदार्थ :-

मध्यकालीन समाज में सामूहिक भोज के अवसर पर जल को भी सुगंन्धित करके पीने का उल्लेख है। जायसी ने भोज के अवसर पर दासियों द्वारा सुगन्धित जल को कटोरे में डालने का वर्णन किया है। कपूर से सुवासित पानी अत्यन्त स्वाद युक्त होता था।[4] जो केवल राजाओं के यहाँ प्रयोग में लाया जाता था।[5]

प्रतिदिन राजाओं, राजकुमारों और राजकुमारियों को जल देने के लिए दासियां नियुक्त की जाती थी।[6] पानी के प्रयोग को अमृत से भी उत्कृष्ट वताया गया है।[7]

आलोच्यकाल के कवियों ने ठंडे और सुवासित जल का वर्णन किया

---

1. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, (टिप्पणी 1) पृष्ठ 588 एवं 589
2. वही, पृष्ठ 588
3. शब्दावली, पूर्वोद्धृत, छन्द 409
4. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 609
5. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 1213
6. गंग कवि- गंग कवित्व, सम्पादक, बटेकृष्ण, पृष्ठ 83
7. पद्मावत, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 595

है। नणरीदास[1] तथा कृष्णदास[2] ने ठंडे, सुन्दर तथा सुगन्धित जल का उल्लेख किया है। रामचरण दास ने भी "लाल" की इच्छा के अनुसार सखियों के द्वारा निर्मल जल पिलाने की चर्चा की है।[3]

शर्वत :-

चीनी या गुड़ को पानी में घोलकर सादा या कुछ मिलाकर पीने की परम्परा वहुत पुरानी मानी गयी है। कही-कही शर्वत का प्रयोग शीत पेय के रूप में होता था। कहीं-कहीं पर यह जलपान के रूप में प्रयोग में लाये जाते थे। जायसी ने भोजन के वाद केसर और अरगजा मिला हुआ शर्वत (खंड़वानी) पीने का उल्लेख किया है।[4]

फलों के रस :-

फलों के रस का महत्व पीने के पदार्थों में सवसे अधिक माना जाता है। आलोच्ययुगीन कवियों में मीरा ने आम के रस अर्थात अमरस का भी वर्णन किया है।[5] यह पके हुए आम के रस में दूध और चीनी डालकर वनाया जाता था। अंगूर का रस मधु (शराब) के रूप में व्यापक रूप से व्यवहार में लाया जाता था। आलोच्यकालीन कवियों ने इसका उल्लेख कई प्रंसगों में किया है। पीने का सवसे महत्वपूर्ण अंग सुरा माना गया है।

कृष्णदास जी ने दाड़िम (अनार) और अस्पतरा (संतरा) के रस का उल्लेख किया है।[6] लालदास ने भी 'रस प्यावति हंसि वोलति पानी कोल्हू नाम कुंवा की पानी, की चर्चा की है।[7]

---

1. नागर समुच्चय- उत्सव माला, प्रकाशन, ज्ञान समुद्र प्रेस वम्बई, पृष्ठ 267
2. माधुर्य लहरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 45
3. अष्टयाम पूजाविधि, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 94
4. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 272 एवं 610
5. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 770
6. माधुर्य लहरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 154
7. वही, पृष्ठ 155

इस आधार पर ऐसा कहा जाता है कि उस समय कोल्हू द्वारा भी रस निकाला जाता था। यहाँ पर कवि का तात्पर्य गन्ने के रस से वताया गया है। उच्च वर्ग के दम्पत्ति संयोगावस्था में दाड़िग और ईख के रस का प्रयोग पेय के रूप में करते थे।[1]

पक्षियाउरि :-

चावल तथा आम का शर्वत या श्रीखंड या गोरस में गुड़ मिलाकर परोसने की प्रथा जेवनार के अन्त में वतायी गयी है। इसे पक्षियाउरि कहा जाता था।[2] वुन्देलखण्ड में पक्षियाउरि मीठे पेय के रूप में प्रचलित माना जाता था। कुछ विद्वानो के अनुसार जेवनार के अन्त में दी जाने वाली मीठी तश्तरी को अवधी की उपभाषा वैसवाड़ी में पक्षियाउरि कहा जाता था।[3] इसे सवसे अन्त में ग्रहण किया जाता था। इसी से इसका नाम पक्षियाउरि पड़ा होगा।

सुदामाचरित्र में भोजन के अन्त में कन्द की पक्षियाउरि को परोसने का वर्णन किया गया है।[4] स्पष्ट है कि दूध और पानी के साथ ही साथ कभी-कभी कंद भी पक्षियाउरि में डाली जाती रही होगी।

उच्चमध्यम वर्ग का भोजन :-

इस वर्ग के लोग[5] हमेशा गेहूँ के आंटे को उवाल करके तथा चावल और तरह-तरह की सब्जिया खाया करते थे। खास-खास मौके पर पूड़ी और लूची[6] भी खाया करते थे। हिन्दू लोग शाकाहारी होने की वजह सक दाल, दही, मक्खन, तेल दूध खीर[7] और खोवा[8] खाया करते थे। वे लोग घी और पनीर

---

1. पद्मावत, पूर्वोद्धृत (टिप्पणी 9) पृष्ठ 595
2. वही, पृष्ठ 272 एवं 593
3. अष्टयाम, पूजाविधि, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 76
4. नरोत्तम दास- सुदामा चरित, पृष्ठ 48, 40
5. जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री, अप्रैल 1960 पृष्ठ 106
6. पद्मावत (हिन्दी), पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 90 - 92
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 303, 310, 312
8. द वायेज एण्ड ट्रेवेलस आफ द अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 13

का प्रयोग करते थे।[1] दही को लोग दोपहर में खाया करते थे।[2]

मुसलमानों का सबसे प्रिय भोजन तरह-तरह का मांस हुआ करता था। ये लोग गाय का मांस, बकरे का मांस मछली, भेड़, जंगली जानवर और चिड़िया खाया करते थे। अकवर गोश्त खाता था किन्तु उसे गोश्त पसन्द नही था। अन्य मुगल सम्राट गोश्त पसन्द किया करते थे। जहाँगीर रविवार तथा वृहस्पतिवार को मांस नहीं खाते थे। उस दिन पशु हत्या की मनाही थी।[3] शाहजहाँ के काल में नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ प्रयोग में लाये जाते थे।[4] आइन-ए-अकवरी में तरह-तरह की सब्जी, गोश्त व भोजन की चर्चा की गयी है। धनी मुसलमान लोग कीमा पुलाव और चावल की पूड़िंग खाते थे जिसमें वादाम, किशमिश और मेवे डाले जाते थे। मीठी चीजों में हलुवा मिठाई और तरह-तरह के चीनी और फालदा से वनी हुई चीजों का प्रयोग करते थे। वे लोग अंगूर संतरा और तरह-तरह का फल खाया करते थे। उस समय लोग, तीतर, वत्तख और खरगोश भी पकाकर खाया करते थे।[5]

सर टामस रो[6] के दावत के अवसर पर मुसलमानों के नाना प्रकार के खाने के विधियों की चर्चा आसफ खां ने की है। इसी प्रकार जब मेन्डेलस्लो[7] को अहमदावाद के गर्वनर के यहाँ खाना खिलाया गया था। राजाओं और धनी लोगों के यहाँ खाना रसोई घर से सोने या चाँदी के वर्तनों में लाया जाता था।

---

1. ट्रेवेल्स आफ पित्राडेलावेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 435
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 354
3. मुगलशासन प्रणाली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 38
4. ओझा, पी0एन0, नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ डयूरिंग मुगल पीरिएड, ओरियन्टल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स दिल्ली 1975, पृष्ठ 4
5. पियरार्ड फ्रानकोज आफ लेवल- द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इडिंज द मालदीव्स, अंग्रेजी अनुवाद, एच0सी0पी0 वेल हाकल्पूट सोसायटी, लन्दन, भाग-1, पृष्ठ 328
6. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 251
7. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 69

स्त्रियां पति के साथ भोजन नहीं करती थी, वह अलग से भोजन करती थी।[1]

साधारण जनता का भोजन :-

साधारण हिन्दू और मुसलमान दोनो ही साधारण भोजन किया करते थे।[2] कुछ विदेशी यात्री इस वर्ग का भोजन खिचड़ी ही वताते थे।[3] पेलसार्ट लिखते है कि ये लोग हरी दाल, चावल, थोड़ा सा मक्खन और नमक खाया करते थे।[4] और खाने के वाद पान खाया करते थे। धनी वर्गों के लोग इसमें मसाला डालकर खाया करते थे।

उत्तरी भारत के लोग गेहूँ और जौ के आंटे की रोटी खाया करते थे। साधारण जनता वाजरे की रोटी, चीनी और पानी मिलाकर ही खाया करती थी।[5] डी लायट लिखते है कि लोग एक ही वार दिन में भोजन किया करते थे।[6] लेकिन यह वात गलत मानी गयी है। मध्यम वर्ग के लोग जिसमें दुकानदार, व्यापारी, सौदागर दलाल, वैंकर सभी सम्पन्न माने जाते थे। जो दिन में तीन वार भोजन किय करते थे। वे लोग सुवह आठ या नौ वजे, शाम को चार या पाँच वजे और रात में आठ या नौ बजे खाया करते थे।[7]

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 41-42
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 249
3. ट्रेवेल्स इन्डियन इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 263
4. हेमिल्टन एलेक्जेडर-ए-न्यू एकाउन्ट आफ द ईस्ट इंडिज भाग-2, लन्दन भाग-1, पृष्ठ 162
5. ट्रेवर्नियर,जीन वायतिस्ता-ट्रेवेल्स इन इण्डिया,सम्पादक वाल,लन्दन 1889, भाग-1, पृष्ठ 124
6. मोरलैण्ड;डव्लू0एच0-इण्डिया ऐट दि डेथ आफ अकवर;लन्दन1920 पृष्ठ171
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 313

हिन्दुओं का रसोई घर

भारतीय लोग लोहे के तवे पर चपाती सेकते थे या कड़ाही में[1] वनाते थे। जो एक चूल्हे पर रखा जाता था। जिसमें लकड़ी की जगह पर उपली इस्तेमाल की जाती थी। हिन्दुओं के रसोई घरों में प्लेट प्याला पानी की सुराही, मोमवत्ती इत्यादी जस्ते के वनायें हुए होते थे[2] क्योकि हर वार प्रयोग करने के वाद उसको साफ किया जाता था।

डी लॉयट लिखते है कि सत्रहवीं शताव्दी में मुसलमानों के घरों में मिट्टी के पात्र[3] या तावे के पात्र प्रयोग में लाये जाते थें। मुगल वादशाह सोने या चांदी के वर्तन या कीमती शीशे के वर्तन इस्तेमाल करते थे। हिन्दुओं के रसोई घरों में सफाई वहुत जरूरी मानी जाती थी।[4] वे घारों में वनायी गयी चीजों को इस्तेमाल करते थे और वाजार में वनी तेल की चीजों का प्रयोग नही करते थे।[5] एक विशेष स्थान जिसे चौका कहा जाता था, उसको गाय के गोवर से लीप कर खाना वनाया जाता था। वहाँ पर जूता पहन कर जाना मना था।[6] खाना या तो उच्च जाति के व्राह्मण वनाते थे या फिर अपने ही जाति के आदमी वनाते थे।[7] वे किसी दूसरी जाति[8] के व्यक्ति या किसी ऐसे आदमी का वना, जो हिन्दू न हो,

---

1. द वायेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 68
2. वही, पृष्ठ 85
3. लिन्सवोटेन, वान जांन ह्यूगन-द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडिज, अग्रेजी अनुवाद, भाग-1 कोक कर्नल, लन्दन भाग-2 पी0ए0टाइल लन्दन 1885 भाग-1 पृष्ठ 188
4. ए वायज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 312
5. द वायेजेज आफ,टू दि ईस्ट इंडीज,द मालदीव्स भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 377
6. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 87
7. द वायेजेज आफ,टू दि ईस्ट इंडीज,द मालदीव्स भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 377
8. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 312

खाना नही ग्रहण करते थे। ऐसा भोजन फेंक दिया जाता था। हिन्दू लोग दो वार भोजन करते थे।[1] खाने के पहले नहाना आवश्यक था।[2] यात्रियों ने इस वात को विशेष रूप से देखा है कि सवेरे, स्नान करने के वाद हिन्दू लोग चटाई या किसी साफ कपड़े पर जो स्थान गाय के गोवर से लीपा रहता था, उस पर रखकर पूजा करते थे और सबसे पहले थोड़ा सा भोजन भगवान को चढ़ाते थे।

साधारण लोगों के यहाँ लोग पत्तल पर भोजन करते थे।[3] पत्तल पर, उवाला गया चावल और सब्जी, दही और थोड़ा सा नमक और मक्खन के साथ भोजन करते थे।[4] भोजन समाप्त करने के वाद पत्तलों को हटा कर जमीन को लीप दिया जाता था।[5] पानी पीते समय प्यालें को होठ से नही छुवाते थे।[6] वल्कि उपर से गले में पानी डाल लेते थे। पानी रखने वाला वर्तन सोने, चाँदी और तावे[7] का होता था। भोजन कर लेने के वाद वे अपना हाथ, पैर, मुँह साफ करते थे।[8]

मुसलमानों के खाने की विधि

मुसलमानों के रसोई घर में छुआछूत न होने के कारण उतनी सफाई नहीं रहती थी। इनके खाने में मांस, मसाले तथा गरिष्ठ भोजन का अधिक प्रयोग किया जाता था। इस्लाम धर्म के अनुयायी छुआछूत न होने के कारण जमीन पर दस्तरखान विछाकर तश्तरियों को सजा दिया जाता था। पूरे परिवार के लोग एक

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 325
2. द वायेज आफ टू दि ईस्ट इंडिज,द मालदीव्स, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 377
3. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 324, 325
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 42
5. द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इडिज,द मालदीव्स,भाग-1,पूर्वोद्धृत पृष्ठ 391
6. द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इडिज,भाग-1,पूर्वोद्धृत पृष्ठ 261-62
7. द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इडिज,द मालदीव्स,भाग-1,पूर्वोद्धृत पृष्ठ 378
8. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 43

साथ मिलकर खाना खाते थे। जिसका उल्लेख शाहजहाँ कालीन यात्रियों ने किया है।[1] मक्खन और खाने की चीजें हर मेहमान के सामने परोसी जाती थी।[2] और इसको अंजीर और पत्तियों से ढंक दिया जाता था। सम्पन्न लोग फूल से कढ़ा हुआ सिल्क का दस्तर खान सोने और चांदी के फूल लगे हुए प्रयोग करते थे। कभी-कभी चम्मच का भी प्रयोग किया जाता था।[3] यद्यपि यह वहुत ज्यादा प्रचलित नहीं था।[4]

मादक द्रव्य सेवन एवं सुरापान :-

आलोच्य युग के सन्त लोगों ने मांस खाने के साथ ही सुरापान[5] को भी अत्यन्त निम्न[6] माना है। तुलसी ने साधुओं को अमृत के समान श्रेष्ठ कहा है और असाधु को सुरा[7] के समान ही निकृष्ट और त्यागने योग्य माना है। उन्होने गंगा जल से वनायी गयी वारूषी को भी हमेशा से त्याज्य[8] कहा है। ऊची जाति वाले व्राह्मण और साधु लोग यदि धोखें से मद्यपान कर लेते थे तो उनकी अवस्था शोचनीय हो जाती थी।[9] इसके अतिरिक्त सुरा को राक्षसों के पीने की चीज वताकर अत्यन्त निम्न माना है। कुछ कवियों ने अंगूर की शराव[10] और कुछ ने भट्टी पर चुवाई जाने वाली मदिरा[11] का वर्णन किया है।

---

1. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 28
2. डी लायंट-दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू अग्रेजी जे0 ए0 गोलेन एण्ड एनोटेड, द्वारा एस0एन0वनर्जी वम्बई 1928, पृष्ठ 91-92
3. द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इंडीज भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ207
4. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 91-92
5. कवीर ग्रन्थावली, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 189
6. श्री दादू दयाल की वाणी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 252
7. रामचरित मानस, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 36
8. वही, पृष्ठ 95
9. वही, पृष्ठ 449

10 पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 318

11. जमाल के दोहे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 3

इसका प्रयोग स्त्री पुरूषों में समान रूप से प्रचलित था। तानसेन ने खुमारी वढ़ाने के लिए मदिरा के सेवन का उल्लेख किया है।[1] रसखान ने वारूणी पीकर झूमने का उल्लेख किया है।[2] केशव ने भी बलराम को वारूणी पीकर झूमने[3] का उल्लेख किया है। परमानन्द दास ने होली के अवसर पर वलराम को मदिरा पीकर अस्त व्यस्त अवस्था में मतवाला हो जाने का उल्लेख किया है।[4] इसीलिए सूरदास ने इसे निशाचरों का पान[5] वताया है और उसे कलियुग का वास स्थान माना है।[6]

नन्ददास ने ऐसा कहा है कि व्राह्मण लोग मदिरा पीकर चेतना भ्रष्ट हो जाते थे और पश्चाताप करते थे गंग ने हाला पीने का वर्णन किया है[7] तुलसी ने तो उसे सेवरा (अधर्मी) का पेय कहा है[8] वेलिकार पृथ्वीराज ने मंद्यपो के उन्मत्त हो जाने पर वमन करने का भी वर्णन किया है।

केशवदास[9], कृपाराम[10] आदि कवियो ने विलास क्रीड़ां में प्रिया प्रियतम का एक दूसरे को आसव पिलाने की परंपरा का वर्णन किया है। राजाओं के तथा सामन्तों के अन्तःपुर में एवं वेश्याओं के यहाँ इसका वहुत अधिक प्रचार था। रीतिकाल में यह अत्यधिक वढ़ गया था। वलभद्र ने मद्यपान के प्रभाव के कारण अट्पटी वातों के निकल जाने का उलेख किया है। मदिरा

---

1. तानसेन- संगीतसार, पृष्ठ 91
2. सुजान रसखान, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 18
3. केशवदास- रसिक प्रिया पृष्ठ 41, 80, 98
4. परमानन्द- परमानन्द सागर पृष्ठ 101
5. सूरसागर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 9-75
6. वही, पृष्ठ 1-290
7. गंग कवित्त, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 52
8. तुलसीदास-दोहावली गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 112
9. रसिक प्रिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 98
10. कृपाराम-हिततरंगिणी, पृष्ठ 20, 52

वनाने वाले और वेचने वाले को कलाल या कलाली कहा जाता था।[1] इसका उल्लेख कवीर[2] तानसेन आदि ने किया है। प्रत्येक युग में आदर्श सामाजिक जीवन के प्रतिष्ठित लोग मादक द्रव्य के वहिष्कार की कड़ी व्यवस्था करते रहे है। इतना होते हुए भी सन्त एवं मनीषी लोग इसे निम्न श्रेणी में रखते चले आये है।[3] आलोच्यकाल के सन्त, कवियों ने मद्य को धन, धर्म, वुद्धि और शरीर का घोर शत्रु वताया है।[4]

पद्माकर ने राजन्य वर्ग के लिए शिशिर ऋतु के सवसे अधिक आवश्यक उपकरणों में सुराही, सुरा और प्याला का भी नाम लिया है।[5] युद्ध-यात्रा के अवसर पर राजा लोग प्रिया के हाथ से सुरा का मादक प्याला पान करके ही जाते थे।[6] पद्माकर ने आसव मद और मेरेय इन तीनों प्रकार की मदिरा का नाम वताया है।[7] आसव बढ़िया शराब को कहा जाता है, मेरेय सुगन्धित और मसालेदार शराव[8] को कहते है।

सम्भवतया श्रावण मास में "आसव" मौसमी पेय माना जाता था।[9] शराव के अतिरिक्त भांग, तम्वाकू, जरदा, अफीम, गुड़सू, गांजा आदि मादक

---

1. जमाल के दोहे, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 3
2. कवीर ग्रन्थावली, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 120
3. लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दि पिपुल आफ हिन्दुस्तान, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 316
4. रामचरण (राम सनेही) अमृत उपदेश, नवम् प्रकाशन, छन्द-7
5. पद्माकर- जगद्विनोद, छन्द 391
6. सुजान चरित्र, पंचम जंग, चतुर्थ अंक, पूर्वोद्धृत दन्द 43
7. पद्माकर- राम रसायन, वालकाण्ड, पृष्ठ 94
8. रामायण कालीन संस्कृति, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 89
9. वांकी दास ग्रन्थावली- कृपण पच्चीसी, सम्पादक पुरोहित हरी नारायण शर्मा, छन्द 5

द्रव्यों का भी सेवन किया जाता था।[1] भारत में तम्वाकू का भी प्रचलन सोलहवी और सत्रहवी सदी में हुआ था।[2]

टेरी का ये विचार है कि ''हिन्दू और मुसलमान दोनो ही कोई ऐसी चीजों को नही खाते पीते थें जो कानून से निषेध माना गया था।''[3] शराव को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता था। मुगल वादशाह इसका निषेध किये थे, लेकिन जनता के लिए इस प्रकार का कोई नियम नही वनाया गया था। अधिक पीने पर या गलत व्यवहार करने पर लोगो के लिए दण्ड निर्धारित किया गया था।[4]

जहाँगीर शराव के वहुत अधिक आदि थे। औरंगजेव ने कई तरह से शरावों का निषेध कर दिया था। मुगलों के इतने कड़े आदेश होने पर भी अमीर लोग शराव पीते थे। वादशाहों की दावत में भी शराव चलती थी। हर मुगल वादशाह केवल औरंगजेव को छोड़कर सभी लोग कई वार दिन में शराव पीते थे। शाहजहाँ वहुत शोभनीय ढंग से शराव पीते थें शाहजहाँ ने दक्षिण विजय के समय शराव पीना छोड़ दिया था। शराव का पूरा स्टाक चम्बल में फेंक दिया गया था कीमती सोने और चांदी के प्याले तोड़ दिये गये और गरीब लोग तथा चाहने वालों को वांट दिया गया।[5]

सामान्यतः सवसे सस्ता पीने का चीज ताड़ी और नारियल का जूस था। इसका प्रयोग पूरे हिन्दुस्तान में होता था। नीरा एक तरह का शराव था,

---

1. राम चरण (राम सनेही)- उणमो विलास, पंचदश प्रकर्ण, छन्द 13,
   राम चरण (राम सनेही)- लक्ष अलक्ष जोग, छन्द 17-18
2. शुक्ल, सोमनाथ - हिन्दी साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति, पृष्ठ 236
3. वायेज टू ईस्ट इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 317
4. मुन्तखब-उत तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 311
5. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 27

जिसे लोग पेड़ से निकालकर पीते थे।[1] महुआ से भी शराव तैयार की जाती थी।[2] शराव को चीनी से तैयार करते थे।[3] काली चीनी से भी शराब वनायी जाती थी। ताड़ी और चावल से लोग शराब तैयार करते थे।[4] पुर्तगाल और पर्शिया से भी शराब मँगाया जाता था।

हिन्दुस्तान में फारस की अंगूरी शराब मंगायी जाती थी। अफीम[5] का प्रयोग मुसलमान[6] और राजपूत दोनो ही अधिक संख्या में करते थे। खबर पहुँचाने वाले हरकारे लोग भी इसे पीते थे, क्योकि उन्हे कठिन सफर तय करना पड़ता था।[7] राजपूत लोग शराब के वहुत ज्यादा अभ्यस्त थे। लड़ाई के पहले वे अपनी खुराक का दुगुना पीते थे।[8] वर्नियर लिखते हैं कि राजपूत लोग इस पीने के वाद वहादुरी तथा तेजी से लड़ाई लड़ते थे।[9] बूढ़े और बच्चे भी अफीम का इस्तेमाल करते थे।

भांग, अफीम आदि :-

शराब के अलावा कुछ अन्य चीजे उस समय प्रचलित थी जो नशा करती थी। इन्हें अमल कहा जाता था।[10] इनके सेवन करने से वुद्धि भ्रष्ट हो

---

1. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 239
2. जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी आफ वंगाल, भाग-4 1938 पृष्ठ 541
3. ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 253
4. ए वायेज टू सुरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 238
5. इण्डियन ऐट दि डेथ आफ अकबर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 158
6. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इडींज, द मालदीव्स, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 200
7. द वायजेज एण्ड ट्रेवल्स आफ दि अम्वेसर्डस, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 67
8. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 40
9. वही, पृष्ठ 40
10. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 273

जाती थी।[1] आलोच्च युगीन काव्य में, इस प्रकार के मादक पदार्थो में, भांग[2] और अफीम दोनो का उल्लेख किया गया है।

भांग का प्रचार वहुत अधिक था। इसकी लोकप्रियता का कारण सहज रूप से सुलभता मानी गयी थी। आलोच्ययुगीन कवियों में भंग को सेवन करने का उल्लेख दादू[3], मीरा आदि ने किया है। किन्तु इसकी विधि पूर्वक पीस कर वनाने का वर्णन मीरा ने किया है। इसे चंदन के सोटे से रत्नजटित कुंडी पर खूब अच्छी तरह से घोंट कर महीन वस्त्रो से छाना जाता था। उसके वाद उसमें सुगन्धित द्रव्य डालकर सभी लोग साथ वैठकर पीते थे।[4] स्त्रियां भांग पीती थी। परमानन्द दास ने ग्वालिन के विजया पीकर बौरी होने का उल्लेख किया है।[5] उस समय विजया का वहुत अधिक प्रचार था। इसका आभास गंग के कवित्त से मिलता है।[6] गरीव लोग भांग पीते थे।[7] इसमें वे वादाम पीसकर मिलाते थे।[8] इसमें धनी लोग अनेको तरह के मसाले और अफीम मिलाते थे।[9] इसे भूख वढ़ाने के लिए प्रयोग में लाया जाता था। इससे नशे में आदमी अत्यधिक परिश्रम कर सकता था। इसका अधिक सेवन करना स्वास्थ के लिए हानिकारक था।[10]

---

1. रसिक-प्रिया, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 73
2. श्री दादू दयाल की वाणी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 299
3. वही, पृष्ठ 299
4. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ659, 591
5. परमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 403
6. गंग कवित्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 133
7. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, भाग-2 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 115-16
8. वही, पृष्ठ 115-16
9. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 120
10. पीटर मुण्डी- ट्रेवेल्स ऑफ इन यूरोप एण्ड एशिया, अनुदित आर0सी0 टेम्पल खण्ड-2,ट्रेवेल्स इन इण्डिया,ह्कलूएट सोसायटी 1914,भाग-2,पृष्ठ 247

तम्वाकू :-

साधारण लोग तम्बाकू[1] पीते थे। अकवर भी कभी-कभी तम्बाकू का सेवन करते थे। थेवेनाट लिखते है कि अमीर लोग इसका सेवन करते थे।[2] छोटे वर्गो में यह वहुत अधिक प्रिय था। साधारण मुसलमान लोग तम्वाकू पीने के आदी थे। खाना खाने के वाद उनका ये मनोरंजन का साधन था।[3] इन चीजो का सेवन इतना अधिक वढ़ गया था कि मनुची लिखते है कि केवल दिल्ली में, तम्वाकू पर पचास हजार रूपया कर वसूल किया जाता था। इस नियम के उन्मूलन से गरीबों को वहुत वड़ी सहायता मिली।[4]

पान एवं सुगन्धित द्रव्य :-

भारत वर्ष में प्रत्येक वर्ग के लोग पान का प्रयोग करते थे।[5] पान में चूना, कत्था और सुपाड़ी[6] लगाया जाता था। धनी लोग इसमें कपूर और सुगन्धित चीजे डालकर प्रयोग करते थे और इसको रेशमी तागे से वधवाते थे। वे कई प्रकार के पान का प्रयोग करते थे। खाना खाने के वाद पान खाना आवश्यक था। लेकिन अधिकांश लोग इसको दिन भर प्रयोग करते थे।[7]

---

1. मोरलैण्ड के अनुसार- तम्वाकू का पेड़ सवसे पहले गुजरात प्रदेश में स्थापित किया गया था जिसकी पत्तिया 1613 में पायी गयी।(चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 51
2. थेवेनाट मोनसियर डी- ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, तीन भाग अंग्रेजी अनुवाद 1686, अध्याय 4, पृष्ठ 103
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 280, स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 63
4. वही, पृष्ठ 175, भाग-2
5. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स ऑफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 33
6. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इडींज, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 64
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 63

पूजा, श्रृंगार, शिष्टाचार और स्वागत सत्कार में पान का प्रयोग वहुत पहले से होता आया है। पान का उपयोग पूजन सामग्री के रूप में किया जाता है।[1] देवताओं को प्रसाद के रूप में पान अर्पित किया जाता था।[2] पान का सम्बन्ध अनेक प्रकार के शिष्टाचार से जोड़ दिया गया था। किसी को कोई कार्य सौंपते हुए उसे पान दिया जाता था।[3] जव किसी को मित्र वनाना होता था तो राजा उसे पान का वीड़ा देता था। यदि किसी व्यक्ति को देश निकाला होता था तो उसे तीन पान दिया जाता था।[4] आलोच्ययुगीन काव्यों में पान खाने का उल्लेख अनेक स्थानों में मिलता है राजाओं के महलो में पान धारिणी दासियां होती थी। जो हमेशा पान लेकर खड़ी रहती थी।[5]

मुगल सम्राट पान के शौकीन थे। गुलवदन वेगम ने हुमायूँ के काल में पानदान का उल्लेख किया है। अवुल फजल छः तरह के पत्तों का उल्लेख करते है। जिसमें विलहरी, कपूरकांत, तथा वंगला भी थे।[6] सत्रहवी शताव्दी में अमीरों तथा राजपूतों को पानदान उपहार के रूप में दिया जाता था।[7]

1. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 966 एवं अनेक प्रसंग
2. परमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 390
3. पद्मावत, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 664, सूरसागर, पूर्वोद्धृत 9-74 एवं 424
4. आलम माधवानल कामकंदला, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 189
5. गंग कवित्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 83
6. मुगल शासन प्रणाली, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 38
7. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 364

तृतीय अध्याय

वेशभूषा
सौन्दर्य प्रसाधन
एवं
आभूषण

तृतीय अध्याय

वेशभूषा, सौन्दर्य प्रसाधन एवं आभूषण

भारत की वेशभूषा युग युगान्तर से वहाँ के भौगोलिक परिस्थितियों और जलवायु से बराबर प्रभावित थी। इसके साथ ही साथ सामाजिक धार्मिक आदतों और रीति रिवाजों से भी प्रभावित होती थी।[1] मनुष्य सौन्दर्य के वशीभूत होकर अपनी वेशभूषा का नित्य नया नया आविष्कार करने लगा। उसकी अलंकरण की प्रवृति से उसे विशेष वल प्राप्त हुए। उसने व्यक्तित्व को सुन्दर वनाने के लिए विभिन्न युग में अनेक वस्त्र, आभूषण तथा सौन्दर्य की अन्य चीजों का निर्माण किया। उस समय जो वेशभूषा था उसमें और आधुनिक युग में केवल वनावट में अन्तर था।[2] विभिन्न सामाजिक और धार्मिक वर्गों में जो कपड़ा पहनने का ढंग था उसमें भी भिन्नता थी। किसान और गरीव जनता वहुत कम वस्त्र धारण करते थे।[3]

मध्यकालीन वेशभूषा ने विदेशियों को, विशेष रूप से यूरोपिय यात्रियों को वहुत अधिक प्रभावित किया जो वंगाल, पंजाव[4] और अन्य स्थानों[5] की

---

1. नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ ड्यूंरिग मुगल पीरियड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 19
2. वही, पृष्ठ 19,
3. वही, पृष्ठ 19
4. द वायेजेज आफ, टू द ईस्ट इंडीज, द मालदीव्स, भाग-2 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 137
5. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 23

वेशभूषा वनाने के तरीके की वड़ी प्रशंसा किये। वस्त्र, आभूषण, श्रृगांर प्रसाधन अलंकरण या सादगी चाहे उसकी कोई भी विशेषता रही हो तत्काल हमारा ध्यान अपनी ओर खीचती है। यह शत-प्रतिशत नहीं तो वहुत कुछ उसकी अभिरूचियों और सांस्कृतिक उपलब्धियों एवं स्तर का ज्ञान कराती है। वस्त्रों के पहनावें के आधार पर मानव की जातिगत, देशगत और वर्गगत, विशेषता स्पष्ट हो जाती है।

सन्तों की वेशभूषा की सादगी उनके जीवन के लौकिक पक्ष के प्रति उनकी उदासी और विरक्ति को सूचित करती है। सामन्तों के जीवन में अंलकरण की प्रवृति योग पक्ष के प्रति उनकी आसक्ति का आभास दिलाता है। एक साधारण सा कपड़ा हिन्दू योगी के शरीर को ढकने के लिए काफी माना जाता था।[1]

वर्नियर ने शाहजहाँ के काल के हिन्दू विद्वान कविन्द्रचार्य के वस्त्रो के वारे में चर्चा की है। जिससे वह वनारस में मिल चुका था। बर्नियर लिखता है कि कविन्द्रचार्य सिल्क का सफेद स्कार्फ कमर में वाँधे हुए थे। जिसका आधा भाग पैर से होता हुआ जमीन के तरफ होता था। एक प्रकार का दूसरा लम्वा लाल रंग का स्कार्फ था जिसे वह अपने कन्धो पर रखकर वाँध लिया करते थे।[2] इसी तरह का वस्त्र वनारस के विद्वान पहना करते थे।

डेलावेले ने भारतीय वस्त्रों की चर्चा की है वे लिखते है कि "मैं भारतीय वस्त्रो की सफाई और सुगमता से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि मैने भी अपने लिए एक बस्त्र वनवाया जिसे हम इटली ले जाकर अपने आदमियों को दिखलाये।"[3]

मध्यकालीन हिन्दी काव्य की सभी प्रमुख धाराओं के कवियों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित अनेक प्रकार के वस्त्र, आभूषण तथा श्रृगांर

---

1. दि सिख रिलिजन भोग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 162
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 341
3. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेलावेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 23

प्रसाधनों का उल्लेख किया है जिससे उस समय के लोगो के जीवन दर्शन को समझने में पर्याप्त रूप से सहायता मिलती है।

शासको के वस्त्र :-

मुगलकाल के शासको के वस्त्रो का प्रारूप अकबर के काल में निर्धारित हुआ था और थोड़े परिवर्तन के साथ यह अन्य मुगल सम्राटों के काल में भी प्रचलित रहा। मुगल काल के शासक लोग नयें प्रकार के वेशभूषा के बारे में रूचि रखते थे।[1] मोन्सरेट ने अकबर के वस्त्रों के वारे में चर्चा की है कि ''वादशाह सिल्क के कपड़े पहना करते थे जिस पर सुनहला काम किया होता था और नीचे पैर तक कपड़ों से ढका हुआ रहता था। उसके नीचे जूता पहना जाता था। मोती और सोने के जेवरात पहने जाते थे।[2]

फादर रूडोल्फ ने अकबर को ये देखा कि अकबर वहुत ही अच्छे किस्म का सिल्क का कपड़ा पहनता था। वह हिन्दुओं के समान ही धोती को पैर से छूता हुआ पहनता था और मोतियों की चूड़ियां पहना करता था।[3]

आइन-ए-अकबरी में ग्यारह प्रकार के कोटों की चर्चा की गयी है। तकउवीया, पेशवाज, शाहअजिदा, गदार, फर्गी, चकमन और फरमुल वरसाती कोट हुआ करते थे। पहला चौड़े कपड़े का वनाया जाता था जो ऊनी कपड़े का भी वनता था या मोटे कपड़े का भी होता था।[4]

जहाँगीर खास तरह का वस्त्र पहनते थे जिसमें नादिरी[5], तुसशाल,

---

1. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 3
2. दि कमेंटेरीज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 198

   ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 456-57
3. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 4
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 88-90
5. एक लम्बा कोट विना आस्तीन का जो काबा के ऊपर पहना जाता था (चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 4

वातू गीरीवान[1], गुजराती साटन का काबा, चेरा और कमर पर वाँधने के लिए सिल्क का वेल्ट होता था जो सुनहले और सिल्क के तागें का वना हुआ होता था। जहाँगीर फैशन के वस्त्रों को पहनने को वहुत उत्सुक रहता था। फैशन के वस्त्र कीमती मोतियों और हीरों से जड़ित रहते थे और उसकी पगड़ी पर विशेष रूप की सजावट रहती थी अपने हर ऊगली में अगूंठी पहनते थे।[2]

शाहजहाँ जो वहुत ही शानदार शासक था। वह जहाँगीर से भी ज्यादा चमकीले और सजावट किये हुए वस्त्र पहनता था। शाहजहाँ का वस्त्र ठीक उसी प्रकार का होता था जिस प्रकार का उनके पिता पहनते थे। यद्यपि मूल वस्त्रों में जहाँगीर और शाहजहाँ में कोई अन्तर नही था।[3]

उच्च वर्गो के वस्त्र :-

मुगल उमरा का वस्त्र मुगल सम्राटों के अनुरूप था। धनी वर्गो के लोग वस्त्रों पर काफी पैसा खर्च करते थे। वे प्रतिदिन अपने वस्त्र को वदलते थे कभी-कभी वे दिन में भी वस्त्र वदल दिया करते थे।[4] धनी मुसलमान शलवार[5], चुस्त पायजामें[6] और चुस्त पतलून पहनते थे। शलवार तीन प्रकार से वनायी जाती थी। चुस्त पायजामें भी लोग कई प्रकार से बनाया करते थे। घरों में लोग कई प्रकार की लुंगियों का इस्तेमाल करते थे।[7] उच्च और मध्यम वार्गो के लोग कमीज पहनते थे। पूरब के रीति रिवाजों के अनुसार पायजामें

---

1. कोट घुमावदार रंग का होता था जिसके आस्तीन पर कढ़ा होता था (चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 4
2. ट्रेवल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 198
   नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ ड्यूरिंग मुगल पीरियड पूर्वोद्धृत पृष्ठ 21
3. शाहजहाँ का चित्र, प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, वम्वई पेन्टिंग नं. 620 आफ 1650
4. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, द मालदीव्स, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 376
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 88-90
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 64
7. वादशाहनामा, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 273

के उपर कमीज लटकती रहती थी। वह आगे खुली हुई होती थी। वंगालियों की कमीज वहुत लम्वी रहती थी।[1]

पियरार्ड ने इसे लिखने में अतिश्योक्ति की है यह पैर तक लटकता हुआ होता था।[2] जाड़े के मौसम में सर्दी से वचने के लिए कमीज के उपर भी एक वंडी पहनी जाती थी। उस वन्डी का बाहरी कपड़ा चेकनुमा या फूलदार सिल्क या सूती हुआ करता था।[3] उसके उपर भी एक कपड़ा पहना जाता था, जिसे कावा कहा जाता था। कावा अक्सर घुटने तक ही वनाया जाता था।[4] और इसमें बाँधने के लिए डोरी लगी हुई होती थी, हिन्दू लोग वायी तरफ वाँधा करते थे और मुसलमान लोग दायी तरफ वाँधा करते थे।[5]

धनी वर्गों के लोग अपने कंधो पर वहुत ही अच्छे किस्म के और रंग विरंगे ऊनी शाल ओढ़ते थे और कुछ लोग अपनी गर्दन में स्कार्फ की तरह ही वाँध लिया करते थे। पुरूष लोग हथियार या कटारी हाथ में लिया करते थे जिसमें सुनहली मुठिया वनी होती थी।[6] धनी वर्गों के लोग सोने के व्रेसलेट हाथों में पहनते थे। चार पाँच साल तक के वच्चे नंगे घूमा करते थे।[7] अपनी कमर में वे चाँदी या सोने की चेन लगाये रहते थे और पैरों में घंटियां लगी हुयी होती थी। कीमती धातुओं की चीज ही लोग पहना करते थे।[8]

---

1. सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 5
2. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, द मालदीव्स, भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 332
3. जरनल ऑफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल, कलकत्ता 1935, भाग-1 पृष्ठ 275
4. ट्रेवल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 410
5. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 122
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 63
7. वही, पृष्ठ 51
8. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 39

साधारण जनता के वस्त्र :-

काम करने वाले मजदूर कारीगर और खेतों में काम करने वाले मजदूर कमर में सूती लगोटा वाँधते थे।[1] विभिन्न सम्प्रदायों के गरीब लोग एक ही तरह का कपड़ा पहनते थे। गरीब लोग कमर में धोती पहनते थे जो पाँच गज लम्बी होती थी।

अवुल फजल ने लिखा है कि बंगाल के पुरूष और स्त्रियां प्रायः नंगे ही रहा करते थे और केवल कमर के नीचे कपड़ा पहना करते थे।[2] निजामुद्दीन अहमद ने दक्षिण और गोलकुण्डा के पुरूष और स्त्रियां दोनो को केवल कमर में कपड़ा बाँधते हुए देखा था। यूरोप के अधिकांश यात्रियों ने भी इस विचार की पुष्टि की है। यात्री लोग इस वात की चर्चा नहीं करते है कि जाड़े के मौसम में साधारण लोग रूई से भरा हुआ कोट पहना करते थे जो वर्षो तक चलता था।[3] इकवाल नामा जहाँगीर में इस वात की चर्चा मिलती है कि कोट कभी धोये ही नही जाते थे और वह यूंही फट जाते थे।[4]

सिर का पहनावा :-

मध्यकालीन युग में नंगे सिर रहना अपमान का विषय माना जाता था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस नियम का पालन करते थे, विशेष रूप से अपने वड़ो को सम्मान देने के लिए यह आवश्यक माना जाता था। मुसलमान लोग प्रायः सफेद और गोल पगड़ी वाँधा करते थे। हिन्दू लोग रंगीन सीधा और ऊँचा उठा हुआ ही वाँधा करते थे।[5] विभिन्न जातियों तथा विभिन्न प्रान्तों के लोग इसको अलग-अलग ढंग से ही बाँधते थे।[6] धनी लोग पचीस से

---

1. दि सिख रिलिजन, भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 162
2. वादशाहनामा भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 273
3. जरनल आफ यूनाइटेड प्राविन्स हिस्टोरिकल सोसायटी जुलाई 1942, पृष्ठ 68-69
4. सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 8
5. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, दमालदीव्स भाग-2 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 137
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 53
   ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 317

तीस गज लम्बा बढ़िया लिनेन की पगड़ी वाँधा करते थे और कुछ लोग एक किनारे पर थोड़ा सा काम करा दिया करते थे।[1] उत्तरी भारत के कुछ भागों में जाड़े के दिनो में रूई भरी टोपी भी पहनी जाती थी। खास तौर से कश्मीर, पंजाव और आधुनिक उत्तर प्रदेश में इस तरह की टोपी पहनी जाती थी।[2] कुलही वच्चों के सिर पर पहनायी जाती थी किन्तु कृष्ण भक्त कवियों ने वालक कृष्ण के साथ ही साथ युवा कृष्ण के सिर पर भी कुलही या कुलह,[3] का उल्लेख किया है। सेहरा विवाह के समय या राजाओं के मुकुट के साथ ही वांधा जाता था। गजमोतियों के हार युक्त सेहरे का वर्णन अनेक कवियों ने किया है।[4] सिर पर भी फेंटा वाँधने का उल्लेख कई कवियों ने किया है। कृष्णदास ने नव रंग का फेटा वाँधे हुए कृष्ण का वर्णन किया है।[5]

मुगल सम्राटों और उच्च्य वर्ग के लोगों में सुन्दर वहुमूल्य और अनेक प्रकार की पांगों को वांधने के लिए ऐतिहासिक उल्लेख भी मिलते है।[6]

पैरों का पहनावा :-

आलोच्ययुग में खड़ाऊ के प्रचलन का वर्णन जायसी नाभादास, कवीरदास,[7] आदि ने किया है। व्राह्मणों और साधुओं में इसका वहुत अधिक

---

1. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 53
   ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 450
2. ज0 यू0 प्रा0 हि0 सो0, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 68-69
3. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 8
4. वही, पृष्ठ 35
5. वही, पृष्ठ 12
6. श्रीवास्तव, आर्शीवादी, लाल- मुगल कालीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, संशोधित संस्करण 1065, पृष्ठ 565
7. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 262, अष्टयाम पूजाविधि, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 65, कवीर ग्रन्थावली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 269

प्रचलन था। बड़े लोग भोजन के पहले तथा भोजन के वाद खड़ाऊ पहन कर पैर धोया करते थे।

वर्नियर लिखते है कि इतनी गर्मी पड़ती थी कि अधिकांश लोग पैरो में कुछ नहीं पहनते थे।[1] मोजा पहनने की चर्चा की जाती है।[2] इस्टेवोरिनस लिखते है कि उस समय तुर्की ढंग के जूते पहने जाते थे जो इस गरम देश के लिए वहुत ही आराम देह माने जाते थे। मध्यकालीन युग में अपने कमरे की फर्श पर कारपेट का प्रयोग किया जाता था।[3] और उस पर लोग जूता उतार कर चलते थे। थेवेनाट[4] और मेन्डलस्लो[5] लिखते है कि मुसलमान लोग नीचे झुका हुआ हिल का जूता पहनते थे लेकिन व्यापारी लोग उठा हुआ हिल का जूता पहनते थे।

मेन्डलस्लों लिखते हैं कि लकड़ी के जूते लोग पहनते थे।[6] मध्यम वर्गों के लोग लाल चमड़े के जूते पहनते थे।[7] और धनी लोग जूतों पर सुनहला और रूपहला काम भी कराते थे।[8] कुछ लोग स्पेनी चमड़े के जूते पहनते थे। शौकीन लोग कई रंग के वेलवेट के जूते पहनते थे।[9] इस तरह के जूते धनी वर्गो के लोग ही पहनते थे। शादी के मौके पर तरह-तरह से सजायें गये जूते पहने जाने का उल्लेख है।

---

1. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 240
2. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 315
3. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेलावेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 80-81
4. ट्रेवेल्स आफ इन टू दि लेवेन्ट, अध्याय 20, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 37
5. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51
6. वही, पृष्ठ 74
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 314-15
8. वही, पृष्ठ 38
9. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 39

स्त्रियों का पहनावा :-

स्त्रियां वहुत तरह के कपड़े नही पहनती थी। गरीब स्त्रियां साड़ी और अंगिया पहनती थी। कभी-कभी साड़ियां दो या अधिक रंगो की होती थी। हिन्दू स्त्रियां लाल रंग अधिक पसन्द करती थी।[1] उत्तरी भारत में कसूमल साड़ी का विशेष रूप से प्रचलन था जिसे कंसूभी या कुसुंभी भी कहा जाता था। कुसुम्भी सारी[2] का वर्णन आलम आदि ने कई स्थानों पर किया है। जरी के काम की साड़ियों का प्रचलन विशेष रूप से उच्चवर्गीय महिलाओं में पाया जाता था। इस प्रकार की साड़ियों के लिए जरतारी सारी का उल्लेख रहीम,[3] नरोत्तमदास,[4] कृपाराम,[5] कृष्णदास[6] आदि ने किया था।

मुसलमान स्त्रियां घाघरा पहनती थी किन्तु लंहगा विशेष रूप से प्रचलित था। लहंगा कमर से ऐड़ी तक और कभी-कभी जांघो और घुटनों के कुछ नीचे तक लटकता हुआ घेरदार होता था। जरी अर्थात सोने के तारों से बुने हुए लहंगो का प्रयोग राजघरानों में होता था।[7] रेशम का वना हुआ भारी लहंगा विवाह में वर पक्ष की ओर से कन्या के लिए आता था इसे लहरपटोर[8] कहा जाता था।

मुसलमान स्त्रियां पायजामा और कमीज भी पहनती थी। कभी-कभी शलवार और आधे वाँह की कमीज पहनती थी। धनी स्त्रियां कश्मीरी ऊन के

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 341
2. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 178, माधवानल कामकन्दला, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 189 और 191
3. रहीम रत्नावली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 49
4. सुदामाचरित्र, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 45
5. हिततरंगिणी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 54
6. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 366
7. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 630
8. पद्मावत, पूर्वोद्धृत (टिप्पणी) पृष्ठ 327

बने हुए काबा पहनती थी। कुछ स्त्रियां कश्मीरी शाल ओढ़ा करती थी।

हिन्दू और मुसलमान दोनो ही स्त्रियां सिरों को डूपट्टो से ढका करती थी। मुसलमान स्त्रियां वाहर जाते समय सफेद वुर्का पहनती थी।[1] हिन्दू स्त्रियां अपने वालों को फूल और जेवरों से सजाती थी। धनी वर्गो की स्त्रियां पायजामें के ऊपर जेवर पहनती थी।[2] गरीब स्त्रियां नंगे पैर चलती थीं। धनी स्त्रियां जूते पहनती थी, जो लाल रंग के होते थे।

राजघरानों की स्त्रियों की जूतियां विशेष रूप से कीमती होती थी। उनमें अनेको प्रकार के रत्न और मोती जड़कर एक विशेष प्रकार से अलंकरण किया जाता था।[3] शाही वेगमों में इस प्रकार की अलंकृत जूतियों का विशेष रूप से प्रचलन था।

साबुन लगाने एवं रंगने की प्रथा :-

गरीब लोग सावुन का इस्तेमाल नहीं करते थे। वे लोग आटा या हल्दी का चूर्ण, पीसा हुआ चावल, कुसुम फूल इत्यादि को इस्तेमाल करते थे। बालो का रंगना भी प्रचलित था। सावुन पाउडर और क्रीम के जगह गसूल[4], अपतना[5] और चंदन[6] की लकड़ी का प्रयोग करते थे। सावुन प्राचीन काल से

---

1. द वायेजेंज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 50
   ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 181
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 40
3. राठौर, पृथ्वीराज- वेलिकृशन रूक्मिणी री, सम्पादक डा. आनन्द प्रकाश दीक्षित, पृष्ठ 21
4. एक प्रकार का गीला सावुन (चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 15
5. इसे चेहरे पर और शरीर के अन्य अंगो पर रगड़ा जाता है जिससे शरीर साफ और चमकीला लगने लगेगा। खासकर इसमें सुगन्धित तेल मिला रहता था। (चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 15
6. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 75-76

ही भारत वर्ष में प्रयोग किया जाता था। वांट के अनुसार- सावुन वनाने की कला भारत वर्ष में वहुत प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। बाबर के समय में सावुन या सवनी शब्द का प्रयोंग मिलता है।

इत्र :-

आइन-ए-अकवरी में इस वात का उल्लेख मिलता है कि इत्र आधे रूपये तोला से लेकर के पचपन रूपया तोला तक मिलता था।[1] सुगन्धित वस्तुओं में अटक सेवती, अरक-ए-चमेली, मोसेरी और अम्वरे आशन भिन्न-भिन्न प्रकार की सुगन्धित वस्तुयें थी।[2] नूरजहाँ की माँ ने गुलाव से एक नये तरह का इतर वनाया था जिसको इतर-ए-जहाँगीरी[3] कहा जाता था वनारस[4] इस सुगन्धित चीजे तैयार करने के लिए प्रसिद्ध माना जाता था।

पुरूषों के श्रृंगार :-

अत्यधिक सुगन्ध से युक्त तेल वंगाल से मगाकर बालो और वदन में लगाने की परम्परा थी।[5] पान पुरूष और स्त्री दोनो ही प्रयोग करते थे और अपने होठों को लाल चमकीला बना लिया करते थे।[6] इससे स्वच्छ सांस निकलती थी और जवड़े भी मजबूत हो जाते थे।[7] दांतो को साफ करने के लिए तरह-तरह के साधन प्रयोग में लाये जाते थे।[8] मेन्डलस्लो लिखेते है कि "सौ वर्ष के वूढ़ो तक के दाँत टूटे नहीं होते थे।"

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 75-77
2. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग द मुगल एज पूर्वोद्धृत पृष्ठ 16
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पृर्वोद्धृत, पृष्ठ 163-64
4. ट्रेवल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 12
5. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 243
6. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टींथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 180
7. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 72
8. मुन्तरवब-उत-तवारीख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 436

शीशे का प्रयोग किया जाता था। लकड़ी के कंघी का प्रयोग किया जाता था। जानवरों की सींग श्रृंगार करने के लिए प्रयोग में लायी जाती थी। बालों को एक कपड़े से सजाया जाता था जिसे हमाली कहा जाता है।[1] लोग नौजवान रहना और चमकीले तरह से रहना पसन्द करते थे।

समहीता और नीकाया में इस वात की भी चर्चा मिलती है कि लोग प्रातः काल विस्तर से उठने के वाद दाँत साफ कर आँख और मुँह साफ कर नहाते और वदन साफ करते थे। शरीर पर तरह तरह की मालिश कर सुगन्धित चीजे प्रयोग में लायी जाती थी।

अन्य चीजो में ब्रेसलेट का पहनना, टहलने के लिए छड़ी लेना, तलवार या वंदूक का प्रयोग करने की चर्चा मिलती हैं छाता, पगड़ी, पंखा, चौरी और कढ़ावदार सुसज्जित वस्त्र पहना जाता था।[2] दाढ़ियों को छाटने की भी प्रथा प्रचलित थी। स्त्री और पुरूषो के लिए दिनचर्या आरम्भ करने से पहले नहाना आवश्यक समझा जाता था। हिन्दुओं के यहाँ यह एक धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था। कि प्रातः काल एक नदी या तालाव में लोग नहायें।[3] नहाने के वाद शरीर और पैरों को मलने की परम्परा थी। पूरे शरीर का मालिश किया जाता था और नहाने के लिए संदल का तेल, सुगन्धित वस्तुये[4], व्यापारी लोग अपने ग्राहकों को दिया करते थे।[5] कंधे पर एक तौलिया लेकर, शीशा लेकर, नाई घूम-घम कर बाल काटते थे और इसके लिए एक या दो पैसा पाते थे।[6]

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 38
2. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 20
3. वही, पृष्ठ 20
4. गुप्ता, टी.सी. दास- वंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए.डी. कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रकाशन, कलकत्ता, 1914, पृष्ठ 158
5. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 450
6. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 321

हिन्दुओं और मुसलमानों के दाढ़ी बनाने में बड़ा अन्तर था। अधिकांश लोग दाढ़ी बनवाते थे।[1] और थोड़े से लोग हल्की सी दाढ़ी रखते थे। धार्मिक मुसलमान लोग लम्बी दाढ़ियां रखा करते थे और कभी-कभी सीने तक दाढ़िया वढ़ जाया करती थी।[2] हिन्दू और मुसलमान लोग मोछें भी रखते थे। हिन्दू लोग माथे पर तिलक लगातें थे।[3] और एक धागा या जनेऊ भी पहनते थे।

स्त्रियों का श्रृंगार :-

स्त्रियों के लिए श्रृंगार अत्यधिक आवश्यक माना जाता था। अवुल फजल ने आइन-ए-अकवरी में स्त्रियों के श्रृंगार में सोलह चीजों की चर्चा की हैं जिसमें नहाना शरीर में सुगन्धित चीजों का लगाना वालों, को रंगना और सजाना और तरह-तरह के मोती जवाहरात और सोने की चीजें पहनना सम्मिलित था।[4]

राजपरिवारों में नहलाने का काम परिचारिकायें करती थी। स्नान के पहले शरीर पर चन्दन केसर, कस्तूरी, कपूर आदि का लेपन किया जाता था।[5] केशो का कोमल कुटिल (घुघराला) अत्यधिक काला और लहरदार होना विशेष गुण माना जाता था।[6] इसी लिए उनको वहुत तरह से अंलकृत और सुवसित किया जाता था। स्नान करने के पश्चात स्त्रियां विशेष रूप से बालों को खोलकर सुखाती थी।[7] कोमल घुघराली लटों को तेल लगाकर कंघी से सवांरा

---

1. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवल्स इन टू, पूर्वोद्धृत पृष्ठ, 80
2. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अम्वेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 63
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 447
4. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 23
5. कृपा निवास, भावना पच्चीसी, छंद 52
6. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 96
7. वही, पृष्ठ 61-62

जाता था।[1] हिन्दू स्त्रियां अपने बालों का जूड़ा बनाती थी।[2] और उसमें सोने का क्लिप लगाती थी। नकली वालो का भी प्रयोग करना प्रचलित था। लम्वे बाल खूवसूरती के चिन्ह माने जाते थे।[3]

हिन्दू स्त्रियां सिन्दूर भी लगाया करती थी और वालों को भी सजाती थी।[4] बालों में जवाहारात की चीजे और फूल भी लगाये जाते थे। सिर के केश-राशि को सम्भाग में विभक्त कर उसके मध्य सिन्दूर की रेखा लगाई जाने की प्रथा थी।[5] मांग को सिन्दूर से सजाना[6] सौभाग्यवती वहुओ के लिए अनिवार्य माना जाता है। गोरी स्त्रियों के मुख पर स्वाभाविक रूप से स्थित काला तिल सौन्दर्य वर्धक माना जाता था। किन्तु यदि स्वाभाविक तिल न हो तो उस समय की स्त्रियां श्रृंगार करते समय स्वयं काला तिल वना लिया करती थी।[7] स्त्रियां काजल, अंजन और सुरमा भी लगाती थी।[8] दांत और आँख को मिस्सी से काला किया जाता था। मिस्सी लगाने के लिए पान की छोटी वीड़ी या पीटि का भी प्रयोग किया जाता था।[9]

17वी शताव्दी में स्त्रियों के पैरों में महावर रचाने का विशेष रूप से प्रचलन था। काव्य ग्रन्थों में महावर और जावक[10] लगाने के अनेक उल्लेख

---

1. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 262
2. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 182
3. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 50
4. अर्ली ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 22
5. ब्रजविलास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 348
6. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278, 487, मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 391
7. परमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 919, सूरसागर, पूर्वोद्धृत 2611
8. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 391 और 450
9. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278
10. जमाल के दोहे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 39

मिलते है। भारतीय स्त्रियां हाथों और पैरो को रंगने के लिए मेंहदी का प्रयोग करती थी।[1] नाखून पालिश के जगह पर मेंहदी लगाया जाता था। मध्यकालीन युग में प्रचलन के अनेक प्रमाण प्राप्त होते है। मेंहदी की पत्ती को पीसकर राधा के हाथ में सखियों द्वारा मेंहदी रचाये जाने का उल्लेख मीरा[2] ने किया है। स्त्रियां लिपिस्टिक[3] के जगह पर पानों से लाल करती थी।

आभूषण :-

शरीर लज्जा में वस्त्रों के साथ ही साथ आभूषणो को भी हमेशा से प्रधानता दी जाती थी। आभूषण प्रियता के कारण शरीर के विभिन्न अंगों में पहने जाने वाले अनेको आभूषणों के निर्माण वहुत प्राचीन काल से होने लगा था। जिस प्रवृति ने महलों में वहुमूल्य रत्न जड़े जाने तथा तख्तताउस ऐसे वहुमूल्य सिंहासन के निर्माण की प्रेरणा दी। वही पर सौन्दर्य वृद्धि के लिए मानव शरीर को वहुमूल्य आभूषणो से सजाने की एक अच्छी परम्परा स्थापित करने में सहायक मानी गयी है। इस काल में प्रयुक्त होने वाले आभूषणों को हम दो वर्गों में वाँट सकते है। पुरूषो के आभूषण, स्त्रियों के आभूषण।

पुरूषों के आभूषण :-

पुरूष लोग स्त्रियों की भाति आभूषण नहीं पहनते थे।[4] औरंगजेब को छोड़कर सभी मुगल वादशाह खास-खास मौके पर आभूषण पहनते थे। अवुल-फजल ने लिखा है कि विहार में रायगढ़ के नजदीक पत्थर मिलते थे। जिससे जेवर वनाये जाते थे।[5] हाथी दाँत के भी आभूषण वनाये जाते थे और

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 340
2. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 624
3. जरनल आफ वेन्कटेस्वर ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, तिरूपति, भाग-3, 1946, पृष्ठ 28-33
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 29
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 152

मोती के भी ब्रेसलेट वनाये जाते थे।[1] अवुल फजल लिखते है कि सोनारों को एक तोला पर चौसठ दाम मिलते थे।[2] गुजराती हिन्दू सोने और चाँदी के काम के लिए मशहूर माने जाते थे।

सर टामस रो लिखते है कि जहाँगीर अपने जन्म दिन के अवसर पर अपने पूरे वदन को आभूषणों से सजाते थे। आभूषण प्रायः सोने और चाँदी के वनते थे। सौमुअल परवाज ने ताँबा गिलास व अन्य चीजों के आभूषणों की चर्चा की है।[3]

राजा लोग रत्नों से जटित मुकुट[4] से अपना मस्तक अलंकृत करते थे। तुलसी ने पुरूष के कानों में स्वर्णकिली[5] और कर्णफूल[6] का वर्णन किया है। हिन्दू लोग कानों और अंगुलियों में रिगं पहनते थे।[7] राजपूत[8] लोग ब्रेसलेट और कानों में रिंग पहनना गौरव का विषय मानते थे।

पुरूष लोग गले में मणिमाल, मुक्ताहार,[9] टोडर नामक हार,[10] दुलरी

---

1. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 136
2. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 314
3. सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 30
4. सुदामा चरित, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 28
5. गीतावली (बालकांड) पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 62
6. रामचरित मानस, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 215
7. द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज, द मालदीव्स, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 372, एन्यू एकाउन्ट आफ दि ईस्ट इंडीज, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 163
8. राजपूत चित्रकला और उनकी परम्परायें इसकी पुष्टि करती है कि शाहजहाँ के दरबार का एक अधूरा चित्र अनुज चेतन द्वारा तैयार किया हुआ बिट्रिश म्यूजियम में है। (चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 29
9. माधवानल कामकन्दला,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 193, कृष्णदास के पद,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 35
10. माधवानल कामकन्दला, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 193

अर्थात दो लड़ों की मुक्तमाला, कुंठा अर्थात वीच में बड़े कंठे वाला हार,[1] पदिक,[2] स्वर्ण रचित मणि पदिक[3] आदि पहनते थे। पुरूष लोग भुजाओं में केचुर, अंगद, आदि आभूषण पहनते थे। नाभादास और सूर[4] ने भी इसका वर्णन किया है। तुलसी ने वहुमूल्य केचूर और कंकण[5] की चर्चाकी है।

स्त्रियों के आभूषण :-

भारत वर्ष में आभूषणों का हिन्दू और मुसलमानों के लिए धार्मिक महत्व था। भारतीय स्त्रियां भारी से भारी आभूषण पहनती थी।[6] सभी यात्री इस वात का उल्लेख करते है कि आभूषण उनके प्रसन्नता का विषय था।[7] स्त्रियां सभी चीजो का त्याग कर सकती थी लेकिन आभूषण को वह नहीं छोड़ सकती थी। विधवा होने पर[8] आभूषणों का प्रयोग नहीं किया जाता था। स्त्रियां वचपन से ही आभूषणो का प्रयोग करती थी। वहुत कम अवस्था में नाक और कान छेद दिये जाते थे। सिर से पैर तक आभूषण पहनने की प्रथा थी।

आइन-ए-अकवरी में सैतिस प्रकार के जेवरों के प्रयोग के वारे में वताया गया है।[9] मनुची[10] के अनुसार उनके सरों पर जेवर लटकता रहता था और वहुत तरह के जेवर शादी के अवसर पर या विशेष अवसर पर प्रयोग

---

1. छीटस्वामी के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266
2. रामचरित मानस, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 234
3. गीतावली (उत्तरकांड), पूर्वोद्धृत, पद 17
4. अष्टयाम पूजाविधि, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 60 सूरसागर पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 512
5. गीतावली (उत्तरकांड) पूर्वोद्धृत, पद 16
6. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 25
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर पूर्वोद्धृत पृष्ठ 320 स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 40
8. वही, पृष्ठ 40
9. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 343
10. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 339-40

किये जाते थे।

शीश फूल सिर पर पहनने वाला आभूषण होता था जो चमकते हुए हीरों से सजा हुआ नायिका के सिर पर ज्योति विखेरता था।[1] शीश फूल को ही सिर फूल[2] या केशफूल[3] की संज्ञा दी जाती है। केशो को सजाने के लिए मणियों से जड़ी हुई अनेको प्रकार की चोटियां प्रयोग में लायी जाती थी।[4] उसमें लाल रत्नों की झालर लगी रहती थी।[5] ललाट को अंलकृत करने के लिए स्त्रियां कई प्रकार के टीके पहनती थी। यह टीका जड़ाऊ भी होता था।[6] विन्दी माथे पर लगाई जाती थी। विन्दी मोती जड़कर विशेष रूप से सुन्दर वनाया जाता था और एक साथ नव प्रकार के रत्न[7] उसकी शोभा वढ़ाते थे।

डा. वासुदेव शरण अग्रवाल[8], डा. अल्तेकर[9] आदि विद्वानों का मत है कि नाक के नथ आदि आभूषणों का प्रयोग मध्यकालीन मुस्लिम सम्यता की देन मानी जाती है। नाक में आभूषण पहनने की प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित थी। काव्यों में नासिका में नथ की झलक और उसकी लोकोत्तर छवि[10] की

---

1. रसिक प्रिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 261 एवं 284
2. गोविन्द स्वामी पद संग्रह, पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 204, परमानन्द सागर पूर्वोद्धृत पृष्ठ 233
3. गंग कवित्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 21
4. सीतायन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 15
5. अवध विलास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 235
6. रसिक प्रिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ट 284
5. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 28
6. जायसी, मलिक मुहममद- पद्मावत, सजीवनी व्याख्या, सम्पादक डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, पृष्ठ 15/4, 103/2
7. दि पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 364
8. सेनापति- कवित्त रत्नाकर, हिन्दी परिषद इलाहावाद द्वारा प्रकाशित, प्रथम संस्करण छंद 15 व्रजविलास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 327

प्रशंसा की गई है। इसे सुहाग का चिन्ह माना जाता था।[1] यह आकार में लुरकी अर्थात कान में पहनने वाली (बाली) के समान होता था। जो नाक के अधर पर डोलता हुआ दिखायी पड़ता था। उसमें मणि और मोती के नग जड़े रहते थे।[2] मोती की जड़ाई मध्यभाग में की जाती थी। नथ का छोटा रूप ''नथुनी'' का भी उल्लेख किया गया है। नाक की पिन सोने या चाँदी की होती थी।[3] सोने की पतली कील को ठोंक कर दांतो को अलंकृत किया जाता था। इसका प्रचलित नाम भेख वताया गया है।[4]

आलोच्यकालीन काव्य में खूंट, खुटिला, खुभी, झुमका, कुंडल, कर्णफूल, ताटक, तरयौना, बाली, अखोटा, तखिनवाली, तरकी, बीरा, अवंतस[5] आदि का वर्णन मिलता है। चाँदी या सोने के फूल के आकार का आभूषण कान में पहना जाता था। कान में कुण्डल[6] भी पहना जाता था। जो सोने, चाँदी और तांवे के बने होते थे औन कान से लेकर कंधे तक लटकते रहते थे।[7] अन्य कांनो में पहनने वाले आभूषणों में कर्णफूल (जो फूलकी शकल की होती थी) पहनते थे या बाली जिसमें मोतियां लगी होती थी कान में पहना जाता था, चम्पाकली भी कान पहनते थे।[8] वंगाली औरतें कान बाला जिसे चक्रावली कहते थे कान में पहनती थी।

---

1. पदावली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 49
2. देव-सुख सागर तरंग, छंद 334 सीतायन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 27
3. ट्रेवेल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 192
4. मीरा सुधा सिन्धु, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 751
5. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 2612
6. गुप्ता, टी0सी0दास- एसपेक्ट्स आफ बगांली सोसायटी, कलकत्ता, यूनिवर्सिटी, प्रकाशन, कलकत्ता 1935, पृष्ठ 5
7. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 334 ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 320
8. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 343

स्त्रियां गले में पहनने वाले आभूषण में हंस, गुलबन्द, हार, हँसुली, कण्ठमाली पहनती थी। गले में सोने और मोती के हार भी पहने जाते थे।[1] कभी-कभी मोतियों से सजे हुए हार पहने जाते थे। हीरे के आभूषण स्त्रियां पहनती थी।[2]

आलोच्यकाल में हुमेल भी सोना, चाँदी और वहुमूल्य धातुओं के रत्नों से बना रहता था। उस समय रत्नों से जड़े हुए स्वर्ण का चौकोर ठप्पा वनाकर उसे हार के बीच में गूंथ कर पहना जाता था। इसी को चौकी कहा जाता है। ग्रामीण स्त्रियां आज भी हसुली पहनती है। जो अर्द्धचन्द्र या हसिये के आकार का होता था।

स्त्रियां भुजाओं में बाजूबंद और टाडं दो भिन्न आभूषण पहनती थी।[3] टांड रत्न जड़ित होता था जो सोने के छल्लों से वनाया जाता था। आलोच्यकाल के काव्य में कंकण, वलय, गजरा, पहुची, चूड़ी, कड़ा, कंगन आदि का वर्णन किया गया है। जायसी ने नौनगा ककंण का उल्लेख किया हैं जिसमें नौ प्रकार के रतन लगे रहते थे।[4] चूड़ी स्त्रियों के सुहाग का प्रतीक माना जाता था। स्त्रियां कांच की चुड़ी पहनती थी। धनी घरों की स्त्रियां सोने की कचपची चुड़ियां[5] पहनती थी। चुड़ियों की कोई निश्चित संख्या नहीं होती थीं स्त्रियां अपनी रूचि के अनुरूप संख्या में उन्हे पहनती थी। कृष्णदास ने हाथों में चार-चार चूड़ियो[6] के शोभित होने का उल्लेख किया है।

स्त्रियां अंगुलियों में मुदरी, अंगूठी, छल्ला व रिंग पहनती थीं। धनी

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 344
   बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए0डी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 184
2. ग्लोरिया दी मोगोर, भाग 2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 339-40
3. माधुर्य लहरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 127
4. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 466
5. गंग कवित्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 29
6. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 31

वर्गों के लोग हर अंगुलियों में रिगं पहनते थे। उन रिंगो में तरह-तरह के नग और हीरे जड़े रहते थे।[1] रामप्रियाशरण ने सीता के जन्मोत्सव पर एक चित्र स्त्रियों को मणियों से जटित "मुदरी" पहने हुए वताया था।[2] चाँदी की अंगूठियों को अंगूलियों में पहना जाता था।[3]

मुसलमानी प्रभाव से इस युग में भी अंगूठे के लिए अलग आइना जटित छल्ला "अगूठा आरसी, शीशा लगी अंगूठी आदि का प्रयोग किया जाता था। परमानन्द दास ने दरपन निरत मुंदरियां" का उल्लेख किया है।[4] कमर में पहनने वाले आभूषणों में 'क्षूद्र खन्टिका, कटि मेखला' का नाम आता है।[5] पैरों में नूपुर अथवा पायल पहना जाता था। जिसमें तरह तरह के नग लगे रहते थे। नूपुर सोने या चाँदी दोनो के होते थे।[6] यें सादे भी होते थे और बजने वाले भी होते थे। नूपुर के साथ वजते हुए मंजीर का उल्लेख अनेक कवियों ने किया है। अंगूठे में पहने जाने वाले छल्ले जिसे अनवठ कहा जाता था लड़कियां विवाह के वाद इसे पहनती थी।

जेवर पांव का गहना था। इसके अतिरिक्त घुंघरू और पायल भी पावों में ही पहने जाते थे। आभूषण के रूप में पैरों के अग्रभाग में भांक, विछुवा तथा आवंट पहने जाते थे। अवुल-फजल ने सैतिस प्रकार के आभूषणों का उल्लेख किया है जो सोना, चाँदी, पीतल आदि विभिन्न धातुओं द्वारा गढ़े जाते थे। इन आभूषणो को वनाने वालों को जर निशान, कोफ्तगर, मीनाकार, सदाहकार, मुनावतकार, शवाकार, चरमकार, सिम्वाफ, सवादकार, जरकोब आदि

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 340
2. सीतायन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 11
3. बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए0डी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 184
4. परमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 919
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 344
6. गंग कवित्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 21

कहा जाता था।[1]

स्त्रियां पुष्पो से भी शरीर को सजाने का काम लेती थी। व्रजनिधि में फूलों की माला सेनापति मालतीमाल[2] तथा मतिराम ने मालती माल का वर्णन किया है।

इस तरह से धनी वर्गो की स्त्रियां वहुत तरह से आभूषण पहनती थी।[3] भारतीय स्त्रियों के लिए अपने शरीर को आभूषणो से सजाना श्रृगार का वस्तु माना जाता था। इससे उनके जीवन को विशेष आनन्द मिलता था।[4]

---

1. हुसेन युसुफ- ग्लिम्पसेस आफ मेडिवल इण्डियन कल्चर, पृष्ठ 134
2. कवित्त रत्नाकर, पूर्वोद्धृत, दूसरी तरंग, छन्द 28
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 40
4. नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ डयूरिंग मुगल पीरिएड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 45

चतुर्थ अध्याय

खेल कूद
आमोद प्रमोद
एवं
त्योहार

चतुर्थ अध्याय

खेल कूद आमोद प्रमोद एवं त्योहार

मध्यकालीन भारतीय समाज में शासक से लेकर प्रजा तक सभी की आमोद प्रमोद में विशेष रूचि थी जिसके विभिन्न साधन थे। इस काल के लोगो की कुश्ती में विशेष रूचि थी और इसके लिए दंगल आयोजित किये जाते थे। भारत में पोलो का प्रचलन सर्व प्रथम, मुसलमानो के द्वारा ही हुआ। कुतुवुद्दीन ऐबक भी इसी खेल का शिकार हो गया था। शतरंज, चौपड़ और ताश के खेल अमीर और गरीब दोनो में सर्वाधिक लोकप्रिय रहे थे।[1] वघ्घा खेल, गट्टी, भेड़-बकरी का खेल जैसे अनेक खेल ग्रामीण क्षेत्र में प्रचलित थे। गुल्ली डंडा, कवड्डी, चौगान, शिकार खेलना या जानवरो की लड़ाई आदि घरो के वाहर खेले जाते थे। अवुलफजल ने ऐसे खेलो का 'आइन-ए-अकवरी' में उल्लेख किया है।

एच0 सी0 दास गुप्ता[2] और सुन्दर लाल होरा[3] ने भारतीय खेलो की चर्चा की है दास गुप्ता ने सतगोल, का ओस खेल की चर्चा की है।

मुकुन्द राम ने अपनी कविता ''चन्डी'' में इस बात की चर्चा की है कि लड़के उस समय पतंग उड़ाया करते थे।[4] झुंड बनाकर लड़ाई करना, आँख

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55
2. जरनल एण्ड प्रोसीडिंग आफ दी एशियाटिक सोसाइटी आफ वंगाल, कलकत्ता, 1924, पृष्ठ 165, 167 (1926), पृष्ठ 212-13
3. वही, 1933, पृष्ठ 5
4. ज0इ0हि0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 16

मिचौली खेलना, पेड़ो पर चढ़ना, बाग चाल इत्यादि खेलना प्रचलित था।[1] मनुची ने राजकुमारियों और धनी घरों की स्त्रियों के वारे में लिखा है। कि वे अच्छे किस्म के किस्से और कहानियाँ सुनाया करती थी नाचने में भी भाग लेती थी, फूलो का सेज सजाती थी, वगीचों में घूमती थी, और पानी के लहरों को सुनती थी। उन्हें गाना सुनने का बड़ा शौक था और यह मनोरंजन का एक साधन था।[2]

ताश खेलना :-

मुगलो के आने के पूर्व भी भारत में ताश खेला जाता था। डा0 अशरफ के अनुसार ''भारत में ताश का प्रचार सर्वप्रथम बावर ने किया।[3] एक गड्डी में 12, 12 पत्तो के 12 समुह हुआ करती थी और कुल मिलाकर के 144 पत्ते होती थी जिसमें बादशाह तथा उसके सहयोगी रहते थे।[4]

आइन-ए-अकवरी में इस बात का उल्लेख मिलता है कि 12-12 पत्तियों की 12 गड्डियाँ हुआ करती थी और प्रत्येक ताश पर वादशाह और वजीर से लेकर उनके तमाम समर्थकों का चित्र बना रहता था।[5] जो सबसे बड़ी पत्ती मानी जाती थी उस पर बादशाह घोड़े पर सवार होकर छत्र लिए दिखाई पड़ता था। दूसरे पत्ती पर बजीर घोड़े पर सवार होकर दिखाई पड़ता था।[6] हर वादशाह के साथ ये खेल खेला जाता था। टामस रो ने देखा कि जहाँगीर इस खेल को वहुत खेला करते थे।

---

1. वंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, ए0डी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 186
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 352-53
3. अशरफ, के0 एम0- लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पृष्ठ 197
4. बावर-बावरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, लुज्जाक एण्ड कम्पन्नी, लन्दन 1921 पृष्ठ 319
5. वही पृष्ठ 319
6. वही, पृष्ठ 318

शतरंज :-

शतरंज के सम्बन्ध में पर्यटक अलवरूनी लिखता है कि शतरंज भारतीयों का वहुत प्रिय खेल था।[1] अकवर को भी यह खेल वहुत प्रिय था। वह हरम की दासियो के साथ शतरंज खेला करता था।[2] मनुची लिखते है कि इस खेल को खेलने के कारण ही इन लोगो ने शासन करना सीखा था।[3] यह खेल दो हाथ या चार हाथ से खेला जाता था।[4] अकबर दोनो में सिद्धहस्त था।

चौपड़ :-

मुगलकाल में प्रचलित यह खेल वहुत पुराना था।[5] सत्रहवी शताब्दी में चौपड़ दरवार का सवसे मनोरंजक खेल था। औरंगजेव की वड़ी बेटी जेवुन्निसा अपने साथियों के साथ चौपड़ खेला करती थी।[6] कभी-कभी दो सौ मुगल अमीर एक साथ चौपड़ खेला करते थे।[7] इस खेल की सोलह बाजियों में एक मुकावला पूरा होता था। कभी-कभी गेम तीन-तीन महीने शर्त लगाकर चलता रहता था। साधारणतया यह खेल चार खिलाड़ियों के द्वारा खेला जाता था।[8] एक-एक तरफ दो-दो लोग हुआ करते थे। कभी-कभी दो आदमी भी इस खेल को खेला करते थे।[9]

---

1. अल्वेरूनीज इण्डिया, अनुवादक साचउ, भाग-1, पृष्ठ 183
2. लेनपूल, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, भाग-4 पृष्ठ 37
3. स्टोरिया दो मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 460
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद 1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 320
5. वही, भाग-3, पृष्ठ 328 दि सिख रिलिजन भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 162
6. सरकार, जे0एन0-स्टडीज इन मुगल इण्डिया, कलकत्ता 1919 पृष्ठ 82
7. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-1 पुर्वोद्धृत पृष्ठ 316
8. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 59
9. वही, पृष्ठ 60

पचीसी :-

पचीसी हिन्दुओं का दूसरा खेल था जो अकवर भी खेला करते थे। यह खेल आगरे के किले में और फतेहपुर सीकरी में संगमरमर के चौखट पर खेला जाता था।[1] जोतिन्दर मोहन दत्ता[2] लिखते है कि प्रायः यह खेल भारत वर्ष में वहुत पहले से खेला जाता था। 16 टुकड़ो को बोर्ड के आधे चौखट पर रख दिया जाता था। लाम तुर्की खेल 9 टुकड़ो से बोर्ड पर खेला जाता था। मुगलकाल में लड़को के लिए यह खेल वहुत प्रचलित था।

चौगान :-

मुगल वादशाह और अमीर लोग चौगान या पोलो खेला करते थे।[3] प्रायः शाही घरानों की स्त्रियां भी इस खेल को खेला को खेला करती थी। अवुल-फजल लिखते है कि अकवर इस खेल को बड़े शौक से खेला करते थे। हर मुगल बादशाह इस खेल को बड़ी दिलचस्पी से खेलते थे।

अकवर के काल में मीर शरीफ और मीर गयासुद्दीन बड़े अच्छे खिलाड़ी थे।[4] इसमें अधिक से अधिक 10 खिलाड़ी रहते थे। एक-एक तरफ पाँच-पाँच होते थे। इस खेल को घोड़े की पीठ पर बैठकर खेला जाता था। हर आदमी चौगान को स्टिक से खेला करता था।[5] चौगान खेलने के मशहूर मैदान फतेहपुर सीकरी और आगरे में थे। समकालीन अभिलेखों में हाकी के खेल का भी पता चलता है 'डेनिसन रास' और अन्य लोगो ने वताया है कि हांकी का खेल भी उस समय खेला जाता था।[6]

---

1. सोसायटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 61
2. ज0प्रो0ए0, सो0ब0, पूर्वोद्धृत-4 1938, आरटिकल नं. 101
3. मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69
4. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2 पूवोद्धृत, पृष्ठ 233
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 309-10
6. मजुमदार, वी0पी0-सोशियो- एकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया कलकत्ता, 1960, पृष्ठ 254

कुश्ती :-

कुश्ती मनुष्यों के दैनिक परिश्रम का साधन था। इसमें वादशाह, अमीर व साधारण जनता सभी भाग लिया करते थे।[1] कुश्ती के कुछ आवश्यक नियम होते थे, जिसका पालन करना वहुत जरूरी था। कुश्ती का मैच शाही देखभाल में होता था। इसमें मुगल वादशाह और राजकुमार दिलचस्पी लिया करते थे और इसमें जीतने वाले को पुरस्कृत किया जाता था।[2] प्रायः कुश्ती के द्वारा मांस पेशियों का विकास होता था और इससे शरीर हिष्ट पुष्ट होता था।

मुक्केबाजी :-

मुगलकाल में मुक्के का युद्ध भी एक प्रकार का खेल था।[3] डी लायट लिखते हैं कि मुगल वादशाह इसे बड़े शौक से देखा करते थे। यह दृश्य कॉफी मनोरंजक होता था।[4] अकवर के काल में इस खेल का अत्यधिक प्रचलन था।[5] मनुची ने भी इस खेल की चर्चा की है।[6]

दौड :-

17वी शताब्दी में घुड़दौड़[7] भी उच्च्व वर्ग के मुगल अमीरों के मनोरंजन का एक वहुत बड़ा साधन था। वे लोग इस खेल में भाग लिया करते और अपने घोड़े को बड़ी तेजी के साथ दौड़ाते थे। घुड़दौड़ बड़े पैमाने पर किया

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 66
2. अकवर नामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत 482, स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 191
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82
4. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82
5. दि कमेटेरीज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 198
6. स्टोरिया दो मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 191
7. मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69

जाता था। अकवर के समय में कुत्तो की दौड़[1] भी काफी प्रचलित थी।[2]

सैनिक खेल कूद :-

सैनिकों के खेलने कूदने का अपना एक अलग तरीका हुआ करता था, जिसमें विशेष रूप से तीर धनुष चलाना[3] तलवार चलाना[4] अच्छा खेल माना जाता था। हरेक नवयुवक की यह आकांक्षा रहती थी कि वह तलवार चलाने में निपुण हो। इसकी भी प्रतियोगिताएं होती थी और प्रतियोगियों को उचित पुरस्कार वितरित किया जाता था।

शिकार खेलना :-

मुगलकाल में शिकार खेलना[5] एक मनोरंजन का साधन था। इसमें वादशाह, अमीर व साधारण जनता सभी भाग लेते थे। इस खेल में वहुत अधिक खर्च पड़ता था। शेर, चीते और जंगली जानवरों का शिकार किया जाता था। जहाँगीर केवल पुलिंग चीतों का शिकार करते थे।

शेर का शिकार केवल वादशाह करता था।[6] हाथी का शिकार भी किया जाता था जो पेशेवर शिकारी होते थे उनको इजाजत लेकर खेलना पड़ता था। कुत्ते, हिरन और हाथी भी शिकार के लिए शिक्षित किए जाते थे।[7]

जहाँगीर ने शिकार खेलने के लिए इगलैण्ड[8] और कावुल से कुत्ते मंगवाये थे। अकवर ने एक तरह के शिकार खेलने का पता लगाया था। जिसे

---

1. मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69
2. वही, पृष्ठ 84
3. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 613
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 262-63
5. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 253
6. ट्रैवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 218
7. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69
8. रो, सर टामस- दि एम्वेसी आफ, टू दि कोर्ट आफ दि ग्रेट मुगल, सम्पादक विलियम फास्टर, लन्दन 1899, पृष्ठ 182

कमरघा[1] कहा जाता था। हर मुगल वादशाह और अमीर लोग इस खेल को खेला करते थे।[2] इसके लिए एक विशेष स्थान निर्धारित किया जाता था। मुगल वादशाहों के वहां चीते का शिकार विशेष रूप से किया जाता था।[3]

बहुत से पुस्तको के अवलोकन से पता चलता है कि मुगल शासन काल में चीता[4], गदहे[5], पानी का जानवर[6], भैस[7], हिरन[8] इत्यादि के शिकार खेले जाते थे। धनी व गरीव दोनों ही चिड़ियों का भी शिकार[9] खेलते थे। कुछ लोग वन्दुक से शिकार खेलते थे और कुछ लोग तीर धनुष से चिड़ियों को मारते थे।

मछली मारना :-

मुगल काल में मछली मारने की प्रथा वहुत पहले से चली आ रही थी। उस समय लोग जाल से मछली मारा करते थे।[10] मछली मारने में एक विशेष किस्म की जाली का इस्तेमाल किया जाता था जिसे सफरा कहा जाता था।

मुगल वादशाहों[11] में जहाँगीर इसमें वहुत ज्यादा रूचि लेते थे। वे तरह-तरह की मछलियों को मारा करते थे। बहुत से मुगल वादशाह अपने-अपने

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 282
2. मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 93-94
3. ट्रेवेल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 126-28
4. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 186
5. वही, पृष्ठ 522
6. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 307-81
7. वही, पृष्ठ 304
8. स्टोरिया दो मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 85
9. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 304
10. तुजुक-ए-जहाँगीरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 342
11. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृतं, पृष्ठ117

नहरों में तरह-तरह की मछलियों को मारते थे।

नाव चलाना :-

नाव नदियों को पार करने के लिए प्रायः यातायात के साधन के रूप में प्रयोग किया जाता था। कभी-कभी अमीर लोग ताजगी के लिए नदियों और झीलों में नाव से जाया करते थे।[1] मनोरंजन के लिए अमीरलोग जिस नाव का प्रयोग करते थे, उसके लिए पंखा या बजड़ा तैयार किया जाता था।[2] जो असाधारण तौर पर नीचा और लम्बा होता था, जिसमें बड़े खूवसूरत पतवार लगे होते थे।[3] अमीर लोग खूवसूरत गद्दी पर सामने या वीच मे बैठते थे। उसके ऊपर सूरज की रोशनी या पानी से बचने के लिए छाया वनी रहती थी। जब धनी लोग[4] अपने परिवार के साथ नांव में जाते थे तो नाव के बीच में उनकी स्त्रियों के लिए कमरा बना रहता था।

पशुओं की सवारी :-

घुड़सवारी[5] यातायात के लिए और धनिकों के मनोरंजन के लिए प्रयोग में लाया जाता था। कभी-कभी धनी लोग हाथियों पर चढ़ा करते थे, खास तौर से यह मुगल वादशाहों के मनोरजंन का साधन माना जाता था।[6] राजकुमार लोग भी इस पर चढ़ा करते थे। अकवर कभी-कभी ऊट को भी सवारी के रूप में प्रयोग करते थे।[7]

---

1. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ117
2. ट्रेवल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 158
3. वही, पृष्ठ 158
4. बावरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 36?87-406
5. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 405; आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 122
6. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 234, भाग-3, पृष्ठ 129; स्टोरिया दो मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 133
7. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 111

पशुओं की लड़ाई :-

पशुओं की लड़ाई भी एक सामान्य मनोरंजन का साधन था। वकरा, मुर्गा, सारस, कुत्ता और बैल की लड़ाई लोग बड़ी प्रसन्नता से देखा करते थे।[1] नौजवान लोग वुलवुल और तीतर की लड़ाई देखा करते थे।[2] वादशाह व अमीर लोग हाथी[3], चीता, हिरन, तेंदुआ, वैल और अन्य जानवरो की लड़ाई देखा करते थे।[4]

तुजुके जहांगीरी में एक चीते वैल की लड़ाई की चर्चा की गयी है।[5] ऊट जो लड़ा करते थे वो अजमेर जोधपुर, बीकानेर, गुजरात, इत्यादि से मँगाये जाते थे।[6] कभी-कभी आदमी लोग भी जानवरों से लड़ा करते थे और जो आदमी जानवरों से जीत जाता था उसको मनसवदार वना दिया जाता था। शर्त रखकर जानवरों की लड़ाई होती थी। दो से आठ रूपयें तक का शर्त हिरन की लड़ाई में रखा जाता था।[7] बकरा व मुर्गा की लड़ाई को घरों के सामने देखा जाता था।

कवूतर का उड़ाना :-

मुगल काल में कवूतर का उड़ाना भी प्रचलित था मुकुन्द राम ने इसके वारे में चर्चा की है[8], कि अमीर लोग तूरान और ईरान से कवूतर को लाकर उन्हे सिखाकर उड़ाते थे।[9] अकवर इसको वहुत पसन्द करता था।[10]

---

1. बावरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 259
2. ट्रेवल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 128
3. एनेकडोट्स आफ औरंगजेव एण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 57
4. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 43
5. तुजुक-ए-जहाँगीर, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 157
6. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 143
7. वही, पृष्ठ 218-20
8. वंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी स0डी0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 185-86
9. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 310
10. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 589

जो शाही कवूतर उड़ाये जाते थे उसे चरका या बाजी कहा जाता था।

जादू :-

जादू का खेल भी भारतीय जनता के मनोरंजन का साधन था। गांवो में इस तरह का मनोरंजन पूरे देश में होता था। जादूगर लोग आगरे[1] की सड़को पर अपने जादू दिखाते थे।[2] डा0 फ्रायर ने जादूगरों की भीड़ो को देखा था।[3] वर्नियर ने लिखा है कि इस तरह वहुत से जादूगर दिल्ली[4] मे इकठ्ठा होकर अपने खेलों को दिखाया करते थे। थेवेनाट[5], टेरी[6] और जानमार्शल[7] ने इन लोगों की वाजीगरी के कई उदाहरण दिए है। नट लोग भी अपना गुण दिखाते थे।[8] कभी-कभी एक या दो वन्दर को ऐसी शिक्षा दी जाती थी कि वह तरह-तरह के चीज दिखा सके।[9] बावर वन्दरों के करामातों की चर्चा करते है। जहाँगीर के समय में वगांल से जादूगर लोग वन्दरों को लाकर बड़ी ही अदभूत चीजो को दिखाते थे। ये लोग सांप[10] के दांतो को निकालकर उन्हे टोकरी मे रखकर वासुरी बजाकर के सड़को पर औरतों और वच्चों का मनोरंजन करते थे।

---

1. जहाँगीर आफ इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 72
2. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 157
3. ट्रेवल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 443
4. ट्रेवल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 243
5. ट्रेवल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 77-88
6. वायेज टू ईस्ट इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 190
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 258-59
   मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 378-79
8. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 258
9. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82
10. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 261, ट्रेवल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 405; दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82

नाटक :-

लड़के लोग औरतें और लड़कियों का भेष वनाकर नाटक में भाग लेते थे।[1] भगवान कृष्ण[2] के चरित्र का भारत में लोग नाटकों द्वारा चित्रण करते है जो महाभारत में उदधृत है। हिन्दुओं के वार्षिक दशहरे के त्योहार पर रामायण का दृश्य रामलीला करके प्रदर्शित किया जाता था।[3] मुसलमान लोग हिन्दुओं के रामायण के संगीत से आनन्द लेते थे।[4]

मुगल परिवार में नाटक का बड़ा रिवाज था। नाटक संगीत और नृत्य के लिए समय निर्धारित रहता था। कुछ नाटककारों ने जो गुजरात से आये थे उन्होने शाहजहाँ के सामने यह नाटक दिखाया कि किस तरह से राज्य में शासन खराव है।[5] जलसों[6] में इस तरह के सजावट की बड़ी प्रथा थी। नाच और गाने के बाद शराब का दौड़ चलाता था।

बागवानी :-

वादशाह व अमीर दोनों लोग बागबानी को एक प्रकार से आदत वना लिये थे।[7] बावर ने वहुत अच्छे किस्म के बगीचे बनवाये थे और उसमें चश्में भी लगवाये थे।[8] अकवर ने पतेहावाद के किनारे बड़ा खूवसूरत वगीचा वनवाया

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 257
2. दि सिख रिलिजन, भाग-1, प्रर्वोद्धृत, पृष्ठ 23
3. इस उत्सव के दस दिन पहले से राम का रावण के उपर विजय और उसी से सम्वन्धित क्रिया कलापों का प्रदर्शन किया जाता है (चोपड़ा द्वारा उदधृत) पृष्ठ 80
4. इ0क0, 1943, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 121
5. बावरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 400
6. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 309
7. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 303
8. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 87; मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 339

था।[1] जहाँगीर और शाहजहाँ वहुत खूवसूरत बगीचे लगाये थे जिसमें वे अक्सर जाकर मनोरंजन करते थे।[2]

त्योहार एवं मेले :-

मध्यकालीन युग में साल का सबसे ज्यादा समय सार्वजनिक त्योहारों में लग जाता था। हिन्दुओं के त्योहारों की संख्या मुसलमानों से अधिक थी। शास्त्रों में वहुत थोड़े से त्योहारों की चर्चा मिलती है। पुराणों में थोड़ी संख्या अधिक मानी जाती है। वहुत से हिन्दू त्योहार धार्मिक ऐतिहासिक और ज्योतिष पर आधारित है।[3] वहुत से प्रसिद्ध त्योहारों में वसन्त पंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, रक्षावन्धन, विजयादशमी, दीपावली (दीवाली), तीज, गोवर्धन पूजा और गणेश चतुर्थी है।[4]

मुगलों के उपर हिन्दूओं का विशेष प्रभाव था, इसलिए वे लोग वहुत से हिन्दू त्योंहारों को भी स्वीकार कर लिये थे।[5] हिन्दू संस्कृति के प्रभाव के कारण वे लोग सजावट, रोशनी, अतिशवाजी, सोना, चाँदी, हीरे का प्रदर्शन करते थे। मुगलों के खाने पर सामाजिक और राजनीतिक जीवन में नया वातावरण पैदा हुआ। वे लोगों के त्योहारों में रूचि लेने लगे। वे हिन्दुओं के तुलादान में विश्वास करते थे।[6]

अकवर होली, दशहरा और वसन्तपंचमी अपने दरबार के उत्सवों में मनाते थे। जहाँगीर और शाहजहाँ ने इन परम्पराओं का पालन किया था। किन्तु औरंगजेव ने इसे स्वीकार नही किया और उसने हिन्दुओं के त्योहारों का निषेध कर

---

1. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 531
2. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 158
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 83
4. नार्थ इण्डियन सोसल लाइफ डयूरिंग मुगल पीरियड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 66
5. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 83
6. वही, पृष्ठ 83-84

दिया था।[1] हिन्दुओं के तीर्थ स्थानों पर समय-समय पर मेले लगते थे, जिसमें हिन्दू स्त्री और पुरूष इकट्ठे होते थे। मध्यकालीन युग में धार्मिक मेले लगते थे जिसका सामाजिक और धार्मिक महत्व था। किसी धार्मिक व्यक्ति के लिए तीर्थ स्थानों पर जाना या किसी पवित्र नदी पर स्नान करना धार्मिक गुण माना जाता था। साधारण व्यक्तियों के लिए इसका सामाजिक और धार्मिक महत्व होता था।[2] यातायात के साधनों के अभाव होने के कारण इन मेलों में हर जाति व प्रान्तों के लोग इकट्ठा होते थे, जो लोगों की एकता व सास्कृतिक विशेषता का परिचायक माना जाता था। विभिन्न क्षेत्रो में विभिन्न प्रकार के मेले हर प्रान्तों में लगते थे।[3] महत्वपूर्ण[4] अखिल भारतीय मेले हरिद्वार, प्रयाग,[5] मथुरा, अयोध्या, गया, गणमुक्तेश्वर, उज्जैन, द्वारिकापुरी, नगरकोट, कांची और रामेश्वरम् में लगते थे। प्रयाग हरिद्वार और कुरूक्षेत्र में कुम्भ मेला लगता था, जिसमें लांखो लोग इकट्ठा होते थे।

मुसलमानो के मेले अजमेर, पानीपत, निजामुद्दीन, औलिया, सरहिन्द, अजोधान, इत्यादि जगहो पर लगते थे। जिसमें पूरे देश से वहुत से तीर्थ यात्री आते थे।[6]

राष्ट्रीय त्योंहार :-

17वीं शताब्दी में भारत में राष्ट्रीय त्योहारों की भी व्यवस्था थी जिसको हिन्दू और मुस्लिम सभी मिलकर मनाया करते थे। इनमें शसक का जन्मोत्सव तथा नवरोज प्रमुख राष्ट्रीय त्योहार थे।

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 84
2. वही, पृष्ठ 106-107
3. वही, पृष्ठ 107
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 332-36
5. ट्रेवेल्स भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 146
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 107

नवरोज :-

मुगलों के काल में राष्ट्र का सबसे बड़ा त्योहार साल का पहला दिन नवरोज होता था। यह एक राष्ट्रीय त्योहार था।[1] इसे पर्शिया से लोगो ने लिया था।[2] इसी से साल में वसन्त ऋतु की शुरूआत होती है। मुगल लोग इसे 19 दिन तक मनाते थे[3] और उन्नीसवें दिन का रूपया वे भेंट के रूप में खर्च करते थे।[4] कई बड़े-बड़े नगरों[5] में कई महीनें पहले[6] से इसकी तैयारी की जाती थी। बाजार पार्टी की ओर वहुत से सार्वजनिक हाल बड़े कीमती और सुनहरे कपड़ो से सजाये जाते थे। वहुत बड़े-बड़े महल वनवाये जाते थे उस पर चित्रकारी किया जाता था। साधारण लोग अपने फाटक को रंगवा देते थे और उस पर ही वस्तुओ को सजाते थे।[7] इस काल में जुआ खेलने की भी इजाजत दी जाती थी।[8] बादशाह और उनके दरबार के लोग इसको राष्ट्रीय पर्व के रूप में दरबार में मनाते थे।[9] मुगल वादशाह जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में विशेष रूप के सिक्के तैयार किये जाते थे जो जनता को राज्याभिषेक के वार्षिक उत्सव पर

---

1. अकवर के समकालीन इतिहासकार अब्दुल कादिर वदाँयूनी ने इसके लिए 'नवरोज-ए-जलाली' की संज्ञा दी है।
2. रास, इ डेनिसन-एन एल्फावेटिकल लिस्ट आफ दि फीस्ट्स एण्ड हॉलिडेज आफ दि हिन्दूज एण्ड मुहम्मडनस, कलकत्ता, 1914, पृष्ठ 110
3. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 276-77
4. वही, पृष्ठ 183
5. मुन्तरवब उत तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 310
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 41
   स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 195
7. ट्रेवेल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 193
8. मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 348-49
9. जेम्स इर्विंग- दाविस्तान-उल-मजाहिव, अंग्रेजी अनुवाद, 1843, पृष्ठ 289

तथा नवरोज के दिन दिया जाता था।[1] शराब भी लोग पीते थे। पर्शिया से गाने वाले संगीतज्ञ और नाचने वाली लड़कियां लायी जाती थी।

यूरोप के कई यात्रियों ने[2] इस उत्सव को अत्यधिक शानदार कहा है। मानरिक ने आगरे के महल को शानदार रूप से सजावट करने की चर्चा की है।[3] चार हजार घुड़सवार सिल्क का रंगीन कपड़ा पहने और छः सौ हाथी देखने को मिलता था और दूसरी तरफ कतार से सौ हाथी वहुत अच्छे सजावट के साथ हौदा लगाये हुए दिखाई पड़ते थे।[4]

पहले हाल में वहुत सी तरह की चीजें और चित्रकारी देखने को मिलती थी और दूसरे हाल में अनेकों तरह की सुगन्धित चीजें देखने को मिलती थी।[5] अमीर और धनी वर्ग के लोग हीरे, जवाहरात और मोती से इतना अधिक सजावट करते थे कि इतिहासकार निजामुद्दीन के अनुसार लोगों की आंखे चौधीया जाती थी।[6] इस वात का प्रवन्ध किया जाता था कि शाही घराने की स्त्रियां इसे देख सकें।[7] दीवाने आम में बड़ी उच्च कोटि की सजावट की जाती थी और वहुत सी कीमती वस्तुएं पर्शिया, चीन और युरोप से मंगायी जाती थी।वादशाह का टेन्ट वहाँ लगा होता था[8] और उसकी हीरें,मोती चाँदी से अच्छी तरह से सजावट की जाती थी, वहुत कीमती कालीने विछायी जाती थी।[9]

---

1. ज0प्रो0ए0सी0ब0, 1883, पूर्वोद्धृत
2. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 119 ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 270
3. ट्रेवेल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 195-200
4. सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 87
5. ट्रेवेल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 195-200
6. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 270
7. सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 87
8. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 119
9. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 87

वर्नियर इसके खम्भों को चॉदी की सजावट किए हुए देखा था। इस शाही टेन्ट के अन्दर का भाग लाल रंग से सजाया जाता था और इस शाही टेन्ट में सुनहले और हीरे जवाहरात वाली गद्दी लगायी जाती थी। शाहजहाँ के समय में मोर वाली गद्दी को सजाने की प्रथा थी।[1] बचे हुए जगहों पर अमीरों का टेन्ट लगाया जाता था, जिसकी सजावट खूब अच्छी, तरह से की जाती थी। दरवार की गैलरियां, दीवालें और खम्भे वहुत अच्छे ढंग से सजाये जाते थे।[2] हाकिन्स लिखते है कि वहुत अधिक धन हर एक लोगों के मकानों और कमरों को सजाने में लगता था।[3] वादशाँह को हर अमीर निमन्त्रण देता था और उनके सामने वहुत बढ़िया भोजन रखने के वाद उनको, हीरे, जवाहरात और मोती भेंट किया जाता था। जहाँगीर एक वार आसफ खाँ के यहाँ खाना खाने गये जो शाही महल से एक कोस दूर पर स्थित था।[4] इतमाद्दौला ने एक बार वादशाँह को खाना खिलाया और फिर उसके बाद उन्हे सोना चाँदी भेंट किया, जिसकी कीमत चार लाख पचास हजार मानी जाती थी और फिर एक लाख रूपये का जवाहरात दिया गया।[5] पहले दिन और आखिरी दिन वादशाह सजी हुई गद्दी पर बैठता था। अमीर लोग श्रेणी के हिसाब से कतार से खड़े होते थे और फिर भेंट देते थे।[6] बादशाह जागीर, वस्त्र पदवियां, श्रेणीयां और रूपया वाटते थे।[7] और एक फैंसी बाजार लगाया जाता था।[8]

---

1. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 268-69; ट्रेवल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 200-4; स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 348-49
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 270
3. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 119
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 88
5. वही, पृष्ठ 88
6. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 50
7. मुन्तरवब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 175
8. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 272

जन्मोत्सव :-

बादशाँह का जन्म दिवस वहुत अधिक सजावट के साथ पूरे साम्राज्य में मनाया जाता था।[1] अकवर चन्द्रमा और सूर्य दोनों के हिसाब से जन्म दिन मनाते थे।[2] पाँच दिन तक राजधानी में उत्सव मनाया जाता था तथा भेंट दिया जाता था। नांच गाने का भी प्रबन्ध किया जाता था।[3] दावतें चलती थीं और कवि लोग अपनी कविता से लोगों को आनन्दित करते थे।[4] इस सप्ताह में लोग जुआ भी खेलते थे। शाही महल की सजावट की जाती थी। हाथी और घोड़ो को सजाकर बादशाह के सामने लाया जाता था। इस शुभ दिन वे अपनी मां के मजार पर जाते थे और उनसे आर्शिवाद लेते थे।[5] उनके साथ बड़े-बड़े अमीर लोग भी जाते थे और वे भेट चढ़ाते थे।[6]

इस दिन बादशाँह का तुलादान होता था।[7] भगवान की स्तुति की जाती थी और गरीबों को दान दिया जाता था।[8] हुमायूँ भी इसे करते थे।[9] अकबर साल में दो वार करते थे।[10] जहाँगीर के समय में भी किया जाता था। शाहजहाँ

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266-67
2. वही, पृष्ठ 266-67
3. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 47
4. मुन्तरबब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 85
5. ट्रेवेल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 200-4
6. दि एम्पायर आफ दि, ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 101-2
   द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 421
7. स्टोरिया दो मोगोर,भाग-2,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 348; ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 272
8. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266-67
9. ख्वन्दमीर-कानून-ए-हुमायूनी, अंग्रेजी अनुवाद, डा0 वेनी प्रसाद कलकत्ता 1940, पृष्ठ 76
10. हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 85-86

के समय में थोड़े परिवर्तन के साथ किया जाता था। औरंगजेव भी अपने को साल में एक बार तौलवाते थे। इसे एक्यावन वर्ष के बाद बन्द कर दिया गया। अपने लड़कों को विमारी से वचाने के लिए तौलवाते थे और गरीबों को कपड़ा इत्यादि सामान भी वांटा जाता था।[1] अपने जन्मोत्सव के दिन बारह वार सोना, चाँदी, सिल्क और सुगन्धित वस्तुयें, तांबा, रूवी, तुतीया औषधिया, घी, लोहा, चावल, दूध और तमाम तरह के गल्लों के बराबर तौला जाता था।[2]

चन्द्रमा वाले जन्मदिन के उत्सव पर बादशाँह को चांदी, टिन, कपड़ा शीशा, फल, कडू का तेल और सब्जी के बराबर तौला जाता था।[3] जो भी वस्तुयें तौल में डाली जाती थी उनको गरीबों को दे दिया जाता था और इस दिन वहुत से जानवरों को मुक्त कर दिया जाता था।[4] यूरोप के यात्रियों ने इस वात पर सन्देह व्यक्त किया है कि इतना धन बांटा जाता था या नहीं।[5] उत्सव के बाद बादशाह को गद्दी पर बैठाया जाता था। थेवेनाट के अनुसार उन्हें लोग लाखों रूपया भेंट करते थे।[6] बादशांह फिर अपने दरबार मे नये सिक्के फल और मेवे इत्यादि बाटते थे। वहुतो को मनसब दिया जाता था और जीगीरें दी जाती थी।[7] वहुत से लोगों को भेंट दिया जाता था और उत्सव के अन्त में एक वहुत बड़ी दावत दी जाती थी। अमीरों की स्त्रियां दरबार में आकर महारानियों

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 90
2. वही, पृष्ठ 90
3. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266
4. वही, पृष्ठ 266-67
5. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 42; ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 379
6. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 47; स्टोरिया दी मोगोर,भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 348
7. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगलस, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 101-2; द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 42

को भेंट देती थी और फिर उनको भी उपहार मिलता था।[1]

मीना या फैन्सी बाजार :-

हुमायूं प्रथम मुगल सम्राट था जिसने मीना बाजार की शुरूआत की थी। सबसे पहले बादशांह के महल के पास नाव के उपर बाजार लगाये गये थे।[2] शाहजहाँ के मनोरंजन का सबसे लोकप्रिय साधन ये था कि वह आठ दिन तक लगातार जनानखाना की गैलरी में तरह-तरह के मेले लगाते थे।[3] कोई निश्चित अवधि के वाद यह वाजार नहीं लगाया जाता था। अवुल-फजल के अनुसार यह महीने में एक वार लगाया जाता था।[4] शाहजहाँ हर एक त्योहार पर इस तरह के बाजार का प्रवन्ध करते थे।[5] हमेशा नवरोज के जलसे के वाद इस तरह के बाजार लगाया जाता था।[6] विशेष रूप से बाजार में वनायी गयी दुकाने अमीरों को वांट दी जाती थीं और इस तरह का प्रबन्ध किया जाता था कि उनकी स्त्रियां व लड़कियां व्यापारियों की तरह से दुकानों को लगावे।[7] ये स्त्रियां वहुत खूवसूरत होती थी और वह उमरा लोगों को प्रिय होती थी।[8] राजपूत स्त्रियां भी इसमें जाती थी।[9] इसमें सोने, चाँदी और बनिये की दुकाने रहती थी। इसमें कपड़े के व्यापार की भी दुकानें होती थी।[10] जो बस्तुएं इसमें

---

1. स्टोरिया दी मोगोर,भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 345
2. वेगम गुलबदन-हुमायूं नामा, अंग्रेजी अनुवाद, ए.एस.वेवरिज, लन्दन 1902, पृष्ठ 126
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 195
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 277
5. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 273
6. वही, पृष्ठ 272
7. ट्रेवेल्स आफ इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 238
8. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 273
9. ट्रेवेल्स आफ इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 238
10. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 272-273

बेची जाती थी वो कीमती जेवर और अच्छे किस्म के सिल्क के कपड़े रहते थे।[1] बादशाह अपने राजकुमारियों और स्त्रियों के साथ इन बाजारों में जाते थे और फिर वे खरीददारी करते थे। इसमें एक-एक चींज का मोल तोल किया जाता था। यात्रियों के अनुसार इसमें हसी मजाक भी होते थे और जो स्त्री काउण्टर पर रहती थी वह वादशाह को कंजूस कहती थी या उनको ऐसा व्यापारी बताती थी जो वस्तुओं के मूल्य के बारे में अनभिज्ञ हो।[2] वादशाह वहुत ज्यादा खूश होने पर वस्तुओं का दुगुना मूल्य दे देते थे। स्त्रियों के बाजार के बाद पुरूषो का बाजार लगाया जाता था जिसमें व्यापारी लोग दुनिया के तमाम कोने से सामानों को लाकर बेचा करते थे।[3]

मुस्लिम त्योंहार :-

मुस्लिम त्योहार इस्लाम के ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित होते है और इन त्योहारों के द्वारा उन ऐतिहासिक घटनाओं की याद पुनः ताजी हो जाती है। इन त्योहारो की तिथि चाँद पर निर्भर हुआ करती है। अतः कभी कभी चाँद के स्पष्ट न दिखाई देने से व्याकुलता फैल जाया करती थी। मध्यकाल में यही मुस्लिम त्योंहार थे जो आज मनाये जाते है।

अबीपाशा :-

होली के समान एक पर्व मनाया जाता था जिसको जहाँगीर अलीपाशा और ईदगुलाबी कहते थे। जो मुगल दरबार में वर्षा ऋतु के आरम्भ होने के समय बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। राजकुमार और अमीर लोग इसमें भाग लेते थे।[4] और बड़े प्रसन्नता पूर्वक एक दूसरे के उपर गुलाब जल छिड़कते थे। सोने के पात्रों में गुलाब जल बादशाह को भेंट देते थे। इस पर्व पर बादशाह

---

1. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 33
2. ट्रेवेल्स ऑफ, इन टू दि लेवेन्ट, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 50
3. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 277
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 95

को फलों के जूस, शन्तरे का जूस भेट किया जाता था।[1]

शब-ए-बरात :-

यह त्योहार शाबान की चौदह तारीख को मनाया जाता था इसी दिन पैगम्बर साहब स्वर्ग सिधारे थे।[2] इस दिन मुसलमान रात भर जागते थे और ईश्वर का स्मरण किया करते थे तथा मजारों पर 'फतेहा' भी पढ़ा करते थे।[3] एक दिन पहले मुसलमान लोग तरह-तरह की मिठाई, दही, इत्यादि तैयार करते थे और एक दूसरे को मिठाइयां भेटं की जाती थी।[4] मुगल काल में मुसलमान लोग अपने घरों में रोशनी करते थे और अतिशबाजी छोड़ते थे।[5] जहाँगीर और शाहजहाँ[6] इस त्योहार को बड़े उत्साह के साथ दरवार में मनाते थे। 1639 में लाहौर में शाहजहाँ के शब-ए-बरात को बड़े धूमधाम से मनाया था। इसके सयोंजक अली मर्दन खां ने सार्वजनिक हाल को फारस की शैली के अनुसार सजाया था।[7] लकड़ी के ढ़ाचे बनाकर उन पर भी रोशनी की जाती थी।[8] दरबार के दीवाने आम में अतिशवाजी छोड़ी जाती थी। बादशाह गद्दी पर बैठकर दस हजार रूपया गरीबो को उपहार के रूप में वाँटते थे।

ईद-उल-फित्र :-

यह मुसलमानो का प्रमुख त्योंहार था। इस दिन व्रत तोड़कर उत्सव

---

1. तुजुक-ए-जहाँगीरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265,295
2. हिन्दू मुहम्मडन फीस्टस, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 111-12
3. इस्लामी त्योंहार और उत्सव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 68-72
4. ट्रेवेल्स आफ इन टू दि लेवेन्ट, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 31
5. वही,पृष्ठ 31;द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 46
6. पादशाहनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 167-68
7. वही, पृष्ठ 167-68
8. वही, पृष्ठ 167-68

मनाया जाता था।[1] यह दिन रमजान[2] के महीने के व्रत के बाद पड़ता था। इस दिन के पहले वाले दिन में चंद्र दर्शन किया जाता था और लोग खुशी में बदूंके छोड़ते थे और वाजे बजाते थे।[3] ईद के दिन सुवह के समय मुसलमान लोग नहाकर[4] अच्छे कपड़े पहनते थे और ईदगाह में नमाज पढ़ते थे। दोस्त और रिश्तेदार लोग अच्छे-अच्छे भोजन एक दूसरे के यहाँ भेजते थे और गले मिलते थे।[5] उसके बाद लोग खुशियाँ मनाने के लिए अतिशवाजी छोड़ते थे। अपने से बड़ो के यहाँ जाते थे और सलाम करते थे। राजकुमार, अमीर, दरबारी और राज्य के बड़े-बड़े अधिकारी[6] सभा भवन में इकठ्ठे होकर बादशाह को सलाम करते थे। जहाँगीर अपने शासन के पहले वर्ष ईदगाह में गया और वह लोगों को धन्यवाद दिया तथा नमाज पढ़ा। बहुत सा धन गरीबों को दान दिया गया। शाहजहाँ अपने पिता की भांति जाते थे और एक ऐसे ही उत्सव पर 1628 ई. मे तीस हजार रूपया दान में दिए थे। इसके अलावा बहुत सी भूमि और भत्ते भी दिये गये थे।[7] रामचन्द्रभान ब्राह्मण ने ईदगाह के जलूस का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

ईद-उज-जुहा या बकरा ईद :-

यह त्योहार वलिदान से सम्वन्धित है इस दिन एक बकरे, भेड़ या

---

1. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 306; ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेलावैले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 428
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 158-59; एवायेजेज टू सूरत इन दि ईयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 243
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 305-6
4. बाबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 235-36
5. जहाँगीर्स इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 73
6. मुहम्मद मुस्तैद खाँ साकी- मआसिर-ए-आलमगीरी, उर्दू अनुवाद, फिदा अली तालिब, प्रकाशक जामिया उस्मानिया हैदरावाद (दकिन), पृष्ठ 28
7. पादशाहनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 259

गाय का बलिदान चढ़ाते थे।[1] जहाँगीर ने एक बार तीन बकरे का बलिदान किया था।[2] मुगल काल में इस उत्सव को बड़े धूमधाम से मनाया जाता था। बादशाह भी इस उत्सव में भाग लेते थे। राजधानी और प्रान्तों में बड़े धूमधाम से इसकी तैयारी की जाती थी। निश्चित समय पर ईदगाह में जनता इकट्ठा होती थी। बादशाह घोड़े पर सवार होकर ईदगाह जाते थे।[3] प्रान्तों के राजधानी में गर्वनर बादशाह के जगह पर ईदगाह मे बड़े उत्सव के साथ जाते थे और फिर एक बकरे का बलिदान करते थे।[4] बादशाहों के सामने ईदगाह में एक ऊँट का बलिदान किया जाता था।[5] जनता भी अपने घरों में बकरे का बलिदान करती थी।[6] और तरह-तरह का पकवान बनाकर लोग इस उत्सव को मनाते थे।

मोहर्रम :-

मुसलमानों का मुहर्रम का महीना इमाम हुसैन के कर्बला में मृत्यु का वार्षिक मनाया जाता है। यह दिन इस्लाम के इतिहास में बहुत दुःखद माना जाता है। पहले दस दिन तक सामान्य रूप से सभी मुसलमानों के और शिया लोगों के लिए विशेष रूप से रोने का दिन होता है।[7] यह मुगल वादशाहो के समय में मनाया जाता था।[8] इसमें तालियों का जूलूस, सभायें और शोक प्रकट

---

1. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 306
2. ट्रेवेल्स आफ इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 196
3. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 30
5. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 349-50,वादशाहनामा,भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 226, 430, भाग-2 पृष्ठ 95, 191, 283, 332
6. अर्ली ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 318
7. रास, ई0 डेनियस- हिन्दू मुहम्मडन फीस्ट्स, कलकत्ता 1944 पृष्ठ 106
8. प्रसाद, महेश- इस्लामी त्योहार और उत्सव, वनारस (एन0डी0), पृष्ठ 40

किया जाता था तथा पूरे देश में दान दिया जाता था। औरंगजेव जलूसों का निकलना बन्द करवा दिये थे।[1]

ईद मिलाद :-

रबी-उल-अब्बल महीने के ग्यारहवें दिन पैगम्बर का यह त्योहार ईद मिलाद[2] बड़े जश्न के साथ दरबार में मनाया जाता था। जिसमें पैगम्बर के जीवन के ऊपर विशेष रूप से प्रवचन किया जाता था। सैयद लोग विद्वानों और सन्तो की एक सभा आगरे के महल में आयोजित करते थे। उस दिन शाहजहाँ गद्‌दी छोड़कर कारपेट पर बैठते थे। लोग कुरान पढ़ते थे, गुलाब जल छिड़का जाता था, हलवा और मिठाई वाँटी जाती थी। इस अवसर पर शाहजहाँ बारह हजार रूपया दान में देते थे।[3]

अन्य त्योहार :-

पैगम्बर के जन्म और मृत्यु के यादगार में रबी-उल-अब्बल महीने के बारहवे दिन बारावफात[4] मुसलमानों का एक प्रसिद्ध त्योहार मनाया जाता था। इन उपरोक्त त्योहारों के अतिरिक्त आखिरी चहार शम्बा, चेहल्लुम इत्यादि भी मनाया जाता था।[5]

-: हिन्दू त्योहार :-

मुस्लिम त्योंहारों की तुलना में हिन्दू त्योंहार संख्या में अधिक थे। यह हिन्दू त्योहार प्राचीन कथाओं के साथ विभिन्न ऋतुओं से भी समबन्धित हुआ करते थे।[6]

---

1. हिस्ट्री आफ औरंगजेब, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 91
2. बादशाहनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 230-31
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दिन मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 101-102
4 हिन्दू मुहम्मडन फीस्ट्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 98
5. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 106
6. अशरफ, के0एम0- लाइफ एण्ड कंडीशन आफ दि पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान पृष्ठ 202

बसन्त पंचमी :-

मुगल दरबार में बसन्त पंचमी माघ[1] महीने मे बसन्त ऋतु के आने का सूचक माना जाता था। हिन्दू लोग पूरे देश मे बड़े उत्साह के साथ इस उत्सव को मनाते थे। सरस्वती जो विद्या और कला की देवी मानी जाती थी उनकी पूजा की जाती थी।[2] बसन्त पंचमी का समारोह बसन्त के स्वागत में सम्पन्न होता था। इस दिन से यह प्रारम्भ होकर सम्पूर्ण बसन्त में गाने और प्रसन्न होने का कार्यक्रम चलता था।[3]

इस प्रकार बसन्त पंचमी से शुरू होने बाले और होली के समय खत्म होने बाले आयोजनों के क्रम में कृष्ण भक्तों ने प्रिया प्रियतम की लीला में डोल को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। कृष्णदास ने केशर और गुलाव से भीगें तथा चौवा से सुवासित वस्त्रो से अलंकृत राधा कृष्ण के "डौल" झूलने का उल्लेख किया है।[4]

होली :-

होली हिन्दूओं[5] का एक बहुत प्राचीन त्योंहार है। इसमें लोग लोकप्रिय ढंग से संगीत और अन्य प्रकार से खुशियां मनाते थे। रंग फेकना भी विशेष आनन्द का साधन था।[6] इसे शुद्रों का त्योहार बताया जाता है। इसकी शुरूआत माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी अर्थात बसन्त पंचमी से माना जाता था, किन्तु उत्सव का रूप इसे फागुन की पूर्णिमा को दिया जाता था। यह

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 317-21
2. शुक्ल, राम चन्द- मलिक मुहम्मद जायसी ग्रंन्थावली (हिन्दी) पृष्ठ 90-92
3. गीतावली, पूर्वोद्धृत, उत्तर काण्ड, पद-2
4. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 408
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 321, भाग-2, पृष्ठ 173
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 95-96

भारत के विभिन्न भागों में होली, होला, होलिका, होलाका आदि नामों से प्रसिद्ध है।[1]

संसार के दूसरे देशों में भी नई फसल तैयार होने के उपलक्ष में इसी प्रकार का त्योहार अपने अपने ढंग से मनाया जाता था।[2] खरीफ की फसल के पकने के साथ ही साथ अत्यन्त उत्साह पूर्वक रंग से इस त्योहार को मनाते थे। ऐसा यह सम्भव है कि अन्य देशो की भांति यहाँ भी इसका सम्बन्ध पहले कृषकों की प्रसन्नता की अभिव्यक्ति से रहा हो। होली के हुड़दंगो से इसकी पुष्टि मानी जाती है। हिन्दू जनता और राजे महाराजे केवल इसे धूमधाम से नही मनाते थे, बल्कि औरंगजेव के परवर्ती मुगल शासक राजमहलों में इसका उच्च स्तर पर आयोजन करते थे। मुहम्मद शाह तो इसमें खुले आम सक्रिय रूप से भाग लेते थे। उसकी होरी विषयक कुछ रचनाएं भी प्राप्त हुई है। एक पद है-

होरी की ऋतु आई सखी री,
चलो पिया पे खेलन होरी,
अवीर गुलाल उड़ावत आवत,
सिर पर गागर रस की भरी री।
"मुहम्मद शाह" सब हिल मिल,
खेले मुख पर अबीर मलोरी।।[3]

यह प्रसिद्ध है कि इस युग के रसिक भक्त "रूपसखी" ने अपने समकालीन दिल्ली पति की आज्ञा के अनुसार "होरी" का आयोजन राजप्रसाद में किया था।[4]

---

1. तोष कवि- सुधा निधि, वर्ष-1, संख्या 9, पृष्ठ 552
2. शर्मा, श्रवाण लाल- ब्रतोत्सव चन्द्रिका, पृष्ठ 230-31
3. व्यास, कृष्णानन्द- संगीत राग कल्पद्रुम, दूसरा भाग, पृष्ठ 304
4. डा० सिंह, भगवती प्रसाद- राम भक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृष्ठ 127

युगल प्रिया जी ने इस घटना की ओर संकेत करते हुए यह लिखा है-

रूप सखी श्री रूप लाल जुग रूप लुभाने।
दिल्ली पति दीवान सरस रस रसिक न जाने।।
बाल अली की कृपाल हे मानसी प्रधानी।
शीशमहल प्रतिबिम्ब छाप दिल्ली पति जानी।।
दुति देह कलिजुग प्रवल, करि अवल सब जानही।
हो हा होरी हवे रही, रसिक सम्प्रदा मानही।।[1]

परवर्ती मुगल शासको का होरी के प्रति प्रेम उसकी लोकप्रियता का परिचायक है। यूरोपियन यात्री[2], जो मुगल दरबार में आये, बहुत विस्तृत रूप से वर्णन करते है। उनके वर्णन से यह पता चलता है कि यह उसकी तरह से मनाया जाता था जैसे वीसवीं सदी में मनाया जाता है।[3]

रक्षाबन्धन :-

श्रावण मास की पूर्णिमा के दिन रक्षा बन्धन[4] मनाया जाता था। रक्षा बन्धन ब्राह्मणों का सबसे बड़ा त्योंहार है। इस दिन वहन भाई के कलाई मे सिल्क या अच्छे किस्म की राखी बाँधती थीं। यह बुराइयों को दूर करने के लिए होता था।[5] भाई जिसे राखी बाँधा जाता था वह बहन के जीवन और सम्मान की रक्षा करता था। पुरोहित या शाही पुजारी अपने संरक्षकों के दाहिने हाथ में राखी बाँधते थे। यह रीति प्राचीन काल से चली आ रही थी जिसके गुणो की

---

1. जीवराम ''युगल प्रिया''- रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ 29
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 154;
   द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 58;
   ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 122-23
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूंरिग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 96
4. रक्शा- लिटरली प्रोटेक्शन, एण्ड बन्धन टाइंग
5. गुप्ता, आर0वी0, वी0ए0 हिन्दू हॉलीडेज, कलकत्ता 1919, पृष्ठ 178

चर्चा नही की जा सकती। जब कभी कोई स्त्री एक दूसरे व्यक्ति को राखी बाँधती थी, चाहें वह किसी भी जाति या धर्म का हो, वह उसका भाई हो जाता था और उसका यह नैतिक कर्तव्य होता था कि आवश्यकता पड़ने पर वह उसकी मदद करें।[1]

अकबर ने इसे एक राष्ट्रीय पर्व बना दिया था और वह अपने हाथ में राँखी वाँधवाते थे।[2] इस प्रकार का रिवाज प्रचलित हो गया था कि दरवारी लोग बादशाह के हाथ में राखी बाँधते थे जिसमें तमाम तरह की कीमती मोतियां और कीमती चीज लगी रहती थी।[3] जहाँगीर ने इसे फिर से आरम्भ किया था और इस प्रकार का आदेश दिया था कि हिन्दू अमीर लोग उसके हाथ में भी रांखी बाँधे।[4] राज्य के निकल जाने पर इन्द्राणी ने ब्राह्मणों से पुजा कराकर इद्र के हाथ में राखी वांधी थी, जिसके प्रभाव के कारण देवराज इन्द्र असुरों को पराजित करने में सफल हुये थे।[5] तभी से कल्याण कामना के लिए इसकी परम्परा चली आ रही है।

हिंडोल उत्सव :-

उस समय के बहुत से चित्रों में हिंडोल बने हुए उपलब्ध हैं। बर्षा ऋतु के आगमन पर हिडोलें का उत्सव मनाया जाता था। आलोच्यकाल के कवि व्रजवासी ने ग्रीष्म ऋतु के वीत जाने पर पावस ऋतु में ''हिडोल लीला'' का वर्णन करते हुए वताया है कि यमुना पुलिस पर राधा कृष्ण और सखियां विभिन्न प्रकार के वस्त्रों और आभूषणों की साज सज्जा के साथ हिंडोलें पर झूलती थी। कभी-कभी कृष्ण अकेले झूला करते थे और युवतियाँ मिलकर के

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 96-97
2. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 269
3. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 319
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 97
5. व्रतोत्सव चन्द्रिका, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 97 एवं 99

उत्सव गीत गाती थी। प्रायः वे युवतियों को झूले पर चढ़ाकर स्वयं झुलाया करते थे।[1] इस काल के अन्य प्रमुख कृष्ण भक्त कवियों में वृन्दावनदास[2] नागरीदास[3], ब्रजनिधि आदि ने भी इस उत्सव का वर्णन किया है।[4]

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी :-

भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। उस दिन ब्रत रखा जाता था और रात में जन्मोत्सव मनाया जाता था। यह परम्परा अब भी चली आ रही है। आलोच्चकाल के कवियों में कृष्ण भक्त कवियों ने विशेष रूचि के साथ इसका उल्लेख किया है। अष्टछाप कवियों ने भी इसका उल्लेख किया है।[5]

राधाष्टमी :-

ऐसा माना जाता है कि भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को राधा का अवतार हुआ था।[6] इसलिए उस दिन कृष्ण भक्त कवियों द्वारा विशेष उत्सव मनाया जाता था। आलोच्च युग के कवियों में अधिकांश लोग इस सम्बन्ध में मौन पाये जाते है। केवल अष्टछाप के कवियों ने राधाष्टमी अर्थात राधा के जन्मोत्सव का उल्लेख किया है।[7] कृष्णदास ने राधा का जन्मोत्सव और वर्षगांठ का वर्णन राधाष्टमी के प्रसंग में किया है।[8] अब भी कृष्ण भक्त कवियों में यह परम्परा प्रचलित है।

---

1. ब्रजविलास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 433-34
2. ब्रजप्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 10वी, लहरी छन्द 1-8
3. उत्सव माला (हिंडोल उत्सव) पूर्वोद्धृत पृष्ठ 1-4
4. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 271
5. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्याँकन, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 277, 278
6. परमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 164
7. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्याकन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278-80
8. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 255

वामन जयन्ती :-

भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की द्वादशी को वामन अवतार का समय माना जाता है।[1] यह त्योहार पूरे मुगल काल में मनाया जाता था और यह आज भी प्रचलित है।

सांझी :-

यह त्योहर भाद्रपद की पूर्णिमा को मनाया जाता था। इस दिन से सोलह दिनो तक इस उत्सव के कार्यक्रम में कृष्ण जन्म से लेकर कंसवध तक सम्पूर्ण लीलायें भिन्न-भिन्न रंगो से भूमि पर चित्रित की जाती थी। सूर ने राधा के फूल चुनने और सांझी पूजने का उल्लेख किया है।[2] कुछ लोगों ने राधा को सखियों के साथ बाग बगीचों में विभिन्न प्रकार के फूल एकत्र करने का उल्लेख किया है।

सांझी पूजने के लिए स्त्री को केशर और चंदन से लीप कर गौ के गोबर, फूल, नग आदि की सहायता से सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ग्रहादि बनाया जाता था और चतुर्दिक गुलाब जल छिड़क कर दीपक की पक्तियों को रखा जाता था।[3] इसके पश्चात सांझी की पूजा की जाती थी। पूजा के समय वहुत तरह के पकवानों का भोग लगाकर ध्यान किया जाता था और उसके वाद आचमन कराकर आरती उतारी जाती थी।[4] आरती के समय सखियां पुष्पांजलि के साथ मन में आराधना करती थी।[5] तथा बीन, मृदंग, वहुवारि आदि बाजे बजाती और

---

1. परमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 204,
   अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 274
2. परमानन्द सागर,पूर्वोद्धृत,अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्याँकन पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 288
3. व्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत 12वी लहरी, छन्द 52-56
4. वही, छन्द 59-62
5. वही, छन्द 59-62

गाती थी।[1] पूजा करनें के वाद वे परस्पर गले मिलती थी।[2] इस प्रकार से सोलह दिन तक सांझी खेलने तथा पूजने के बाद उसे सिखाने के लिए सरोवर ले जाती थी और गाती बजाती हुई उसे बिसर्जित करती थीं। अन्त में प्रसाद वितरण करने के पश्चात समूह के साथ घर लौट आती थी।[3]

दशहरा :-

आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी, भारत में बहुत पहले से विजय की सूचक मानी जाती थी। राम ने रावण जैसे दुर्जेय के उपर विजय प्राप्त की और कौरवों के उपर पाण्डवों की विजय एवं प्रचण्ड असुरों के उपर महाशक्ति दुर्गा की विजय इसी तिथि को मानी जाती थी। ऐसे महान पौराणिक विजयों से इसका सम्बन्ध होने के कारण इसका नाम विजयादशमी पड़ा।

इसके इसी महत्व के कारण शास्त्रकारों ने इस अवसर पर अनेक प्रकार की पूजा की विधियों को बनाया है। आज भी इसी तिथि को दशहरा मनाया जाता है।[4] इसका सम्बन्ध मुख्य रूप से क्षत्रियों से माना जाता है।[5] शास्त्रों में इस अवसर पर अश्व की पूजा करने एवं शस्त्र की पूजा करने का विधान है।[6] आज भी हिन्दुओं के प्रमुख त्योहारों के रूप में इसका प्रमुख स्थान है।

दशहरा मुगल दरबार में भी मनाया जाता था। उस दिन प्रातः काल सभी शाही हाथी, घोड़े जो अस्तबल में रहते थे उनको साफ करके अच्छे कपड़े पहनाकर बादशाह के सामने निरीक्षण के लिए लाया जाता था।[7] जहाँगीर के

---

1. उत्सव माला (सांझी उत्सव), पूर्वोद्धृत, छन्द 7
2. व्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत 12वीं लहरी, छन्द 65
3. वही, छन्द 84-86
4. व्रतोत्सव चन्द्रिका, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 155
5. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यॉकन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 292
6. सुधा निधि, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 232 एवं 241
7. हिन्दू हालीडेज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 185-88

समय में यह त्योंहार मनाया जाता था। घोड़ो को सजाकर और हाथियों को लाया जाता था।[1] उस दिन बादशाह को भेटं दिया जाता था और बादशाह भी लोगो को सम्मान देते थे।

दशहरा पूजन के बाद लोग परिवार के साथ बैठकर इस अवसर पर विशेष रूप से बनाया गया भोजन करते थे।[2] वे नगर तथा देश का कुशल मनाते थे।[3] दशहरे के दिन नीलकंठ का दर्शन आज की तरह से शुभ समझा जाता था।[4] इस दिन बहने भाई के माथें पर रोरी, अक्षत के साथ जौ के अंकुर का तिलक लगाकर दक्षिणा लेती थी। वृन्दावन दास ने दशहरा के दिन राधा द्वारा अपने भाई श्रीदामा के माथे पर जौ के साथ रोरी और अक्षत लगाकर दक्षिणा लिये जाने का वर्णन किया है।[5]

धनतेरस :-

धनतेरस दीपावली के आयोजन एवं तैयारी का उत्सव है कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को नयी-नयी वस्तुएं खरीदने, घर सजाने और इस प्रकार से दीपावली के स्वागत की तैयारी की जाती है। उस दिन "धन-धोवन" स्त्री के सोलह श्रृगार, ब्राह्मण वुलाकर बेद-विधि से पूजा, धृतदीप एवं नैवेद्य दान पूजन आदि का वर्णन कवियों ने किया है।[6]

दीपावली :-

कार्तिक के अमावश्या के दिन दीपावली चिरागों के कतार से मनाये जाने की प्रथा थी।[7] लक्ष्मी जो धन की और उन्नति की देवी मानी जाती थी

---

1. तुजुक-ए-जहागीरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 245
2. व्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, 32वी लहरी, छन्द 93-94
3. वही, छन्द 98
4. लाला भगवान दीन-विहारी सतसई, छन्द 725
5. व्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, 31वी लहरी, छन्द 41-49
6. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्याकन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 196
7. हिन्दू हॉलीडेज,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 42,बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए0डी0, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 185-86

उनकी पूजा की जाती थी और फिर उसके बाद रोशनी की जाती थी। कभी-कभी अतिश बाजियां छोड़ी जाती थी और फिर उसके बाद मिठाई और भेंट दिया जाता था।[1] इस दिन लोग जूआ भी खेलते थे[2] और रात भर जागते भी थे।

अकबर सिर्फ त्योंहार में दिलचस्पी लेते थे जब कि जहाँगीर के समय में दो या तीन दिन तक जूआ खेला जाता था।[3] व्रज में गोवर्धन पर्वत दीप मालाओं से अलंकृत किया जाता था[4] और दीप जलाने के पश्चात रात्रि हटरी की पूजा शास्त्रीय विधि से की जाती थी। इस अवसर पर ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया जाता था। वे पूजा के समय वेद पाठ करते थे। पूजा की समाप्ति यजमान को आर्शिवाद देने के बाद होती थी। इसके बाद उन्हे दक्षिणा देकर संतुष्ट किया जाता था। इस अवसर पर जो भी एकत्रित रहता था उसको पकवान वांटा जाता था तथा घर-घर बाटने की प्रथा थी।[5] मन्त्र जगाने की प्रथा प्रचलित थी। सुन्दरदास ने मंत्रमादियों के मन्त्र जगाने का वर्णन[6] किया है।

गोवर्धन पूजा :-

दीपावली के दूसरे अर्थात कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को कृष्ण ने देवराज इन्द्र का दर्प-दमन करके गोवर्धन की सहायता के कारण व्रज की रक्षा की थी उसी के उपलक्ष्य में गोवर्धन पूजा का प्रवर्तन किया जाता था।[7] अनाजों के ढेर से गोवर्धन पर्वत बनाकर अनेक पकवानों से उसकी और देव पूजा होती थी।

---

1. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेटीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 309
2. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 321
3. वंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 185-86
4. ब्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, 14वी लहरी, छन्द 43
5. ब्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, 14वीं लहरी छन्द 52-58
6. सुन्दरदास ग्रन्थवली- सवैया, प्रकाशन राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता, पृष्ठ 610, छन्द 338-39
7. सुधा निधि, पूर्वाद्धृत, पृष्ठ 338-58

अन्नकूट का अर्थ होता है अन्न का पर्वत। सम्पूर्ण व्रज का यह महत्वपूर्ण उत्सव था इस दिन गायों को नहलाकर, जेवर पहनाने के बाद उन्हें भोजन कराकर उनकी पूजा की जाती थी। अकबर भी इस उत्सव में भाग लेते थें।[1]

भैंयादूज :-

पौराणिक उल्लेखों के अनुसार यमराज ने अपनी बहन यमुना के वहां जाकर उसे यह वरदान दिया था कि कार्तिक शुक्ल-द्वितीया को वहन के घर जाने वाला और भोजन करने वाला भाई यम के पाश से मुक्त रहता है। इस लिए इसे यम अथवा भातृ द्वितीया कहा जाता है।[2] आलोच्य युग के कवियों गोविन्द स्वामी ने इसका उल्लेख किया है। वहन सुभद्रा द्वारा कृष्ण बलराम का तिलक लगाकर "खिचरी" भात खिलाने, खीर देने और आशीष देने का उल्लेख किया है।[3]

इस दिन बहनें भाइयों की मंगल कामना के लिए व्रत रहती थीं और उन्हे मिठाइयां खिलाती थी।[4] आलोच्यकाल के कवि चाचा वृन्दावनदास ने भैया दोज का उल्लेख करते हुए लिखा है।[5] कि इस अवसर पर बहनें भाई निमंत्रित कर विभिन्न प्रकार के पकवान खिलाती थी।[6] भोजन के उपरान्त भाई का सम्मान कर बहनें मान देती और थाल में अक्षत और रोरी रखकर उसके माथे पर तिलक लगाती थी।[7] तिलक लगाने के बाद भाई बहन से प्रिय बस्तु मांगने के लिए कहता था। चाचा वृन्दावनदास ने इस अवसर पर राधा द्वारा अपने भाई के कहने पर मदनी गाय के लिए मडतूल और मोतीयूक्त "लूमरि" मांगने

---

1. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 217
2. व्रतोत्सव चन्द्रिका, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 174
3. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 306
4. सुधानिधि, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 340-41; व्रतोत्सव चन्द्रिका पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 174
5. ब्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 15वी लहरी, छन्द 15-16
6. वही, छन्द 13-14
7. वही, छन्द 33-34

का वर्णन किया है।[1]

शिवरात्रि :-

फागुन के चतुर्दशी के दिन भगवान शिव का पर्व शिवरात्रि मनाया जाता था।[2] अपने पापों को धोने के लिए, जीवन में अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, भगवान शिव से मिलने के लिए, या मरने के वाद मुक्ति के लिए यह पर्व मनाया जाता था। इस दिन लोग व्रत रखते थे, जागते थे और शिवलिंग की पूजा करते थे।[3]

अकबर शिवरात्रि के दिन राज्य के सन्तों की सभा करता था और सन्तो के साथ खाना खाता था। ये लोग वादशाह को आशिर्वाद देते थे कि उनकी जिन्दगी दुगनी और तिगुनी हो जाय। जहाँगीर भी इस उत्सव की चर्चा करते है।[4]

रामनवमी :-

रामनवमी वैष्णव लोगो का सबसे महत्वपूर्ण उत्सव है। राम का जन्म चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की नवमी को हुआ था।[5] उत्तरी भारत में मर्यादा पुरूषोत्तम राम के जन्म का उत्सव धूमधाम से मनाया जाता था, विशेष रूप से अयोध्या में मनाया जाता था।

गनगौर :-

चैत्र के शुक्ल पक्ष की तृतीया को यह त्योहार स्त्रियों द्वारा मनाया था।[6] लड़किया सुन्दर एवं अपने मन के अनुरूप पति पाने की कामना से गौरी

---

1. व्रज प्रेमानन्द सागर, पूर्वोद्धृत, 15वी लहरी, छन्द 40-42
2. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 99
3. वही, पृष्ठ 99
4. अइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 210
5. रामचरित मानस, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 192; नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ डयूरिंग मुगल पीरियड, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 67
6. व्रतोत्सव चन्द्रिका, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 5

की पूजा करती थी।[1] उस दिन स्त्रियां कुंमुक, अगरू, कपूर, रत्न, वस्त्र, अलंकार आदि से सुसज्जित होकर रात्रि में जागरण करने, महादेव गौरी या गौरा की पूजा करने और प्रातः काल व्राह्मणों को दक्षिणा देकर अन्न ग्रहण करने का विधान माना है।[2]

मीरा ने रंगीले गनगौर का वर्णन किया है। गंग के वर्णन से पता चलता है कि विवाहित स्त्रियां भी अपने पति की कल्याण कामना के लिए गनगौर का पूजन करती थी।[3] कृष्णदास ने तीज पर राधा का कृष्ण के लिए गनगौर पूजने का उल्लेख किया है।

रथयात्रा :-

अषांढ़ मास के शुक्ल पक्ष को द्वितीया को इस उत्सव के मनायें जाने का वर्णन सूर ने किया है।[4] कृष्णदास ने प्रिया प्रियतम के रथारोहण[5] तथा परमानन्द दास, कुभनदास, चर्तुभुजदास आदि ने विविध श्रृंगार से सज्जित कृष्ण के रथ यात्रा का उल्लेख किया है।[6] यह केवल कृष्ण भक्तों का त्योंहार माना जाता था। वर्नियर ने इस उत्सव का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है और वह लिखते हैं कि यह उत्सव आठ या नौ दिन तक मनाया जाता था और वहुत अधिक संख्या में लोग इसमें भाग लेते थे।[7]

अन्य त्योहर :-

इस उपरोक्त त्योहारों के अतिरिक्त चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहण के अवसर पर गंगा स्नान तथा उपासना की जाती थी।

1. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 767
2. व्रतोत्सव चन्द्रिका, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 5
3. गंगकवित्त, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 114
4. पारीख, द्वाराका प्रसाद, सूर निर्णय, पृष्ठ 229
5. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 422
6. अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्याकन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 274,275,276
7. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 304-306

पंचम अध्याय

सामाजिक व्यवहार एवं शिष्टाचार

पंचम अध्याय

सामाजिक व्यवहार एवं शिष्टाचार

मनुष्य ज्यों-ज्यों सभ्य और सुसंस्कृत होता जाता है त्यों-त्यों उसके आचार भी शिष्ट होते जाते हैं। इसीलिए सभ्य समाज में परम्परागत आचरण सम्बन्धी आदेशों को शिष्टाचार कहा जाता है। बातचीत करना, उठना, बैठना, खाना, पीना, बस्त्र आदि पहनना, स्वागत सत्यकार करना, स्नेह प्रकट करना आदि समाज में सभ्य एवं सुसंस्कृत होने के कारण माने जाते हैं।

शिष्टाचार शील और सौजन्य का क्रियात्मक रूप माना जाता है। इसे हम सुसंस्कृत समाज की कसौटी कह सकते है। मनुष्य के शील और उसके व्यवहार से ही उसके कुल और शील की परख की जाती है और उसके व्यक्तित्व का स्थायी रूप से प्रभाव उसके सम्पर्क में आने वाले लोगो के हृदय पर अंकित हो जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी शिष्टाचार को संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग माना है।[1] भारतीय समाज में एक दूसरे के यहाँ सामाजिक ढंग से प्रचलित नहीं था।[2] इसका मुख्य कारण जाति-व्यवस्था था। जाति प्रथा के कारण जीवन का दृष्टिकोंण वैयत्तिक हो गया था और लोग केवल अपने व्यक्तिगत सुख की ही कामना किया करते थें।

---

1. इलियट,टी.एस.- नोट्स टुवर्डस दि डिफिनीशन ऑफ कल्चर,लन्दन 1948, पृष्ठ 21
2. ज.रा.ए.सा.ब., पूर्वोद्धृत, न्यू सीरिज, भाग-1, 1913, पृष्ठ 5

उस समय स्त्रियां न तो पुरूषों के सामने ही जाती थी और न ही उनसे वातचीत करती थी। पुरूष लोग गाँव में चौपाल पर अपने दोस्तों से मिलते थे लेकिन स्त्रियों को ऐसा अवसर कभी नही मिलता था और न ही उनके पास समय ही होता था कि वे अपने स्त्री दोस्तो के यहां जा सकें।[1] शहरों में पुरूष लोग अपने काम से एक दूसरे से मिलते थे और आवश्यक वातों पर एक दूसरें से वातचीत भी करते थे।[2]

मुसलमानों के शासन काल में पर्दा होने के वजह से स्त्रियां एक दूसरे से नहीं मिलती थी। केवल जन्मोत्सव, शादी विवाह और अन्तयेष्टि संस्कार में लोग एक दूसरे से मिलते थे।[3]

अतिथि सत्कार :-

मुगल काल में मेहमानों का स्वागत बड़े व्यवहारिक ढंग से किया जाता था। मकान का मालिक लोगो से फाटक पर ही मिलता था।[4] मकान के अन्दर जाने के पहले जूते को उतार दिया जाता था।[5] यदि वह व्यक्ति बड़ा या आध्यात्मिक होता था तो उसके पैरों को पानी, सन्दल, फूल, पान व अक्षत से धोकर घर के अन्दर ले जाया जाता था।[6] यदि उसके आने की सूचना पहले से नहीं मिलती थी तब भी घर के प्राणी लोग अपनी कुर्सी पर से उठकर उसका स्वागत करते थे और फिर उसके बाद उसे अपने ड्राइंग रूम में ले जाते थे। धनी परिवारों में ड्राइंग रूम कारपेट इत्यादि से सजा रहता था।[7] साधारण परिवार

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 52
2. वही, पृष्ठ 52
3. वही, पृष्ठ 52
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 280
5. वही, पृष्ठ 280; स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 39
6. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 381
   स्टोरिया दो मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 38
7. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 380

के लोग चटाई या चारपाई से काम चला लेते थे।[1] कुर्सी से आराम नही मिलता था इस कारण इसका इस्तेमाल बहुत कम होता था।[2] कोई भी पुरूष अपने पैरों को इस ढंग से नहीं फैलाता था कि कोई बाहरी उसके पैरों को देख सके। यह आचार के विरूद्ध माना जाता था।[3]

अमीर तथा सूबेदार लोग अपने दरबार में या दीवाने खाने में मेहमानों का स्वांगत करते थे।[4] उनके यहाँ आने वाले लोग अपनी अपनी श्रेणी के अनुसार ही स्थान ग्रहण करते थे। नये आगन्तुकों को आने के पहले इजाजत लेना पड़ता था और काम हो जाने पर उन्हें लौट जाना पड़ता था।[5] केवल मित्र लोग ही देर तक बैठ सकते थे।

हिन्दू धर्म में अतिथि को साक्षात नारायण का स्वरूप माना है। अतिथि चाहे जिस भी वर्ग का हो, वह आराध्य माना जाता है और आराध्य रूप में ही उसकी सेवा करनी चाहिए जिस घर में अतिथि का स्वागत नहीं किया जाता वह सर्प के आवास की भांति त्याज्य एवं घृणित होता है।[6] इस प्रकार भारतीय समाज में अतिथि सत्कार को ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

राजदूत एवं शासक का स्वागत :-

राजदूतों का स्वागत करने के लिए अमीरो को भेजा जाता था और वह बादशाह की तरफ से खिलअत प्रदान करता था।[7] कपड़ा में लपेटा हुआ अपने बादशाह की भेजी हुयीं चीजों को भी राजदूत देता था। फारस के राजदूतों के

---

1. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स ऑफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 27
2. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 33
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चूरी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 280
4. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 64
5. वही, पृष्ठ 64
6. कल्याण, हिन्दू संस्कृति अंक, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 510
7. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55

साथ विशेष सहानुभूति रखी जाती थी।[1] कुछ राजदूतों का स्वागत बादशाह अपने हाल में करते थे।[2] एक विदेशी शासक का बड़े सजावट के साथ स्वागत किया जाता था। अकबर भी राजा भगवानदास को नील नदी के पास भेज दिया था ताकि वह बादख्शा के शासक मिर्जा सुलेमान का स्वागत आसानी से कर सकें।

इसी प्रकार से अवुल-फजल ने भी सिन्ध के शासक मुहम्मद जानी वेग का भी स्वागत किया था। अलीमर्दन खाँ ने बदख्शा और बल्ख के शासक खूसरू सुल्तान का भी स्वागत किया था।[3]

नजराना :-

जब भी कोई बादशाह, राजकुमार, सूवेदार या अमीर से मिलने जाता था तो वह उसे भेंट स्वरूप कुछ देता था।[4] बड़े लोगों को उपहार न देना अपमानजनक समझा जाता था।[5] जो भेंट अमीरों को देने के लिए होता था वह बहुत ज्यादा कीमती नहीं होता था और जो भेंट शासक लोगों को देने के लिए होता था उसमें बहुत ही कीमती चीजें सम्मलित थी।[6] टैवर्नियर ने औरंगजेब को भेंट स्वरूप बड़ी ही कीमती चीजें प्रदान की थी।[7] इस भेट को नजराना कहा जाता था और इस नजराने को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता था।

मेन्डेलस्लों ने यूरोप वालों का ध्यान आकर्षित किया और यह वताया

---

1. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 119-20; ज.इ.हि.,भाग-4,पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 65
2. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55
3. वही, पृष्ठ 55
4. ए न्यू एकाउन्ट आफ दि ईस्ट इंडिज, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 119 स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 344-52
5. वही, पृष्ठ 119
6. ट्रेवेलस इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 114
7. ज.इ.हि., भाग-5 पूर्वोद्धृत पृष्ठ 219

कि भारतवासी सुसभ्य नहीं होते हैं बल्कि भारतवासी अधिक सभ्य और व्यवहारिक होते है।[1] थेवेनाट ने फ्रेन्च ईस्ट इण्डिया कम्पन्नी के दूतो के अनभिज्ञता पर बहुत ज्यादा आश्चर्य प्रकट किया था कि बनिया लोगों ने जब उसे तीस रूपयें भेंट किए, तब उसने उन्हें अस्वीकार कर दिया और उसने यह सोंचा कि यह उसको भिक्षा स्वरूप दिया जा रहा है।[2] थेवेनाट इस भारतीय परम्परा से परिचित नहीं थे और वह लिखते हैं कि उसको रूपया स्वीकार कर लेना चाहिए था या फिर उसे लेकर उन्ही को फिर से वापस कर देते।[3]

भारतीयों की शालीनता :-

विदेशी यात्रियों ने भारतीय ढंग से बातचीत करने की बहुत ज्यादा प्रशंसा की है।[4] बे बड़े ही विनम्र, व्यवहारिक और सौम्य होते थे।[5] मित्र लोग एक दूसरे का सम्मान करते थे।[6] बड़ो से बात करते समय टोपी पहनते थे, क्योकि सर का खुला रहना[7] बड़ो का अपमान करना माना जाता था। वे लोग बड़े लोगों की बातों का खण्डन नहीं करते थे और न वे उसके बारे में कोई पुष्टि ही चहते थे।[8] यहा तक कि वे बड़ों के सामने बैठते तक नहीं थे। धार्मिक

1. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 33
2. ट्रेवेल्स,भाग-2,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 224; ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 100
3. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 57
4. दि एम्पायर ऑफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 91
5. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 64; ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 231
6. आर्मे आर- हिस्टारिकल फ्रेग्मेण्टस आफ दी मुगल एम्पायर लन्दन, 1805, पृष्ठ 426
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 39
8. हिस्टारिकल फ्रेग्मेन्ट्स आफ दि मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 426

गुरू ब्राह्मण[1] और काजी लोगों का विशेष रूप से आदर किया जाता था। अकबर ने खड़े होकर संत दादू का स्वागत किया था।[2]

औरंगजेव यह सुनकर बहुत ज्यादा क्रोधित हुआ कि बंगाल के गर्वनर इब्राहिम खाँ काँच पर बैठते थे जबकि काजी लोग और कानून के ज्ञाता लोग जमीन पर बैठते थे।[3] बाबर पठानों को बहुत असभ्य कहता था और उसने एक उदाहरण प्रस्तुत किया है कि बाइबन उनका सम्मान करता था जबकि दिलावर खाँ ऐसा नही करता था।[4]

दरबारी शिष्टाचार :-

दरबार में जिस प्रकार से उपस्थित होकर सलाम करें और व्यवहार करें, इसके लिए भी कुछ आवश्यक नियम बने हुए थे।[5] प्रत्येक अमीर को दो बार दरबार में आना पड़ता था।[6] सामान्य नियमों के अनुसार बड़े-बड़े अमीरों को छोड़कर कोई भी दरबार में बैठने का साहस नहीं कर सकता था। राज्य के बड़े-बड़े व्यक्ति, तथा विदेशो से आये हुए राजदूत लोग एवं राजकुमार भी इस नियम का पालन करते थे। जब राजदूत सर टामस रो ने दरबार में बैठने के लिए कुर्सी मांगी तो उसे यह बताया गया कि दरबार में कोई बैठ नहीं सकता है।[7] राजकुमार लोग राजगद्दी से कुछ दूर पर खड़े होते थे। जो बहुत ज्यादा

---

1. हिस्टारिकल फ्रेग्मेन्ट्स आफ दि मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 432, 434
2. ओर, डव्लू.जी.- ए सिक्सटिन्थ सेन्चुरी इण्डियन मिस्टिक्स दादू दयाल एण्ड हिज फालोअरर्स पृष्ठ 35
3. एनकडोटस आफ औरंगजेव एण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 118
4. बाबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 466
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 168-69
6. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 114-15; ज.इ.हि. भाग-4, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 59
7. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 60

विश्वास पात्र होता था। उसे चाँदी की रेलिंग के अन्दर खड़ा किया जाता था। तथा लकड़ी के घेरे के अन्दर मनसबदार लोग खड़े होते थे।[1] कोई भी व्यक्ति दरबार को छोड़कर नही जा सकता था जब तक कि बादशाह वहाँ से न चले जाये।

बादशाह को हजरत सलामत किब्लादीन वदुनिया किब्ला-ए-दीन-जहाँन आलम पनाह इत्यादि कहा जाता था।[2] औरंगजेब को पीर-ए-दास्तगीर कहा जाता था।[3] बादशाह बड़े गम्भीर मुद्रा में उत्तर देते थे।[4] उनके दरबार में कोई भी व्यक्ति शराब पीकर अन्दर नहीं जा सकता था जो ऐसा करता था उसको कठोर दण्ड दिया जाता था।[5]

पान :-

आगन्तुकों का स्वागत लकड़ी के ट्रे[6] में पान रखकर किया जाता था। पान देने के पश्चात आगन्तुक लोग चले जाते थे।[7] जब बादशाह पान देते थे तो वह सम्मान के लिए माना जाता था उसको बादशाह के सामने ही खाना पड़ता था।[8] सबसे ज्यादा सम्मान इसमें होता था कि बादशाह के द्वारा आधे चबाए हुए पान को खा ले। बादशाह कभी-कभी जागीर खिल्लत या अन्य उपहार आगन्तुकों को देते थे।

---

1. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 115; अकवरनामा अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 358
2. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 346
3. वही, पृष्ठ 346
4. वही, पृष्ठ 401
5. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 529
6. द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इंडीज, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 64
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 63; ट्रेवेल्स इन इण्डिया भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 239
8. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 13

नमस्कार :-

हिन्दू और मुसलमान लोंग अलग-अलग तरीकों से मित्रों, सम्बन्धियों और बड़े लोगों को सलाम करते थे। मध्यकालीन युग में हाथ से हाथ मिलाने की प्रथा नहीं थी। मनुची ने मुगल काल में पॉच प्रकार के नमस्कार की चर्चा की है।[1] बहुत से विदेशी यात्री इस बात की चर्चा करते है कि अपने बराबरी के लोगों को राम-राम कहा जाता था।[2] वे लोंग हाथ जोड़कर[3] के पेट तक लाकर के अपने बड़े को नमस्कार करते थे। कभी-कभी वे गले मिल करके एक दूसरे का सम्मान करते थे।[4] गर्वनर, मन्त्री व सेनापति को नमस्कार हाथों को जोड़कर सिर पर लगाकर किया जाता था।[5] बड़े लोगों के प्रति पिता, माता व आध्यात्मिक गुरू के प्रति सम्मान किया जाता था। बड़ो के सामने छोटे लोग झुकते थे और उनके पैरों को छूकर हाथ को सिर से लगाते थें।[6] वे अपने गुरू के सामने साष्टांग दण्डवत करते थे।[7] सभी लोग वादशाह को इसी प्रकार से नमस्कार करते थे।[8] केवल ब्राह्मण लोग हाथ जोड़ लेते थे।[9] सिख धर्म के जन्मदाता गुरूनानक अपने शिष्यों को ये उपदेश देते थे कि नमस्कार का उत्तर

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 37-38
2. लोक कार्टिने- फर्स्ट इग्लिश मैन इन इण्डिया, प्रकाशन जार्ज रोटलेज एण्ड सन्स, लन्दन 1931, पृष्ठ 105
3. दुबोइस (ब्यूचम)- हिन्दू मैनर्स कस्टम्स् एण्ड सेरीमनीज, आक्सफोर्ड 1906, भाग-1, पृष्ठ 329
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 38
5. वही, पृष्ठ 38
6. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 81
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 38
8. वही, पृष्ठ 38
9. वही, पृष्ठ 38

देते हुए सत्-करतार कहा जाता था।[1]

मुसलमानों के यहाँ अभिवान

मुसलमानो के यहाँ हर वर्गों में धार्मिक दृष्टि से सलाम करते समय 'अस्सलाम वाले कुम'[2] कहा जाता था और दूसरे लोग यह उत्तर देते थे 'वाले कुम अस्सलाम'।[3] मित्र लोग अपना दाहिना हाथ उठाकर नमस्ते करते थे।[4] और कभी-कभी वे एक दूसरे का हाथ पकड़कर नमस्ते करते थे।[5] कभी-कभी वे सिर व बदन को झुकाकर नमस्ते करते थे।[6] बड़े लोगो को नमस्ते करने के लिए दोनो क्रियाओं का करना वहुत जरूरी होता था।[7] बड़े लोगो को दाहिना हाथ सिर पर रखकर और बदन को झुकाकर नमस्ते किया जाता था।[8] उस समय ऐसी प्रथा थी कि यदि कोई छोटा व्यक्ति अपने घोड़े पर जा रहा है और उस रास्ते से कोई महान व्यक्ति गुजर रहा है तो छोटे व्यक्ति को अपने घोड़े से उतर जाना पड़ता था और बड़े व्यक्ति के गुजरने के बाद ही उसे जाना पड़ता था।[9] बड़े लोग छोटे लोगों का नमस्कार सिर हिला कर लेते थे।[10]

---

1. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 49
2. ए डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 49
3. "और तुमको भी शान्ति भी"
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 181; ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 183-84
5. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 81
6. दि वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 84 दि एम्पायर आफ दि ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 91
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 183, 84 स्टोरिया दी मोगोर भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 37
8. जहागीरर्स इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 67
9. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 195
10. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 234

अमीर लोग शाही घराने की स्त्रियों को देखकर अपने घोड़े से उतर कर उन्हे सलाम करते थे और वे एक पान के मिल जाने पर सिर को झुकाते थे और फिर चले जाते थे।[1]

कुरनीश एवं तसलीम :-

अवुल-फजल ने बादशाह को सलाम करने के लिए कुरनिश एवं तसलीम को बताया है।[2] कुरनिश[3] उसे कहा जाता है जिसमें दाहिने हाथ की हथेली से सिर पर नमस्कार करते थे और उसमें सिर भी झुका दिया जाता था।[4] तसलीम उसे कहा जाता था[5] जिसमें दाहिने हाथ का पिछला हिस्सा जमीन से छुला देते थे और फिर उसे उठा करके हाथ की गदेली से सिर के उपर लगाते थे।[6] ओविंग्टन लिखते हैं कि हाथ उठाते समय पहले उसे सीने से लगाकर तब उसे सिर पर लगाते थे।[7] डेलाबेले भी इसकी पुष्टि करते है।[8] बाबर ने लिखा है कि उस समय बादशाह के सामने तीन बार झुकने की प्रथा थी।[9] खास तौर से उस समय जब मनसब और जागीर मिलता था या उनके सम्मान के लिए उन्हें बस्त्र और हाथी घोड़ा मिलता था।[10]

अकबर ने ऐसा आदेश दिया कि तसलीम तीन बार किया जाय।[11]

---

1. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, 354
2. इस्लामिक कल्चर, अप्रैल 1934, पृष्ठ 434
3. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 167
4. वही, पृष्ठ 166
5. वही, पृष्ठ 158
6. वही, पृष्ठ 167; ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 38
7. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 183-84
8. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 38
9. बाबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 64
10. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 167
11. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 183-84

इस प्रकार से सलाम करने की प्रथा अकबर के समय में बादशाह के लिए निश्चित थी।[1] अमीरों के लिए तसलीम एक साधारण नमस्कार का तरीका बन गया था। औरंगजेव ने अप्रैल 1670 में इसे बन्द करके असलाम-आले कुम कर दिया।[2]

सिंजदा :-

अकबर ने सलाम करने का एक नया तरीका निकाला।[3] इसमें सिर को जमीन पर छुलाकर नमस्कार करते थे। अकबर ने दरबारे आम में इस प्रथा को बन्द कर दिया लेकिन व्यक्तिगत रूप से लोग इसका प्रयोग करते थे। यह प्रथा जहाँगीर के समय भी प्रचलित थी। खास तौर से उस मौके पर जब कि उनको बादशाह की तरफ से पुरस्कार या इज्जत दिया जाता था।[4]

जमीनबोस :-

सिंजदा आपत्ति जनक प्रतीत हुआ इसलिए शाहजहाँ ने एक नयी चीज निकाली जिसे जमीनवोस कहा जाता था या फिर उसे जमीन को चूमना कहा जाता था।[5] कुछ दिनों के बाद इसे बन्द कर दिया गया। अब पुराने तरह से सिर को झुकाकर चार बार नमस्कार किया जाता था।

बर्नियर लिखते हैं कि किसी प्रकार ये तमाम राजदूतों के द्वारा पालन किया जाता था। वे जब भी मुगल[6] दरबार में जाते थे तो फारस के राजदूत ऐंसा नही करते थे। जबकि शाहजहाँ उन्हें बार-बार निर्देश देता था।[7]औरंगजेब

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 67
2. वही, पृष्ठ 67
3. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 612
   ए डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 556
4. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 68
5. वही, पृष्ठ 68
6. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 117-204
7. वही, पृष्ठ 152

ने इस प्रथा को बन्द करवा दिया और उसने सलाम आले कुम लागू किया।[1] यदि कोई इसका विरोध करता था तो उसे दण्ड दिया जाता था। उत्तर मुगल काल मे भी तसलीम की प्रथा थी।

दान :-

दोनों सम्प्रदायों में[2] धर्म के अनुसार दान[3] लेने की प्रथा प्रचलित थी, मनु[4] और मुहम्मद[5] दोनों ही इसके नियम को बताते है कि इसके पालन करने के क्या गुण हैं। हिन्दू लोगो के यहां कीमती धातु, सोना, चॉदी, भूमि, सम्पत्ति, भवन ओर अर्थ दान करते थे।[6] मुसलमानों के यहॉ जकात में पांच चीजे दी जाती थीं। रूपया, मवेशी, अन्न, फल और सामान।[7] हिन्दुओं और मुसलमानों के यहां मन्दिरो[8] और मस्जिदो को बनवाना बहुत पुनीत समझा जाता था। मुगल काल में हिन्दू लोग दान में वहुत सी चीजें देते थे।

अबुल फजल ने इस बात की प्रशंसा की है कि भारतीय परम्परा में असहायों को दान देने की प्रथा प्रचलित थी।[9] जिसको आवश्यकता होती थी उसी को दान दिये जाते थे। मीरत-ए-अहमदी मे लिखा है कि लोग यथा शक्ति दान देते थे। साधुओं को गरीबो को, असहायों को और नगों को दान दिया जाता था। जो लोग दान नहीं देते थे उनका धन समाप्त हो जाता था।[10] हिन्दू लोंग चावल, गल्ला आदि दान में देते थे।[11] मुसलमान लोग कपड़े,कम्बल चद्दर और जूते

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69
2. हिन्दू और मुसलमान
3. ए-डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 50
4. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 305-07
5. ए-डिक्शेनरी आफ इस्लाम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 14, 50, 699
6. हिस्टारिकल फ्रेग्मेण्टस आफ दी मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 434
7. सोशल लाइफ डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 434
8. ज.इ.हि., भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 190-91
9. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 9
10. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 14
11. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69

दान में देते थे।[1]

हिन्दूओं के यहाँ दान :-

हिन्दू लोगो की दान शीलता के बारे में अनेक विदेशी यात्रियों ने वहुत ज्यादा प्रशंसा की है।[2] अलवरूनी लिखते है कि हिन्दू लोग नित्य दान देते थे।[3] और उनका विश्वास था कि इससे सभी पाप धुल जाते है।[4] ट्रेवर्नियर इसका पूष्टि करते है और ये लिखते है कि वे लोग यात्रियों को खुशी-खुशी खाने तथा पीने[5] की चीजें देते थे। गुरूनानक ने अपने यात्रा वर्णन में इसके बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किये है।[6] ब्राह्मण लोगों को विशेष रूप से दान दिया जाता था। ऐसा कहा जाता है कि तुकाराम ने ब्राह्मण के मांगने पर सब कुछ दान में दे दिया।[7] असहायों को धन दान में दिया जाता था।[8] विधवाओं और महात्माओं को भी दान दिया जाता था।

अवुल-फजल साधुओं के यहाँ रात में जाते थे और दान देते थे और जब वे धार्मिक यात्रा करते थे तो वे अधिक धन दान देते थे।[9] मुगल वादशाह लोग बहुत सा धन दान में देते थे। प्रायः दान इसलिए दिया जाता था कि वे बुरे दिन से बच सकें।

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 72
2. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 255; हिस्टारिकल फ्रेग्मेण्टस ऑफ दि मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 431
3. वही, पृष्ठ 434
4. वही, पृष्ठ 431
5. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 225
6. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 80
7. ज.रा.ए.सो., भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 16,23
8. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग 3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 52
9. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 244

यात्रियों के लिए सड़कों पर जल सुविधा :-

हिन्दू और मुसलमान लोग विशेष रूप से गर्मी के दिनों में सड़कों के किनारे जल पिलाने की व्यवस्था करते थे।[1] धनी लोग काफी पैसों को खर्च करके कुंआ खोदवातें थे,[2] वे लोग तालाब बनवाते थे।[3] और पानी को इकठ्ठा करते थे ताकि जब भी पानी की कमी हो उसे खर्च किया जाय। जहाँगीर ने अपने शासन काल के चौदहवें वर्ष में आगरा से दिल्ली तक हर तीन कोस पर कुंआ खोदवाया था।[4] बर्नियर[5] और थेवेनाट[6] इन कुओं की चर्चा करते थे। बहुत से यात्रियों ने सूरत में गोपी तालाब की चर्चा की है।[7]

यात्रियों के लिए विश्राम गृह :-

लखनऊ के अब्दुर रहीम की ब्राह्मण स्त्री ने सराय, तालाब एवं विश्रामगृह बनवाया तथा बगीचा भी लगवाया। धनी हिन्दू और मुसलमान लोंग सराय बनवाते थे। यात्रियों की सुविधा के लिए हर महत्वपूर्ण जगहों पर दान देने की व्यवस्था करते थे।[8] फलों के पेड़ सड़को के किनारे पर लगाए जाते थे। जिससे जनता लाभान्वित हो सके।[9] धार्मिक कामों को करने के लिए तीन गज

---

1. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 325;
   स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 214
2. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 325
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 242
4. ज.इ.हि. भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 190-91; ज.रा.ए.सो., भाग-3, पृष्ठ 16
5. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 284
6. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 42-43
7. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 32;
   बाबरनामा अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 204, 212, 219
8. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 242;
   ट्रेबेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 233
9. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 353

लम्वा प्लेटफार्म बनवाते थे जहां पर थके हुए लोग बैठ करके आराम करते थे।[1] साधुओं और महात्माओं के लिए पका हुआ खाना रखा रहता था।

मासिर-उल-उमरा के लेखक इस बात की तारीफ करते है कि अकबर के दरबार में फरीद मुर्तजा खां एक बहुत बड़े दानबीर थे। उन्होने कई एक सरायों तथा मस्जिदों को बनवाया तथा वे हमेशा एक हजार लोगों को खाना खिलवाते थे।[2] कम्भमीर में जब बहुत घनघोर अकाल पड़ा तो नवाजीश खाँ ने सोने, चाँदी की तश्तरियां बेच करके गरीबों को दान दिया।[3]

चिड़ियों एवं पशुओं को दान :-

हिन्दू लोग जो पुनर्जन्म में विश्वास करते थे।[4] वे चिड़ियों एवं पशुओं को भी दान देते थे।[5] दक्षिणी भारत में ऐसे अस्पताल बनवाए जाते थे।[6] जिसमें उनका उपचार भी होता था। बनिया लोग चीटियों को चीनी और आटा खिलाते थे।[7] अच्छे लोग गाय, भैंस, घोड़ा ऊट, बकरा और भेड़ के लिए अस्पताल बनवाते थे।

जनता के लिए अस्पताल:-

मुगलकाल के अभिलेखों से सार्वजनिक अस्पतालों की चर्चा मिलती है।[8]

---

1. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 81
2. सोशल लाइफ डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 77,78
3. वही, पृष्ठ 78
4. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 58
5. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 216
6. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 390
7. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 216
   ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 30
   द वायेजेज आफ टू दि ईस्ट इंडीज, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 254
8. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 79

जहाँगीर ने यह आदेश दिया था कि राज्य के बड़े-बड़े नगरो में अस्पताल बनवाएं जाए और डाक्टर लोग गरीब लोगों को उपचार करें और इसका खर्चा शाही खजाने से दिया जाए।[1] मिरत-ए-अहमदी में इसका बिस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। राज्य की ओर से दान देने के लिए एक कोश बना हुआ था। इसमें उन लोगो की सम्पत्ति रहती थी जो सन्तान हीन मर जाते थे या अमीरों की सम्पत्ति रहती थी जिनको राज्य ले लेती थी। यह धन केवल दान में ही खर्च किया जाता था।[2]

जहाँगीर ने यह आदेश जारी किया कि यह धन मस्जिंद, सराय, टूटा हुआ पुल तालाब या कुओं के बनबाने में लगाया जाय।[3] औरंगजेव ने कभी भी इस धन को नहीं छुआ, यद्यपि की दक्षिण के युद्धों में उसका खजाना खाली हो गया था।[4] उसने इस विभाग की देखभाल के लिए समुचित व्यवस्था की।[5] उसने अहमदशाह के काजी को यह आदेश दिया कि 150 कोंट और 150 कम्बल गरीबों को दिया जाए, जबकि गरीबों के बस्त्रो के लिए छः हजार रूपया पहले से निर्धारित था।[6]

औरंगजेव ने अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण जौनपुर के मीर-हबीवुल्ला जो जजिया कर वसूल करने के लिए अमीर बनाये गये थे और जिसने शाही खजाने से 40 हजार रूपया गबन किया था उसको यह मान कर छमा कर दिया कि यह धन दान के उपर खर्च किया गया है।

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 79
2. वही, पृष्ठ 79
3. वही, पृष्ठ 79, 80
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 178
5. वही, पृष्ठ 167
6. वही, पृष्ठ 177
7. एनकड्रोटस ऑफ औरंगजेव एण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 93

धार्मिक स्थानों में दान की व्यवस्था :-

मुसलमानों के वहां यह कार्य बड़ा पुनीत समझा जाता था कि धार्मिक स्थानों में मक्का, मदीना और मेशद में दान दिया जाए।[1] बहुत ऐसे उदाहरण मिलते है जबकि मुगल बादशाह[2] और अमीर इन स्थानों में रूपया, कपड़ा और कम्बल भेजते थे ताकि गरीबों को आसानी से बाटा जा सके। अजीज कोका बड़ी उदारता के साथ पैगम्बर के मकबरे की रक्षा पचास बर्ष तक करते रहे।[3]

नवाब हाजी मुहम्मद अनवारूद्दीन खाँ[4] ने पुनीत मक्का के बड़े आदमियों और सज्जन व्यक्तियों को नौ लाख रूपये वांटे थें। अमीर खाँ की स्त्री साहेब जी ने मक्का[5] में वहुत अधिक धन बाटा था। औरंगजेव के दरबार में अमीर लश्कर खाँ ने मेशद में एक सराय का निर्माण करवाया था।

1. सोशल लाहफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 80
2. इब्न हसन बुरहान-तुजुक-ए-बालाजाही, अंग्रेजी अनुवाद, मुहम्मद हुसैन, नैनार, भाग-1, पृष्ठ 17
3. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 81
4. तुजुक-ए-बालाजाही, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 17
5. हुमाँयूनामा, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69,72

षष्टम अध्याय

स्त्रियों का समाज में स्थान

षष्ठम अध्याय

स्त्रियों का समाज में स्थान

किसी भी सभ्यता की विशेषता एवं उसकी सीमाओं को जानने के लिए सबसे आवश्यक है कि उस समय की स्त्रियों की दशा के बारे में पता लगाया जाए। सामाजिक परिवर्तनो के कारण ही भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति काफी बदल गयी। स्त्रियों का जो सम्मान पहले था वह तुर्को के शासन काल में धीरे-धीरे घटता गया। कुछ वर्गो के लोग इनके समय मे भी स्त्रियों को आदर की दृष्टि से देखते थे।[1] कुछ लोग ऐसे थे जो स्त्रियों को हमेशा से घृणा की दृष्टि से देखते थे वह यह कहते है कि स्त्रियों पुरूषों की बरबादी का करण है।[2]

हिन्दू परिवारो में लड़कियो को वचपन से बड़ो का आदर करना पड़ता था। वह अपने पति को ईश्वर की तरह पूजा करती थी और पति की आज्ञाओं का पालन बड़ी तत्परता से करती थी।[3] पति के प्रति वह भक्ति रखती थी और

---

1. वुहलर, जी.- द लाज आफ मनु,आक्सफोर्ड 1886,पृष्ठ 85,श्लोक 55-59
2. कवीरदास-वीजक-टीकाकार विश्वनाथ सिंह,वाम्वे सम्बत-1961, पृष्ठ 189
   "नारी सवल पुरूषहि सायी, ताते रही अकेला"
   दादूदयाल की वाणी, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 131-132
   "नारी वैरणि पुरूष की पुरूषा वैरी नारि,
   अति कालि दून्लू मुए, कुछ न आया हाथ।"
3. रामचरित मानस-पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 631-32
   "एके धर्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पति पद प्रेमा।"

हर खराब परिस्थिति में वह पति की सेवा करती थी।[1] स्त्रियां पतिधर्म निभाती थी और वह पवित्र जीवन व्यतीत करती थी।[2] घरेलू जीवन में स्त्रियां अधिक से अधिक काम करती थी।[3] प्रातः काल स्त्रियों को अनाज पीसना पड़ता था और फिर उसके वाद वह खाना बनाकर परोसती थी।[4] वह कुंए से पानी भरकर लाती थी[5] और फिर उसके बाद वह मिट्टी से घरों को लीपकर झाड़ू लगाती थी। स्त्रियां समय मिलने पर सूत तैयार करके कपड़े बुनती थी।[6] और इस तरह से उनका दिन बीत जाता था।

शिशु का जन्म :-

मुगलकाल में हिन्दू व मुसलमान दोनों परिवार के लोग कन्या को बहुत हेय दृष्टि से देखते थे। केवल पुरूष लोग कन्या के जन्म को बुरे दृष्टि से नहीं देखते थे वल्कि कन्या की माँ भी उसे बुरे दृष्टि से देखती थी। यदि कन्या की जगह उनके घर पुत्र का जन्म होता था तो वह बहुत प्रसन्न हो जाती थी और वे अपने को सम्मान का पात्र समझने लगती थी।[7] राजपूतों में यदि पुत्री का जन्म होता था तो वे न तो माँ की देखभाल करते थे और न ही उस शिशु की देखभाल

---

1. केशवदास-राम चन्द्रिका-टीकाकार, भगवानदीन, इलाहावाद भाग-1,पृष्ठ 135
"नारि तजे न अपना सपनेहू भरतार, पंगु गुंग वौरा बधिर अन्धे अनाथ अपार"
2. दादु दयाल की वाणी, पूर्वोद्धृत पृष्ठ 95
"पतिव्रता गृह आपने करे खसम की सेव,
ज्यों राखे त्योंही रहे आज्ञाकारी टेव।।"
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 117-18
4. कृष्णदास उपाध्याय- भोजपुरी ग्राम गीत, प्रयाग, पृष्ठ 132,163,166,170
5. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 19; सिहं, राम इकवाल (राकेश)- मैथिली लोक गीत, प्रयाग 199, वि.स.,पृष्ठ 59
6. भोजपूरी ग्राम गीत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 150
7. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 242,
"यदि कोई हिन्दू स्त्री लगातार कन्याओं को जन्म देती जाती तो उसे इस अभिशाप से मुक्ति के लिए कठोर तपस्या का पात्र समझा जाता ....।"

करते थे।[1]

विदेशी यात्रियों का कहना है कि भारतीय स्त्रियां शिशु के जन्म के तुरन्त बाद अपने कामों में लग जाती थी और यदि यात्रा के दौरान बच्चे का जन्म होता था तो वे दूसरे दिन घोड़े पर सवार होकर बच्चे को लेकर चली जाती थीं। प्रायः ये सब मजदूर वर्ग की गरीब स्त्रियां करती थीं।[2]

माँ के रूप में नारी का स्थान :-

मुगलकाल में बादशाह व शाहजादे दोनों ही अपनी माँ का सम्मान करने में किसी प्रकार से पीछे नहीं रहते थें माता के रूप में स्त्री का बहुत आदर किया जाता था।[3] इस्लाम धर्म में भी माताओं का वहुत सम्मान किया जाता था। उस समय के किसान लोग माता का अत्यधिक सम्मान करते थे। जो बड़ी बूढ़ी होती थी, उन्हीं के आदेशो का पालन किया जाता था।

मुगल वादशाहों के यहाँ तीन ढंग से आदर प्रदर्शित करने की प्रथा थी, जिसे कारनीश, सिजदा व तसलीम कहा जाता था।[4] मुगलवादशाह अपने जन्म दिन के अवसर पर राजकुमारो तथा अमीरो को साथ लेकर माता के पास आर्शिवाद लेने के लिये जाते थे। वे उन्हें बहुत सी चीजें भेंट के रूप में देते थे।[5] कभी-कभी तौलने वाला संस्कार भी उसके महल में होते थे। भारतीय सभ्यता के अनुसार देश की प्रथम स्त्री को सम्राज्ञी नही माना जाता था वल्कि बादशाह की माँ या बहन भी सम्राज्ञी हो सकती थी।[6] राजपूत अपनी माताओं का आदर करते

---

1. टाड जेम्स-एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज आफ राजस्थान, सम्पादक विलियम कुक, कलकत्ता, 1960, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 739
2. अर्लिट्रेवल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 309;
   ट्रेवेल्स आफ इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 66, 118
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 123
4. दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 96
5. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 256
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 124

थे। राजपूत स्त्रियों का समाज में बहुत ऊचा स्थान था वह अपने पुत्रो के सुकीर्तियों में भाग लेती थी।[1] मेवाड़ के राणा सग्राम सिंह द्वितीय प्रतिदिन सुवह माता को भोजन के पहले प्रणाम करते थे और कभी भी माता के विरूद्ध किसी कार्य को नहीं करते थे।[2] ऐसे बहुत से प्रामाणिक उदाहरण मिलते है जबकि स्त्रियां मध्यस्थ होकर बड़े झगड़ों का निपटारा करती थी। खानुम के सिफारिश पर खान मिर्जा को छोड़ दिया गया था।[3] इसी प्रकार नाहिद बेगम के कहने पर उसके पति मुबाहिब अली का भी दरबार में स्वागत किया गया था।[4]

बदौनी ने मुकर्रब खाँ के माँ के द्वारा खाँ से बहुत से झगड़ो का समझौता करवाया था।[5] जहाँनआरा के कहने पर 1653 में औरंगजेब को माफ किया गया और उसको तमाम तरह के सम्मान और आर्थिक सुविधायें प्रदान की गयी जिनको कि सम्राट शाहजाहाँ ने वंचित कर दिया था।[6]

नारी पुत्री के रूप में :-

मुगल काल में लड़कियां अपने माता पिता का बहुत अधिक सम्मान करती थी। वह अपने माता-पिता के आदेशों का पालन बड़ी तत्परता से करती थी। उनके आदेशों का पालन करना वह परम कर्तव्य समझती थी। पिता के आदेशो के द्वारा वे बेजोड़ साथी चुन लेती थी। पिता की इच्छा के अनुसार वे दूसरी जाति या दूसरे धर्म में विवाह करने के लिये तैयार रहती थी।[7] वे पिता की हरेक इच्छाओं का पालन करती थी। देशी राजा लोग कन्यादान के द्वारा अपनी शक्ति का संचयन करते थे और प्रभुत्व का विस्तार करते थे। राणा अमर सिंह

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 124
2. एनल्स एण्ड एण्टीक्युटीज आफ राजस्थान, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 479
3. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 232, 33
4. मुन्तखब-उत-तवारीख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पर्वोद्धृत, पृष्ठ 138
5. वही, पृष्ठ 88
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 125
7. लेटर मुगल्स, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 304

द्वितीय ने अपनी पुत्री चन्द्र कुँवरि का विवाह सवाई जय सिंह के साथ करके मेवाड़ और मारवाड़ की शक्तियों को संगठित किया था। इसी प्रकार से उसने जय सिंह वूदी पर अपना प्रभाव रखने के लिए अपनी पुत्री का विवाह बूदी नरेश दलेल सिंह के साथ कर दिया था।

हिन्दू कन्याओं के समान मुगल शहजादियाँ अपने पिता की निष्कपट रूप से सेवा करती थी। वे पितृ भक्ति के लिए अमर मानी जाती थी। बादशाह भी उनका बहुत अधिक सम्मान करते थे। जहांनआरा ने अपने पिता के अन्तिम समय बहुत अधिक सेवा की थी। औरंगजेब भी अपनी विदुषी पुत्री जेवुन्निशा को वहुत प्यार करता था जब कि एक बार वह गुस्सें में उसे कैद की सजा दिया था, परन्तु जब वह उसकी मृत्यु[1] का खबर पाया तो स्वयं उसकी समाधि पर जाकर रोया था और उसकी आत्मा की शान्ति के लिए उसने दान देने का भी आदेश दिया था।[2]

नारी पत्नी के रूप में :-

यद्यपि मुगल कालीन भारत में स्त्रियों की स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया था किन्तु फिर भी साधारणतया भारतीय लड़कियों को पति चुनने की सुविधा नहीं दी जाती थी। विवाह हो जाने के उपरान्त लड़की के उपर सास का नियन्त्रण रहता था।[3] मुसलमान परिवारों में स्त्री से संन्तुष्ट न होने पर स्त्री का परित्याग कर दिया जाता था। हिन्दुओं के परिवार में स्त्री का जीवन नीरस हो जाता था। उसको अपने पति के पूरे परिवार की सेवा करनी पड़ती थी।[4] स्त्रियों को घर के सभी कार्य करने पड़ते थे। स्त्रियां गायों और घरेलू मनुष्यों की देखभाल अन्य घरेलू कामों के साथ करती थी अधिक उम्र की स्त्री को अपने सास के प्रभुत्व से छुटकारा पाने के वाद अपने घर के प्रबन्ध के बारे में काफी

1. जेवुन्निसा की मृत्यु 1702ई. में हुई थी।
2. माथुर, एन.एल.-रेडफोर्ट एण्ड मुगल लाइफ दिल्ली, 1964, पृष्ठ 49
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 118
4. वही, पृष्ठ 118

अधिकार प्राप्त होते थे।[1] वह व्यय के उपर नियंन्त्रण रखती थी और वह रसोई घर के प्रबन्ध की भी देखभाल करती थी। घरेलू धार्मिक काम करती थी।[2] और कभी-कभी वह राजनीतिक उत्सवों मे भी भाग लेती थी।

स्त्री के रूप में उन्हें पति की भक्ति करनी पड़ती थी। वह बिना पति के भोजन किए भोजन नहीं करती थी।[3] प्रसव काल के समय स्त्रियों को काफी लम्बे समय तक विश्राम करना पड़ता था। बार्तोलोम्यू ने इस बात का प्रशंसा की है कि गर्भवती स्त्रियों का बड़ा आदर किया जाता था न केवल उसके पति और उसके सम्बन्धी ही उसका आदर करते थे बल्कि उस स्थान के सभी लोग उसके सुरक्षा की कामना करते थे।[4] प्रसव काल के बाद कई दिनों तक उस स्त्रीं को स्पर्श नहीं किया जाता था, केवल मेडवाइफ और नौकरानियां ही छू सकती थीं। मनुची के अनुसार उसका खाना दूर रख दिया जाता था। कोई भी उसके नजदीक इसलिए नहीं जाता था क्योंकि वह अपवित्र हो जायेगा।[5]

पति के सम्बन्ध में स्त्री का स्थान अधीनस्थ होता था जबकि दोनों के सम्बन्ध मधुर होते थे। जहाँगीर तुजुक में लिखते है कि हिन्दुओं के यहाँ ये कहावत प्रसिद्ध थी कि पुरूषों के द्वारा किया हुआ काम सामाजिक जीवन में तब तक पूरा नहीं माना जायेगा जब तक कि स्त्री उस में भाग न ले क्योंकि स्त्री को पुरूष की अर्धांगिनी कहा जाता था।[6] दोनो लोग परिवार सुख को बनाये रखने के लिए सहयोग देते थे।

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 118
2. दि पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 396; दि सिख रिलिजन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 2, 3
3. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 155
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 119
5. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 155; दि सिख रिलिजन, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 242
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 119

मेवाड़ के राजकुमार भी वहाँ के मुख्य अतिथि के सत्कार में खड़े थे।[1] जिसको कि बादशाह ने अपने यहा निमन्त्रण दिया था। टाड लिखते है कि इस तरह का सम्मान बड़ा विचित्र था। कभी-कभी पति लोग अपनी पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करते थे और उन्हे मानसिक कष्ट भोगना पड़ता था। उदाहरण के लिए अकबर के मामा ख्वाजा मुअज्जम की चर्चा की जाती है।[2] पुराने और सम्भ्रान्त परिवारों की स्त्रियां मुख्यतः राजपूतानी लोग अपने आत्मसम्मान का बलिदान नही करती थी।[3] उदाहरण के लिए अम्बर के राजा जयसिंह ने अपनी पत्नी के साथ मजाक किया था और उसने उसका सही उत्तर दे दिया। दोनों लोग एक दूसरे का सम्मान करें। यही प्रसन्नता का प्रतीक माना जाता था। बर्नियर लिखते हैं कि बहुत सी स्त्रियां वैवाहिक जीवन सुखी व्यतीत की होती यदि उनके पिता उनका विवाह अपने से छोटे परिवारों मे किए होते।[4]

इस सन्दर्भ में हमीदा वानू का विचार ध्यान देने योग्य है जिसने बादशाह से शादी करने के लिए इन्कार कर दिया था।[5] राजपूतानी स्त्रियों के पास इतना साहस होता था कि यदि उनके पति गलत रास्ते पर जाते थे तो वह डांट दिया करती थीं।[6] यह सत्य माना जाता हैं कि हिन्दू लोग पारिवारिक जीवन को सुखमय व्यतीत करते थे और स्त्रियां पति का सम्मान करती थी और पति भी उसके बदले में आदर देते थे। दोनों एक दूसरे के प्रति अच्छी भावना रखते थे। एक ही विवाह प्रचलित था।[7]

---

1. एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज आफ राजस्थान, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 713
2. अकबर नामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 336;
   एण्टीक्यूटीज आफ राजस्थान, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 784-85
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 120
4. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 259
5. हुमायूँनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 151
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 120, 21
7. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 181

ट्रेवर्नियर लिखते हैं कि हिन्दुओं में बनियां लोग अपनी स्त्री का अधिक सम्मान करते थे।[1] और दोनों का जीवन बड़ा सुखमय व्यतीत होता था।[2]

सती प्रथा :-

प्रायः स्त्रियों के जीवन की अत्यधिक दुःखद घटना उसके पति की मृत्यु मानी जाती थी। मुसलमानों के विपरीत मुगलकाल में हिन्दुओं के वहां पुर्नविवाह का प्रचलन नहीं था। यह केवल छोटे जातियों में प्रचलित था।[3]

प्राचीन काल से भारत वर्ष में सती प्रथा का प्रचलन था। हिन्दू स्त्रियां विधवा होने पर अत्यधिक प्रेम के कारण अपने शरीर को पति के साथ जला देती थी। समाज विधवाओं को बहुत बुरी निगाह से देखता था, परिवार के दूसरे सदस्यों के लिए वे घृणा की पात्र समझी जाती थी।[4] जो स्त्रियां सती नहीं होना चाहती थी।[5] उन्हे न तो बाल बढ़ाने का अधिकार था और न ही वे आभूषण और अच्छे कपड़े ही पहन सकतीं थी।[6]

"इपी ग्राफिपा कर्नाटका" में प्रकाशित कर्नाटक शिलालेखों में 1000ई. से 1400 ई. के मध्य सती होने की केवल ग्यारह घटनाएं मिलती है, परन्तु

---

1. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 181
2. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 331
3. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 367;
   ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 119;
   इण्डियन ट्रेवेल्स आफ इन थेवेनाट एण्ड करेरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 256-571
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 60;
   ट्रेवेल्स आफ इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 84
5. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 314;
   ट्रेवेल्स आफ इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 84
6. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 219;
   स्टोरिया दी मोगोर, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 61

1400ई. से 1600ई. के बीच 41 घटनाओं के विवरण मिलते है। इसमें अधिकतर नायक और गौड़ जाति की स्त्रियां थी। जैन धर्म से सम्बन्धित केवल दो सती थी।[1] महाकोसल में सागर के निकट, सती शिला लेखों से ऐसा पता चलता है कि 1500ई.-1800ई. के बीच जुलाहे, नाई आदि निम्न वर्गो से भी कुछ स्त्रियां सती हो जाती थीं।[2]

राजपूत राजवंशो में सती प्रथा काफी प्रचलित थी और वे इस प्रथा का स्वागत करती थीं राजपूत विधवायें जिनके बच्चे नही होते थेया उन्हें राजकाल के प्रतिनिधित्व से किसी प्रकार का कोई लगाव नही रहता था ऐसी स्त्रियां सती हो जाती थी। कभी-कभी सती होने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक हो जाती थी।[3] जब मदुरा के नायक के दो शासक 1611ई. और 1620ई. में मृत्यु को प्राप्त हुए थे तो ऐसा कहा जाता था कि उनके साथ क्रमशः 400 और 700 स्त्रियां सती हो गयी थी। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मिशनरी लेखकों के द्वारा यह संख्या काफी बढ़ाकर लिख दी गयी है।[4]

सभी विदेशी यात्री इस बात की चर्चा करते हैं कि मुगल काल मे स्त्रियां पुरूषों के साथ जलकर भस्म हो जाती थी।[5] फिर भी कुछ स्त्रियां ऐसी होती थी जो भस्म नहीं होना चाहती थीं।[6] जब भी किसी राजपूत शासक या सेनानी को ये विश्वास हो जाता था कि वह युद्ध में पराजित होगा तो वह अपने स्त्री तथा बच्चों को मार डालता था या फिर उन्हे मकान में बन्द करके पूरे

---

1. दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविजाइजेशन, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 131
2. वही, पृष्ठ 130
3. वही, पृष्ठ 131
4. वही, पृष्ठ 131
5. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 20,22; स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 97; ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 306-15
6. जहाँगीरर्स इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 80;
   ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 306

करके पूरे मकान में आग लगा देते थे और फिर वे वीर गति को प्राप्त को जाते थे।[1]

कुछ मुगल शासक जैसे अकबर ने यह आदेश दिया कि कोई भी स्त्री सती नहीं हो सकती।[2] जहाँगीर ने भी स्त्रियों के सती न होने के लिए आदेश दिया। बिना बादशाह की स्वीकृति के किसी भी नौजवान स्त्रियों के सती होने के लिए आज्ञा नहीं दी जाती थी।[3] 1663 में औरंगजेब ने सती प्रथा को बन्द करने का आदेश दिया।[4] प्रायः जिनके बच्चे नहीं होते थे, उन्हे सती होने की स्वीकृति नहीं दी जाती थी।[5] इन तमाम बातो के बावजूद सती प्रथा बन्द नहीं हो सकी।

पर्दा प्रथा :-

मुसलमानों की भांति हिन्दुओं में पर्दा का कोई कठोर नियम नहीं था।6 हिन्दु स्त्रीयों को मुसलमान औरतों की भाँति सिर से पैर तक ढकने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह अपने पुरूषों के साथ चादर ओढ़कर उसी का घूँघट बनाकर बाहर निकलती थी। वे चादर ओढ़कर पर्व विशेष में जाती थी। वे मन्दिर तथा तीर्थ स्थानों में भी जाती थी। मुसलमानों के आगमन के बाद स्त्रियों में पर्दा प्रथा प्रचलित हुआ और धीरे-धीरे वहु-विवाह की प्रथा जोर पकड़ने लगी थी।

अकबर के समय में पर्दा प्रथा पर काफी जोर दिया जाता था और उस समय कोई भी स्त्री बिना पर्दे के बाहर नहीं जा सकती थी। हिन्दू लोग भी स्त्रियों के सम्मान को बढ़ाने के लिए तथा समाज को ठीक ढंग से रखने के लिए पर्दा

---

1. अकबर नामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 472
2. मुन्तरवब-उत-तवारीख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2,पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 388
3. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 219
4. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 97
5. वही, भाग-2, पृष्ठ 156; ट्रेवेल्स इन इण्डिया,भाग-2,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 210-16
6. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 81

   स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 62

का अनुकरण किए।[1] मुगलकाल में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के उच्च परिवारों में पर्दा प्रथा काफी प्रचलित थी।[2] जायसी, चैतन्य और विद्यापति लिखते है कि बंगाल तथा उत्तर प्रदेश के धनी हिन्दू परिवारों में पर्दा प्रथा पाया जाता था। उस समय पर्दा सम्मान का विषय था। पुरूष डाक्टरों को अमीरों के घर की विमार औरतो को तथा राजकुमारों के घरों की स्त्रियों को देखने के लिए इजाजत नहीं दी जाती थी। उच्च घराने की स्त्रियां बिना परदें के बाहर नहीं जा सकती थी।[3] मुसलमान स्त्रियां जब तक खराब न हो बाहर नहीं जा सकती थी।[4] वे बिना बन्द पालकी के बाहर नहीं जाती थी।[5] राजकुमारिया राजा की स्वीकृति से बाहर जाती थीं और उन्हें पालकी में से स्त्रियां ही अन्दर ले जाती थी।[6] बड़े परदें के साथ स्त्रियां हाथियों पर हौदा में जाती थी।[7] जब कभी शाही घराने की स्त्रियां बाहर जाती थी तो उस समय सड़क पर किसी को भी जाने की अनुमति नही दी जाती थी। बर्नियर[8] ने ठीक ही लिखा है कि पर्दा न करने पर उनको इसका परिणाम भोगना पड़ता था। डा. वेनी प्रसाद लिखते है कि नूरजहाँ पर्दा प्रथा का पालन नहीं करती थी। धीरे-धीरे राजपूताने में भी पर्दा प्रथा का रिवाज फैल रहा था, जबकि पहले राजपूत परिवारों में इसका रिवाज बहुत कम था, क्योंकि राजपूत घराने की स्त्रियां लड़ाई लड़ने तथा शिकार खेलने के लिए जाती थी। दक्षिण भारत में पर्दा

---

1. एलिजावेध कूपर- हरम एण्ड दी परदा, लन्दन, 1915, पृष्ठ 65
2. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 51; ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 461
3. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51
4. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेला वेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 11
5. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51; ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 413
6. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 125
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 333-34
8. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 374

प्रथा प्रचलित नहीं था।[1]

मध्यम वर्गीय मुसलमान स्त्रियां बिना परदें के बाहर नहीं जाती थी,[2] और वह बुर्के या चद्दर से अपना मुँह ढक लेती थीं। वे बाहर की चीजे देख सकती थीं- लेकिन उन्हे कोई नहीं देख सकता था। हेमिल्टन लिखते है कि मुसलमान स्त्रियां पर्दे के बाहर जाती थी।[3] ओविग्टन[4] और डा0 फ्रायर[5] लिखते हैं कि छोटे से छोटे घरों की स्त्रियां बिना पर्दे के बाहर नहीं जाती थीं। जिनके पास पैसा होता था वे वन्द पालकियों में जाती थीं[6] डेलावैलें लिखते हैं कि मुसलमान अपनी स्त्रियों को सम्बन्धियों तक से बात नहीं करने देते थे।

साधारण स्त्रियों के लिए पर्दा नहीं था :-

हिन्दुओं के मध्यम वर्ग और साधारण वर्ग के लिए परदा करने के लिए कोई जबरदस्ती नहीं करता था।[7] डेलावैले लिखते है कि हिन्दुओं की एक स्त्री होती थी इसलिए वे इतना अधिक भयभीत नहीं रहते थे जितना कि मुसलमान जिनकी कई स्त्रियां होती थी और जिनमें आपस में ईर्ष्या की भावना होती थी।[8] स्त्रियां जब बाहर जाती थी तो पुरूष उनके साथ जाते थे।[9] मुसलमानों की तरह से हिन्दू स्त्रियां केवल सिर से पैर तक नहीं ढकती थी।[10] हिन्दू स्त्रियां केवल

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 111
2. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इनदि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 384; ए न्यू एकाउन्ट आफ दि ईस्ट इंडीज, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 163
3. वही, पृष्ठ 163
4. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 211
5. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीथ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 181
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दी अमवैसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 66
7. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन सि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 182
8. ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेंलावेले, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 434
9. ग्रोस, एफ.एस.-ए वायेज टू दि ईस्ट इडीज विद जनरल रिफ्लेक्शन आन दि ट्रेड आफ इण्डिया, लन्दन, भाग 1व2, पृष्ठ 193
10. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51

डुपट्टे से अपने सिर को ढकती थी। श्रमिक वर्ग और किसान वर्ग की स्त्रियां बिना परदें के स्वतन्त्र रूप से घूमती थी।[1] और वे हर प्रकार से अपने पूरूषों के काम में हाथ बटाती थीं।[2] वे नदियों में नहाती थी।[3] और धार्मिक स्थानों में पैदल जाती थी। वे बिना परदा के एक स्थान से दूसरे स्थान तक पान ले जाती थी।[4]

स्त्री शिक्षा :-

बहुत पहले से भारत बर्ष में शिक्षा के क्षेत्र में महान विदुषी स्त्रियों के योगदान की परम्परा थी। कुछ स्त्रियां तो इतनी ज्यादा विद्वान थीं कि उनके द्वारा वैदिक ऋचाओं की भी रचना मानी जाती है।

मुगलकाल में स्त्रियों की शिक्षा की ओर बहुत ज्यादा ध्यान दिया जाता था। शिक्षा प्रायः राजकुमारियां या उच्च घराने की स्त्रियाँ ही प्राप्त करती थीं। समाज पढ़ी लिखी स्त्रियों को ऊचा स्थान देता था। कभी-कभी स्त्रियां बादशाह की परामर्शदाता भी बन जाती थी। दुर्गावती[5], चाँद बीबी, नूरजहाँ[6], जहाँनआरा[7], साहेब जी ताराबाई[8] इत्यादि ने भारतीय इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया

---

1. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवेल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 81
2. एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज आफ राजस्थान, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 710-11
3. ए वायेज टू दि ईस्ट इंडीज विद जनरल रिफ्लेक्शन आन दि ट्रेड आफ इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 114-15
4. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 320
5. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 324-25
6. हिस्ट्री आफ जहाँगीर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 182-85
7. ओरियन्टल कालेज मैगजीन, लाहौर (उर्दू) अगस्त, 1937, भाग-3, नं. 4
8. स्टडीज इन मुगल इण्डिया, भाग-5, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 199-20

है। मीराबाई, गुलबदन बेगम[1], सलीमा सुल्तान[2], रूपमती, जेबुन्निसा[3], जिनतुन्निसा, साहित्य के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त की और उस समय के महत्वपूर्ण कार्यो में, महिला मृदु बाणियों में, जिसमें पैतींस ऐसे स्त्रियों की सूची मिलती है जो केवल साधारण कवियत्रि हीं नहीं थी बल्कि साहित्य के क्षेत्र में उन्होने बड़े मार्मिक कार्य कियें है।[4] बहुत सी ऐसी स्त्रियां भी थी जिन्होने इस दिशा में बहुत ज्यादा ख्याति प्राप्त की। इस प्रकार भारतीय स्त्रियां उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त करती थीं।[5]

लड़कियों की शिक्षा के लिए अलग से विद्यालय नहीं होते थे। प्रारम्भिक शिक्षा वे घरों में प्राप्त करती थीं और वे विद्यालयों में लड़कों के साथ पढ़ने के लिए जाती थी। कुरान और अन्य चीजें वे जबानी याद करती थीं। धनी लोग लड़कियों को पढ़ाने के लिए शिक्षक नियुक्त करते थे।[6] कानूनी इस्लाम के लेखक लिखते हैं कि लड़कियों को कुरान और प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती थी।[7] मलायन पुस्तक चन्द्रोत्सवन में किसी तरह दक्षिण में स्त्रियों की शिक्षा दी जाती थी, इस वात की चर्चा मिलती है। अच्छे तथा सम्पन्न घरानों की लड़किया प्रायः साहित्यिक होती थी। बड़े-बड़े राजपूतों और बंगाली जमीदारों की लड़किया लिखने तथा पढ़ने में पटु होती थी।[8]

मुगल राजकुमारियों के पढ़ने की पूरी व्यवस्था की जाती थी।[9] वे रोज

---

1. हुमायूनामा की लेखिका,
2. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 389
3. स्टडीज इन मुगल इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 70-90
4. बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियन्टल एण्ड अफरीकन स्टडीज, लन्दन 1917
5. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 160
6. वही, पृष्ठ 161
7. जफर शरीफ-कानून ए-इस्लाम, क्रूक विलियम आक्सफोर्ड 1921, पृष्ठ 51
8. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 161
9. कानून-ए-इस्लाम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 51

कुरान पढ़ती थी और अपने सम्बन्धियों से पत्राचार करती थी।[1] कुछ स्त्रियां कविता भी करती थी और कुछ संगीत की भी जानकार होती थी। साधारण मुगल राजकुमारियां भी शिक्षा प्राप्त करती थी।[2] विवाह के बाद पढ़ाई समाप्त हो जाती थी इसलिए उनका भाषा के उपर अधिकार पाना कठिन हो जाता था। मुगल राजकुमारियों की लिखी हुई चिट्ठीयां बहुत कम मिलती है। गुलबदन के पति अपनी पत्नी के लिखे हुए को पहचान नहीं पांए। जेवुन्निसा और जिनतुन्निसा की कविताए बहुत उच्च्व कोटि की नहीं थी।[3] औसत मध्य वर्ग की स्त्रियां हिन्दी, फारसी और प्रान्तीय भाषाओं तथा धार्मिक ग्रन्थो को पढ़ती थीं सोलहवी शताब्दी के कवि और लेखक मुकुन्दराय जिन्होने चण्डी महल नामक कविता लिखी थी, वे हिन्दू स्त्रियों के प्रारम्भिक पढ़ाई के बारे में चर्चा करते है।[4] दक्षिण भारत में संस्कृत भाषा प्रचलित थी। वह संस्कृत भी बोल सकती थी और अच्छे कवियों और साहित्यकारों के उद्धारण प्रस्तुत कर सकती थीं। विधवाओं के पढ़ने पर बहुत जोर दिया जाता था। कुछ स्त्रियां अध्यापिकाएं बन जाती थीं।[5] जैसे हती विद्यालंकार जो बंगाल से विहार चली गयी थीं और एक अध्यापिका बन गयी थी।[6] छोटे बर्गो की स्त्रियां वास्तव में पढ़ी लिखी नहीं रहती थी। लेकिन उनको पढ़ाई से वंचित नही किया जाता था।[7]

महाराष्ट्र में रामदास स्वामी की शिष्याएं अकावाई और केनावाई सत्रहवी

---

1. हुमायूनामा, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 150
2. इलियट एण्ड डाउसन-हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग-1-6, लन्दन, 1866-77, भाग-7, पृष्ठ 162
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 161-62
4. वही, पृष्ठ 162
5. वही, पृष्ठ 162
6. केय, एफ.ई.- इण्डियन एजूकेशन इन एन्सिएन्ट एण्ड लेटर टाइम्स, मिलफोर्ड 1938, पृष्ठ 77
7. बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए.डी. पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 180

शाताब्दी की महत्वपूर्ण साहित्यकार मानी जाती थीं।[1]

स्त्रियों की राजनीतिक एवं प्रशासनिक भूमिका :-

समय-समय पर स्त्रियों ने राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। मुगलकाल के प्रारम्भ में अनेक बीर रमणियों के नाम उनकी बीरता नेतृत्व तथा त्याग के लिए प्रसिद्ध थे।

अकवर की मुख्य नर्स माहम अंगा ने चार बर्ष तक 1560 से 1564 तक राज्य के कार्यो पर नियन्त्रण रखा था।[2] गोडंवाना की चंदेल राजकुमारी रानी दुर्गावती ने अपने राज्य में बड़े साहस और योग्यता से शासन को चलाया।[3] उसका शासन अकबर के समय से उन्नतिशील माना जाता था।[4] अहमद नगर की चांद बीबी अच्छी प्रशासिका थी। दक्षिण में मखदूम-ए-जहां ने सूचारु रूप से शासन किया था।[5]

अलीमर्दन की लड़की साहब जी बड़ी सुयोग्य लड़की थी और इसने काबुल के गर्वनर की हैसियत से बड़ा अच्छा शासन किया था। अपने पति के शासन के बाद इसने विद्रोही अमीरों को दबाया और अपने कठोर नीति के द्वारा ही विरोधी शक्तियों का दमन भी किया।[6]

अकबर के समय में अहमद नगर को बचाने में चाँद बीबी का बहुत बड़ा हाथ था। मध्यकालीन भारतीय स्त्रियों ने राज्य की लज्जा को बचाने के लिए बहुत बड़ा सहयोग दिया था।[7]

जहाँगीरी शासन में नूरजहाँ का बहुत बड़ा हाथ था, उसका सम्राट के

---

1. सोसोइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 128
2. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 151
3. वही, पृष्ठ 224, 230
4. अकबर दि ग्रेट मुगल, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 69,70
5. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 129
6. स्टडीज इन मुगल इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 114-117
7. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 130

उपर इतना अधिक प्रभाव था कि वह जैसे चाहती थी शासन करती थीं।[1] शाहजहाँ की पुत्रियां जहांआरा एवं रोशनआरा तत्कालिन राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं। जहांआरा दारा के पक्ष में रहती थी तथा रोशनआरा औरंगजेब की पक्षधर थी। जहांआरा दारा शिकोह के राजनीतिक उन्नयन के लिए भूमिका तैयार करती थी जब कि रोशनआरा औरगंजेव से इस सम्बन्ध में पत्र व्यवहार करती थी। जब औरंगजेब युद्ध में विजयी होकर गद्‌दी पर बैठे उस समय रोशन आरा को विशेष अधिकार प्राप्त थे। उसे विशेष भत्ता दिया जाता था तथा वह प्रथम स्तर की रानी की भाँति अनेक प्रकार के विशेषाधिकारों का उपयोंग करती थीं।[2] उस समय बहुत सी स्त्रियां ऐसी भी हुयी जिन्हे प्रशासिका कहा जाता था।

महाराष्ट्र में मराठा शासक राजाराम की विधवा तारावाई मोहिते अपने पुत्र शिवाजी द्वितीय की संरक्षिका के रूप में शासन को चलाती थी।[3] उसने इतनी बीरता के साथ विरोधी शक्तियों पर विजय प्राप्त किया था, कि औरंगजेब के उसके खिलाफ सभी प्रयास निष्फल हो गये। सर यदुनाथ सरकार लिखते है कि उसके प्रशासनिक क्षमता और शक्ति के परिणाम स्वरूप संकट काल में राष्ट्र को बचाया।[4]

शाही घराने और अमीर परिवारों की भारतीय स्त्रियां विशेष रूप से राजपूतानी लोगों ने सिपाहियों का प्रशिक्षण प्राप्त किया और कभी-कभी उन्होंने बड़े ही बीरता का परिचय दिया। चित्तौड़ को बचाने में फत्ता के माँ की बीरता उल्लेखनीय है।[5] दुर्गावती ने बाजवहादुर और मीनाज को खिलाफ करके विजय

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 129
2. रेडफोर्ट एण्ड मुगल लाइफ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 48
3. उफ, जेम्स ग्रान्ट-ए-हिस्ट्री आफ दि मराठाज, भाग 1-3, कलकत्ता, 1912, भाग-1, पृष्ठ 323-24
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 129
5. एनल्स एण्ड एण्टीक्यूटीज आफ राजस्थान, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 381

प्राप्त कर लिया था।[1] हाथी पर सवार कवच धारण किए हुए और सिर पर लोहे का कवच पहने हुए अपनी सेना का संचालन किया। जब उसे विजय की भी आशा न रही तो उसने यह कहा कि क्या हम लोगो का सम्मान भी पराजित हो गया है और फिर उसने आत्म हत्या कर ली।[2]

साहित्य एवं कला में स्त्रियों का स्थान :-

यद्यपि पर्दा प्रथा होने के कारण उच्च वर्ग की स्त्रियां राष्ट्र के सामाजिक जीवन में कभी कभी भाग नहीं ले पाती थीं, लेकिन बहुत सी पढ़ी लिखी विदुषीयों ने मुगल शासन काल में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया। धनी वर्गो की स्त्रियां बहुत अधिक पढ़ी लिखी रहती थी और वे विद्वानों को आश्रय देती थी।[3]

उस समय बहुत सी महत्वपूर्ण कवित्रियां भी हुई और जिन्होने बहुत सी पुस्तकों की रचना भी की, जैसे गुलबदन बेगम ने हुमायूनामा लिखा। जहांआरा ने शीबीया और युनीसाल की जीवन कथा लिखी और उन्होने उस समय के साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान भी प्राप्त किया।4 खाने-खानम की लड़की जानबेगम ने कुरान की समालोचना की। मीराबाई, सलीमा सुल्ताना, नूरजहाँ, सितिउन्निसा और जेवुन्निसा ने कविता के क्षेत्र में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था।[5] रामभद्राम्ब ने रघुनाथाम्युदयम् लिखा। मधुरावनी ने भी आन्ध्ररामायण का अनुवाद किया था। तिरूमालम्बा ने कुछ पुस्तकों की रचना की थी।[6]

स्त्रियों के चरित्र का उच्चादर्श :-

हिन्दू स्त्रियों का सतीत्व उल्लेखनीय माना जाता है। बहुत से विदेशी

---

1. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 325
2. हिस्ट्र आफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्ट्रीरियन्स पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 169
3. वही, पृष्ठ 127
4. वही, पृष्ठ 128
5. वही, पृष्ठ 128
6. वही, पृष्ठ 128

यात्रियों ने हिन्दू स्त्रियों के आदर्श की चर्चा की है। थेवेनाट ने पूरब की स्त्रियों को उदाहरण के रूप में माना है।[1]

अकबर भी हिन्दू स्त्रियों के चरित्र की बहुत प्रशंसा करता है।[2] जहाँगीर ने भी हिन्दू स्त्रियों की प्रशंसा की है। ट्रेवर्नियर लिखते है कि उस समय चरित्र हीनता बहुत कम थी[3] और ब्यभिचार के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाता था।[4] कभी-कभी उनका नाक भी कटवा दिया जाता था।[5] ओविंग्टन लिखता है कि पुरूषो की यह ज्यादती मानी जाती थी कि वह स्त्रियों पर कठोर नियन्त्रण रखते थे[6] और प्रायः उन व्यक्तियों को अनादर की दृष्टि से देखा जाता था जो गलत काम करते थे। जब स्त्रियों का सम्मान खतरें में पहुचता था तो वे मरना ज्यादा अच्छा समझती थी और जब वे युद्ध में पराजित हो जाते थे तो स्त्रियां जौहर की प्रथा को अदा करती थीं।[7]

इस प्रकार से मुगल काल में स्त्रियों का जीवन बड़ा आदर्शमय माना जाता था।

---

1. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 471
2. अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 372
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 181
4. स्टेवोरिनस, जे.एस.- वायेजेज टू दि ईस्ट इंडीज, अंग्रेजी अनुवाद, समुएल हुल विलकाँक, तीन भाग, लन्दन 1978, भाग-2, पृष्ठ 497
5. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 95
6. ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 211
7. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 131

सप्तम् अध्याय

शिक्षा एवं साहित्य

सप्तम् अध्याय
शिक्षा एवं साहित्य

भारत में शिक्षा की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद, गीता, पुराण, महाभारत एवं रामायण के अतिरिक्त अनेक विषयों पर समय-समय पर अनेक ग्रन्थों की रचना होती रही है।

शाहजहाँ का अपने पूर्वजों बाबर, हुमायूँ और जहाँगीर के समान साहित्य पर उतना अधिक अधिकार नहीं था फिर भी उसने साहित्यकारों के पोषण में किसी भी प्रकार की कमी नहीं किये थे।[1] शाहजहाँ ने अपने पुत्रों की शिक्षा के लिए ऊँची व्यवस्था की तथा प्रत्येक को इस बात की छूट दी गयी कि वह अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा ग्रहण करें।[2] मुहम्मद सालेह कम्बू जो आसफ खाँ के नाम शाहजहाँ कृत एक रूक्का (पत्र) उदधृत किया था, जबकि उसकी शैली में न तो जहाँगीर की तरह से लालित्य ही था और न ही उसमें औरंगजेब की तरह से गठन और सादगी थी। फिर भी इसमें लेखक का कौशल स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। साधारण व्यक्तियों के लिए इस प्रकार रचना करना असम्भव माना जाता था।[3] इसके अतिरिक्त सालेह ने सम्राट की साहित्यिक गोष्ठियों की विस्तार से चर्चा की है। उसके कहने के अनुसार समय-समय पर साहित्यकार, विद्वान और दार्शनिक दरबार में इकट्ठे होते थे और वे अपने अपने विषयों पर बहस करते थे।[4] सम्राट

1. मुगल सम्राट, शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 257
2. वही, पृष्ठ 257
3. वही, पृष्ठ 257
4. वही,पृष्ठ 257

भी इनमें भाग लेते थे और वह अपने सरल स्वभाव के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करते थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनका ज्ञान भण्डार व्यापक था।[1]

सम्राट का स्थान साहित्य के तरफ था और उनके कुछ दरबारी भी उच्च कोटि के साहित्यकार माने जाते थे। अलीमर्दन खाँ, सादुल्ला खाँ, सईद खाँ, जफर खाँ, खानजाद खाँ, मीर जुमला, अफजल खाँ, राजा जय सिंह इत्यादि ये लोग लेखनी के उतने ही धनी थे जितने की तलवार के। साहित्य के क्षेत्र में उनकी कृतियां प्रशंसा के योग्य थीं।[2] सादुल्ला खाँ ने एक फरमान (सम्राट की ओर से) मुल्ला अब्दुल हकीम सियालकोटि को लिखा था, जो कि शब्द विन्यास का एक उत्तम नमूना माना जाता है लेकिन कुछ लोगों का ये कहना है कि इसकी रचना में शाहजहाँ का भी हाथ था।

शाहजहाँ के दरबारियों ने दरबार की परम्पराओं को विभिन्न प्रान्तों में प्रसारित किया।[3]

संस्कृत तथा हिन्दी के प्रमुख साहित्यकार :-

शाहजहाँ ने अपने दरबार में बहुत से संस्कृत तथा हिन्दी के विद्वानों को आश्रय प्रदान किया जिन्होंने बहुत ज्यादा विविध पुस्तकों की रचना की तथा संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य को समृद्ध भी बनाया। विद्वान राजाओं ने भी स्वयं अनेकों ग्रन्थों की रचना की तथा अपने पुस्तकालयों मे भी अनेको दुर्लभ पुस्तकों का संग्रह किया।

सुन्दरदास :-

ये ग्वालियर के ब्राह्मण[4] थे। ये शाहजहाँ के दरबार में कविता सुनाते थे। बादशाह ने इन्हें पहले कविराय की और फिर महाकविराय की पदवी दी थी।

---

1. मुगल सम्राट, शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 257
2. वही, पृष्ठ 257
3. वही, पृष्ठ 257
4. मिश्र,श्याम विहारी (रामवहादुर)- मिश्र बन्धु, विनोद, भाग-2, पृष्ठ 454-55; दास,श्याम सुन्दर (रायसाहब) हिन्दी शब्द सागर,भाग-4, उपसंहार, पृष्ठ 129

सवृत 1688 में इन्होने "सुन्दर श्रृगांर" नामक नायिका भेंद का एक ग्रन्थ लिखा। कवि ने रचना की तिथि इस प्रकार से दी है-

"संवत सोरह सै बरस, वीते अठतर सीति।
कार्तिक सुदि सतमी गुरौ, रचे ग्रन्थ करिप्रीति।।"

इसके अतिरिक्त सिंहासन बत्तीसी और "बारहमासा" नाम की इनकी दो पुस्तकें और कही जाती है यमक और अनुप्रास की ओर इनकी विशेष प्रवृति मानी जाती है। इनकी रचना शब्द चमत्कार पूर्ण है।[1] जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

"काके गये बसन पलटि आए बसन,सु
मेरो कछु बस न रसन उर लागे हौं।
भौहें तिरछौ हैं कवि सुंदर सुजान सो है,
कछु अलसौ है गौर है जाके रस पागे हौ।।
परसौ मैं पाय छुते परसों मै पाय गहि,
परसौ वे पाय निसि जाके अनुरागे हौ।
कौन बनिता कै हौ जू कौन बनिता के हौसु,
कौन बनिता के बनि, ताके संग जागे हौ।। [2]

चिन्तामणि :-

चिन्तामणि[3] तिकवाँपुर (कानपुर) के निवासी थे। ये रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। भूषण, मतिराम और जटाशंकर ये तीनों इनके भाई थे। तीनों काव्य कला में बहुत निपुण माने जाते थे किन्तु चिन्तामणि इन तीनों में सबसे श्रेष्ठ थे। काव्य

---

1. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र- हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ 158
2. वही, पृष्ठ 158
3. मिश्र बन्धु विनोद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 457-59; हिन्दी शब्द सागर, भाग-2, पर्वोद्धृत, उपसंहार, पृष्ठ 133; शर्मा, देवेन्द्र- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास,भाग-5, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी संवत 2031, पृष्ठ 312-28

शास्त्र में वह एक नयी शैली का प्रर्वतक माने जाते थे। सर्व सम्मति से वह अपने युग का सबसे उत्कृष्ट कवि थे। बहुत दिनों तक वह राजा मकरंद शाह के आश्रित बने रहे।

"सूरजवंशी भौसंला लसत शाह मकरंद।
महाराज दिग्पाल जिमि, माल सुवंद सुभ चंद।।
चिन्तामणि कवि को हुकुम किया साहि मकरंद।
करौ अच्छि अच्छन सहित भाषा पिंगल छंद।। [1]

मकरंद शाह के बाद वह बाबू रूद्रशाहि सुंलकी के यहाँ चला गया था और फिर उसके बाद वह शाहजहाँ के दरबार में आया। इसने पाँच ग्रन्थों की रचना की थी, काव्य विवेक, कविकुल, कल्पतरू, काव्य प्रकाश, रसमंजरी, पिंगल और रामायण। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त राजपुस्तकालय दतिया में श्रृगांर मंजरी नामक एक और ग्रन्थ भी उपलब्ध हुआ है, जिसके आरम्भ के छन्दों में चिन्तामणि का नाम आया है सम्भवतः संस्कृत के अनुवाद से ही उसकी हिन्दी छाया प्रस्तुत की गयी है।[2]

बस्तुतः चिन्तामणि ब्रज भाषा के कवि माने जाते थे। कविकुल कल्पतरू में कुल आठ प्रकरण माने गये हैं। इस ग्रन्थ का विशेष भाग गम्भीर, सुव्यवस्थित एवं सुसंवद्ध माना जाता है। शास्त्रीय सामग्री के निर्वहन की दृष्टि से भी यह प्रयास अत्यन्त स्तुत्य माना है।[3] इसमें काव्य शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिपादन दोहा-सोरठा छन्दों आदि में किया गया है। इनकी दूसरी कृति पिगंल छन्द ग्रन्थ मानी जाती है। इसमें छन्दों के लक्षण प्रस्तुत किये गये हैं। इसके अन्त में पद्यावली, कुंडलियाँ, अमृतध्वनि, द्विपदी और भूलना के लक्षण उदाहरण सहित बताया गया है। इनके रामायण को विशेष प्रसिद्धि उसके चित्ताकर्षक कवित्त और छन्दों के कारण मानी जाती है।

निःसन्देह चिन्तामणि आचार्य माने जाते थे। इनका ध्यान बहुत गौरवपूर्ण

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 273
2. वही
3. वही

था। इनकी रचनाओं में श्रृगार रस का परिपाक देखने को मिलता है। इन्होनें ब्रजभाषा का स्वछन्द प्रयोग किया है उदाहरण के रूप में यह छन्द माना जाता है।[1]

कैसरि बारहि बार उतारत,
कैसरि अंग लगावन लागी।
आई है नैननि चंचलता दृंग,
आंचल आप छिपावन लागी।
दूलह के अवलोकन को वा,
अटारि अरोकन आवनि लागी।।
मास दो तनिक ते बतियाँ,
मनभावन की मनभावन लागी।। [2]

कविन्द्राचार्य :-

कविन्द्राचार्य बनारस के रहने वाले थे।[3] उनकी रचनाओं में अवधी और ब्रज भाषा का अति सुन्दर सम्मिश्रण पाया जाता है। कविन्द्र कल्पना में उन्होनें शाहजहाँ का प्रशस्तिगान किया है। यह संस्कृत के सम्मानित विद्धान माने

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 273
2. वही
3. मिश्र वन्धु विनोद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 453-54

प्रोफेसर कानूनगों ने अपने ग्रन्थ "दाराशिकोह" में यह कहा है- "जहाँगीर ने तीर्थ यात्रा कर पुनः लगा दिया था।" परन्तु इस कथन के लिए कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है। कविन्द्राचार्य की प्रशस्ति, जो कि उसे समर्पित की गई थी उससे केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः किसी भी स्थानीय सरकारी कर्मचारी ने केवल बनारस में ही उक्त कर का पुनः संचालन कर दिया होगा। साम्राज्य में और किसी भी तीर्थ स्थान से इस प्रकार की कोई भी शिकायत उपलब्ध नहीं हुई है।

(सक्सेना द्वारा उदद्धत) दाराशिकोह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 277 और टिप्पणी

जाते थे तथा सरस्वती इनकी उपाधि मानी जाती थी। इनका प्रभाव शाहजहाँ और दाराशिकोह दोनों पर पड़ा था। इन्हीं के कहने पर सम्राट ने तीर्थ यात्रा कर जो जहाँगीर ने पुनः लगाना शुरू किया था उसे माफ कर दिया। कविन्द्रचार्य को इस कार्य से बहुत अधिक ख्याति प्राप्त हुई। इसके कारण देश के लगभग 101 विद्धानों ने इनको एक प्रशस्ति संग्रह अर्पित किया था।[1] इन विद्वानों में बंगाल के प्रख्यात नैचायिक महमहोपाध्यापय विश्वनाथ न्याय पंचानन का नाम आता है। उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता है, कि जब दरबारे आम में कविन्द्राचार्य ने करूणामय शब्दों में इस सम्बन्ध में अपील की तो शाहजहाँ और दाराशिकोह के आँसू बहने लगे।[2]

बिहारीलाल :-

उन्हें माथुर चौवे कहा जाता है। इनका जन्म सम्बत 1660 के लगभग ग्वालियर के पास बसुवा गोविन्दपुर में माना जाता है। एक दोहे के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि इनकी वाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बीती और तरूणावस्था में ये अपनी ससुराल में आ गये थे।[3] अनुमानतः 1720 तक ये रहे। ये जयपुर के रहने वालेमिर्जा राजा जयसाह (महाराज जयसिंह) के दरबार में रहते थे। ऐसा कहा जाता है कि कपीश्वर जिस समय जयपुर पहुंचे उस समय महाराज अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने ज्यादा लीन थे कि राजकाज देखने के लिए वह महलों के बाहर नहीं निकलते थे। सरदारों की सलाह से बिहारी ने यह दोहा किसी प्रकार महाराज के पास अन्दर भिजवाया-

नहिं पराग नहिं मधुर मधु,नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो वँहयो, आगे कौन हवाल ।।[4]

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 274
2. वही, पृष्ठ 274
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 170
4. वही, पृष्ठ 170

ऐसा कहा जाता है कि इस पर महाराज बाहर निकल आये और तभी से विहारी का मान बढ़ गया। बिहारी को महाराज ने इसी प्रकार के सरस दोहे बनाने की आज्ञा दी। बिहारी दोहे बनाकर महाराज को सुनाने लगा और उसे प्रति दोहे पर एक अशर्फी मिलने लगी। इसी प्रकार से सात सौ दोहे बने जो संगृहीत होकर "बिहारी सतसई" के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

"बिहारी सतसई" को श्रृंगार रस के ग्रन्थों में जितनी ख्याति प्राप्त हुई उतना और किसी को नहीं। इनका एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य में एक-एक रत्न माना जाता है। इनकी पचासों टीकाएं रची गयी हैं।[1]

बिहारी ने इस सतसई के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। यही एक ग्रन्थ उनकी इतनी बड़ी कीर्ति का आधार है। साहित्य के क्षेत्र में यह बात इस तथ्य की घोषणा कर रही है कि किसी भी कवि का यश उसकी रचनाओं के परिमाण के हिसाब से नहीं होता है। बल्कि उसके गुण के हिसाब से होता है। मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरम उत्कर्ष को पहुच गया है।[2]

मतिराम

ये रीतिकाल के मुख्य कवियों में से हैं और ये चिन्तामणि तथा भूषण के भाई परम्परा से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म तिकवापुर (जिला कानपुर) में संवत 1674 के लगभग हुआ था और ये बहुत दिनों तक जीवित रहे। ये बहुत समय तक बूँदी के महाराज भावसिंह के यहाँ रहे और उन्हीं के आश्रय में अपना "ललित ललाम" नामक अंलकार का ग्रन्थ संवत् 1716 और 1745 के बीच किसी समय बनाये। इनका "छन्दसार" नामक पिगंल ग्रन्थ महाराज शम्भुनाथ सोलंकी को समर्पित है। इनका रसराज नामक परम मनोहर ग्रन्थ किसी को समर्पित नहीं है। इसके अलावा इनके दो और ग्रन्थ हैं। "साहित्यसार" और "लक्षणश्रृगार" बिहारी सतसई के ढंग पर इन्होने "मतिराम सतसई" भी बनाया

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 171
2. वही, पृष्ठ 171

जो हिन्दी पुस्तकों की खोज में मिली है। सरसता में इनके दोहे बिहारी के दोहे के समान है।[1]

इनकी रचना की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सरलता अत्यन्त स्वाभाविक हैं, उनमें न तो भावों की ही कृत्रिमता है, और न भाषा की है "रसराज" और "ललित ललाम" मतिराम के ये दो बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, क्योंकि रस और अंलकार की शिक्षा में बराबर इनका उपयोंग होता चला आया है। वास्तव में अपने विषय के ये अनुपम ग्रन्थ माने गये हैं।[2]

नाथ हरिनाथ

ये काशी के रहने वाले गुजराती ब्राह्मण थे। संबत् 1826 में इन्होने "अलंकार दर्पण" नामक एक छोटा सा ग्रन्थ बनाया जिसमें एक-एक पद के भीतर कई-कई उदाहरण है। इनका क्रम औरों से विलक्षण माना जाता है। पहले ये अनेक दोहों में बहुत से लक्षण कहते गए हैं फिर एक साथ ही सबके उदाहरण कवित्त आदि में देते गए हैं। कविता साधारणतः अच्छी मानी जाती है। एक दोहा इस प्रकार है-

तरूनी लसति प्रकाश तें,मालति लसति सुबास।
गोरस गोरस देत नहिं, गोरस बहति हुलास।[3]

जयपुर राज्य के साहित्यकार मिर्जा राजा जय सिंह (1621-1667)

राजा जय सिंह स्वंय सुसंस्कृत थे तथा वे अन्य भाषाओं के मर्मज्ञ थे।[4] वे विद्वानों का बड़ा आदर करते थे। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारी उन्हीं

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 175
2. वही, पृष्ठ 175
3. वही, पृष्ठ 204
4. शार्मा, गोपीनाथ-राजस्थान का इतिहास, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पन्नी आगरा 1973, पृष्ठ 386

के दरबार के थे।[1] बिहारी के भांजे कुलपति मिश्र थे,[2] जिन्होने लगभग बावन ग्रन्थों की रचना की, किन्तु अभी तक केवल तेरह ग्रन्थ ही उपलब्ध हुए है।[3] कुलपति मिश्र ने मिर्जा राजा के साथ दक्षिण में रहते हुए शिवाजी के विषय में लिखा था। जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा उपयोगी माना जाता है।[4] कविराय भी जयपुर दरबार से सम्बन्धित थे जिन्होने जय सिंह चरित नामक एक पुस्तक की रचना की। मिर्जा राजा जय सिंह के राज्यकाल में अनेक काव्य ग्रन्थों तथा भक्ति ग्रन्थों की रचना हुयी थी जिनमें धर्म प्रदीप, भक्ति निर्णय भक्ति रत्नावली, भक्ति निवृति, टरनकर रत्नावली आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[5]

वीकानेर राज्य के साहित्यकार महाराजा कर्ण सिंह (1621-1669)

कर्ण सिंह स्वयं एक विद्वान तथा विद्या के अनुरागी थे। उनके राज्य में बहुत से विद्वान लोग आश्रय प्राप्त किए थे उनके समय में बहुत से ग्रन्थों की रचना हुई। कर्ण सिंह ने स्वयं कई विद्वानों की सहायता से साहित्य कल्पद्रुम की रचना की उसमें दरबारी कवि गगानन्द मैथिल ने कर्ण भूषण तथा कर्ण सन्तोष की रचना की। वृत्त सारावली की भी रचना उन्हीं के समय में मानी जाती थी। ये ग्रन्थ अनूप संस्कृत पुस्तकालय वीकानेर में सुरक्षित है।[6]

जोधपुर राज्य साहित्यकार महाराजा जसवन्त सिहं

जोधपुर के नरेश महाराजा जसवन्त सिंह एक उत्कृष्ट कवि थे। भाषा भूषण इनकी सर्वश्रेष्ठ कृति हैं जिनमें अंलकारों का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया

---

1. मिश्र,डा0 भागीरथ-हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास,भाग-7,नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, सं0 2029, वि. पृष्ठ 363
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 179
3. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, भाग-7, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 264
4. राजस्थान का इतिहास, पूर्वाद्धृत, पृष्ठ 386
5. वही, पृष्ठ 386
6. वही, पृष्ठ 410

गया है और इसके साथ ही साथ उदाहरण भी दिए गये हैं।[1] भाषा भूषण के अतिरिक्त और भी जो ग्रन्थ इन्होने लिखे है वे तत्व ज्ञान सम्बन्धी माने जाते है, जैसे अपरोध सिद्धान्त, अनुभव प्रकाश, आनन्द विलास, सिद्धान्त बोध, सिद्धान्तसार, नाटक, प्रबोध, चन्द्रोदय इच्छा विवेक।

जसवन्त सिंह के मंत्री मुहणोत भेणसी भी एक उत्कृष्ट साहित्यकार था। उसके द्वारा रचित "ख्यात" ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण था। इसमें राजपुताना, गुजरात, कढियावाड़ बुघेलखण्ड एवं बुन्देलखण्ड का इतिहास मिलता है इसमें जोधपुर राज्य के परगनों व गाँवों का ऐतिहासिक व भौगोलिक वर्णन किया गया है तथा इसमें राठौरौ की विभिन्न जातियों का विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है।[2]

जसवन्त सिंह के अन्य आश्रित कवियों में दलपति मिश्र ने जसवन्त उधोत नरहरिदास बारहठ ने अवतार चरित्र, नरसिंह अवतार कथा आदि अनेकों प्रकार की भक्ति से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना की है। नवीन एवं निधान महाराजा के अन्य आश्रित कवि थे। जोधपुर के कवि वृन्द की सतसई साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है।[3]

जोधपुर की साहित्यिक परम्परा अजीत सिंह के समय में भी बनी रही। अजीत सिंह की सर्वश्रेष्ठ रचना गुणसार है।[4] यह रचना एक वृहद ग्रन्थ न होकर अनेक रचनाओं का संग्रह माना जाता है। इसमें प्रायः हिंगुलाज देवी की स्तुति, देवी चरित्र, शुंभ निशुंभ वध, सवाँग रक्षा कवच भवानी हसस्वनाम भवानी स्तुति, दुहा श्री ठाकुरा रा, हुआश्री अजीत सिंह की अन्य रचनाओं में

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 169-70
2. जैन, सतीश कुमार- प्रोगेसिव जैनस आफ इण्डिया, प्रकाशन वर्णन साहित्य संस्थान, प्रथम संस्करण, 1975, पृष्ठ 5;
   महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266
3. वही, पृष्ठ 266-67
4. इसकी मूल प्रति पुस्तक प्रकाशन जोधपुर में उपलब्ध है।

गज-उद्धार ग्रन्थ[1], भाव विरही[2] है। इन रचनाओं के अतिरिक्त अजीत सिंह के लगभग दो सौ चौतीस दोहे अजीत सिंह रे विरेवे रे दोहे, के नाम से प्रसिद्ध है।[3] अजीत सिंह के अन्य आश्रित कवियों में भट्ट जगजीवन का "अजीतोदय" महत्वपूर्ण महाकाव्य है।[4] बालकृष्ण दीक्षित लिखित "अजीत चरित्र" संस्कृत भाषा का एक ग्रन्थ है।[5] अजीत सिंह के अन्य आश्रित कवियों में द्वारकादास, दधवाड़िया, हरीदास व श्यामराम थे।[6]

मेवाड़ राज्य के साहित्यकार राजसिंह (1652-1680)

कुम्भा के बाद सबसे अधिक साहित्यिक प्रगति राजसिंह के समय में हुई। राजसिंह स्वयं एक अच्छे कवि थे। वह विद्वानों के पोषक एवं संरक्षक भी थे। उनके समय में स्थानीय कवियों में मानकवि, सदाशिव, रणददोण भट्ट के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[7] राजसिंह डिंगल भाषा में विशेष रूप से रूचि रखते थे। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त डिंगल भाषा को जितना अधिक प्रश्रय राजसिंह के समय में मिला था उतना मेवाड़ के किसी भी शासक के समय में नहीं मिला था।[8]

---

1. यह ग्रन्थ परम्परा के 17वें अंक में श्री नरायण सिंह भाटी के सम्पादन में प्रकाशित हो गया है। महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 268
2. इस रचना के केवल चार पत्र गुणसार ग्रन्थ सं. 16, पुस्तक प्रकाश,जोधपुर में है।
3. सुमेर पब्लिक लाइब्रेरी, जोधपुर में इसकी हस्तलिखित प्रतिलिपि है। महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 169
4. इसकी मूल प्रतिलिपि पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में है और भाषानुवाद राजकीय पुरलेखा विभाग वीकानेर में वस्ता नं. 43 में प्राप्य है।
5. इसकी प्रतिलिपि पुस्तक प्रकाश, जोधपुर में प्राप्य है।
6. महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 271
7. राजस्थान का इतिहास, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 350
8. वही, पृष्ठ 353

कवि सईदाई गीलानी

शाहजहाँ के दरबार में विशुद्ध फारसी भाषा का पुराना कवि सईदाई गीलानी थे। जहाँगीर के काल से ही यह आभूषण विभाग के दरोगा थे। उनकी रचनाओं में प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों मनोभावों का सम्मिश्रण है।[1] उनके कुछ तिथि छन्द अत्यधिक चित्ताकर्षक है। शाहजहाँ ने इनको बेबदल खाँ की उपाधि प्रदान की थी। यह कवि और कुशल कारीगर दोनों ही थे। इन्ही की देख रेख में मयूर सिहांसन बन कर तैयार हो गया तो विभिन्न कवियों ने तिथि छन्द रचे।[2]

सईदाई गीलानी ने इस अवसर पर 134 पक्तियों का एक कसीदा लिखा जिसकी प्रत्येक पंक्तियों से शाहजहाँ के समय की घटनाओं की तिथि निकाली जाती है।

इतिहासकार अब्दुल हमीद लाहौरी ने इसकी बहुत अधिक प्रशंसा की है तथा उसने उनकी अनेक पंक्तियों को भी उदधृत किया है उनकी एक गजल इस प्रकार से शुरू होती है।[3]

1. सालिह, मुहम्मद सालिह कम्बो- अमल-ए-सालिह, विवलिओथिका इण्डिका, पन्ना 702, शाहनवाज खाँ, मआसिर-उल-उमरा, सम्पादक मालवी अबदुर्रहीम, विवलिओथिका इण्डिका, कलकत्ता 1888, पृष्ठ 405-8; बज्में तैमूरिया, पृष्ठ 202-6 (सक्सेना द्वारा उदधृत)
2. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 261
3. वही, पृष्ठ 261

स्वर्ण रकाब वाला वह चन्द्र
अश्व पर सवार आ रहा है,
'उसको देखकर' हजारों सूर्यो के
मुख पर अश्रु झरने लगते हैं,
तू अपने सौन्दर्य में मस्त है
और मैं अपने प्रेम में फिर पर्दा किसलिए।
इस प्रकार की दुगुनी मस्ती
मदिरा से नहीं आती ।[1]

कलीम :-

शाहजहाँ के दरवार में अबू तालिब कलीम राजकवि थे। उनकी जन्म भूमि काशान थी किन्तु उनका पालन पोषण हमदम में हुआ था।[2] जहाँगीर के राज्य काल में वह भारत आये थे तथा यहाँ पर उनको मीर जुमला का संरक्षण प्राप्त हुआ था और उसने अनेको रूह-अल-अमीन का उपनाम प्रदान किया। परन्तु सम्राट को वह राजकवि तालिब आमली के मुकावले में नहीं जंचा तथा इसी कारण वह ईरान लौट गया। कुछ दिनों के उपरान्त वह पुनः भारत आया तथा शाहजहाँ के राजतिलक के बाद वह फिर से शाही सेवा में प्रविष्ट हो गया। सम्राट उसके गुणों से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने उनको उच्चतम सम्मान प्रदान कर दिया। मयूर सिहांसन की प्रशंसा में उसने एक कसीदा लिखा। उसकी कुछ पक्तियाँ इस प्रकार है[3]-

प्रथम शब्बाल को नौरोज का प्रारम्भ धन्य है,
आनन्द के सुमनों की वर्षा मास और वर्ष पर हो रही है।
रत्न जटित सिहांसन की प्रशंसा करते-करते मेरे मुख से भी रत्न झरने लगे,
भगवान उसको खिज्र (अमरता) की आयु प्रदान करें।

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 261
2. वही, पृष्ठ 261
3. वही, पृष्ठ 262

यह कसीदा शाहजहाँ को इतना अधिक पसन्द आया कि उसने प्रसन्न होकर कलीम को रूपयों से तुलवा दिया था।[1] उनके दीवान में सम्राट को सम्बोधित कसीदे पाये जाते है, उनकी बनवाई हुई इमारतों के वर्णन में मसनवियां पायी जाती है तथा कश्मीर के प्रान्तपति की शान में एक साकीनामा भी है। वादशाह नामा को भी उसने पद्य बद्ध किया है।[2]

कुदसी :-

कवियों की पुष्पवाटिका के सबसे मनमोहक सुमन हाजी मुहम्मद जान उपनाम कुदसी थे। उनके काव्य के लालित्य को बहुत अधिक प्रशंसा प्राप्त थी। यह मशहद के निवासी थे। वह मक्का व मदीना में शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात भारत आये थे। यहाँ आने के पश्चात उन्होने अब्दुल्ला खाँ की शान में एक कसीदा लिखा। इसे सुनकर अब्दुल्ला खाँ बहुत अधिक प्रसन्न हुए और वे अपनी मसनद से उठकर खड़े हो गये और उसके पश्चात वह कुदसी को उस पर बैठा दिये, फिर शिविर से बाहर निकलकर उन्होनें उसे सारा सामान भेंट कर दिया।[3] इसके पश्चात शीघ्र ही शाहजहाँ की निगाह उस पर पड़ गयी। कुदसी दरबार में आये और फिर उन्होने सम्राट को एक कसीदा सुनाया जिसकी कुछ पक्तियां इस प्रकार है।[4]

ए लेखनी, अपने पर प्रसन्न हो और हर्ष से अपनी जिह्वां खोल, (ऐसे व्यक्ति) की प्रशंसा में जो कि प्रतिष्ठा का सर्वोच्च स्तम्भ तथा विश्व का सम्राट है।

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 262
2. सादिक खॉ- तवकात-ए-शाहजहाँनी, पन्ना 322 (सक्सेना द्वारा उदधृत) अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 698; ब्राउन, इ.जी. हिस्ट्री आफ पार्शियन लिटरेचर इन मार्डन टाइम्स (1500-1924) पृष्ठ 258-59; शिवली नोमानी शेर-उल-आजम, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, संस्करण 1910-1922 भाग-3 पृष्ठ 185-208, बज्मे तैमूरिया, पृष्ठ 180-84 (सक्सेना द्वारा उदधृत)।
3. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 262
4. वही, पृष्ठ 262

शाहबुद्दीन मुहम्मद जिसकी कि सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रथम सत्व के आदर्शानुसार सेवा हेतु आकाश ने कमर कस ली है।[1]

शाहजहाँ इसे सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा कुदसी उनकी कृपा के पात्र बन गये। शाहजहाँ उन्हे निरन्तर पुरस्कृत करते रहे। उन्होनें बादशाहनामा को छन्द बद्ध किया, तथा कश्मीर की पुष्पवाटिकाओं का वर्णन पद्य में किया। उन्होने एक काव्य में शाहजहाँ द्वारा सन् 1630 ई. तक निर्मित सभी इमारतों का तिथि छन्दों में विवरण दिया है।[2] उन्होने कश्मीर की प्रशंसा को तथा मार्ग के कष्टों के बारे में एक मसनबी लिखा है। जहांनआरा बेगम के जलने के समय का तथा उसके स्वस्थ होने के बाद का दोनों अवसरों पर उन्होने काव्य की रचना की है। जलने के समय उन्होने एक चतुष्पद छन्द सम्राट को प्रस्तुत किया जिसकी अंतिम पक्ति यह है-

मोमवत्ती को इतना घृष्टता करना शोभा नहीं देता,
पतिंगा मोमवत्ती के प्रेमवश जल जाना था।[3]

काशी :-

काशी का जन्म शीराज में हुआ था। इनका पूरा नाम मीर मुहम्मद याहिया काशी था। इन्हे भारत में आने के पश्चात सम्राट तथा राजकुमार दाराशिकोह का आश्रय मिला था। शाहजहाँनावाद बनने के पश्चात काशी ने एक यह तिथि-छन्द लिखा-

"शाहजहानाबाद शाहजहाँ वादशाह द्वारा बसा।"[4]

---

1. वही, पृष्ठ 262
2. वही, पृष्ठ 262
3. तबकात-ए-शाहजहॉनी, पूर्वोद्धृत, पन्ना 324; अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पन्ना 696-97; रेड, चार्ल्स-कैटलाग आव दि पार्शिथन मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि विट्रिश म्युजियम, पृष्ठ 178-80; बज्मे तैमुरिया पृष्ठ 178-80 (सक्सेना द्वारा उदधृत)।
4. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 263

सम्राट ने प्रसन्न होकर कवि को पॉच हजार रूपया इनाम दिया। इन्हें बादशाहनामा को छन्दवद्ध करने का काम सौपा गया और ऐसा कहा जाता है कि सम्राट उनसे अप्रसन्न हो गया और यह काम अधूरा रह गया।[1] इसके बारे में ऐसा भी कहा जाता है कि बादशाहनामें को छन्दबद्ध करते हुए कवि ने यह पक्ति लिखि-

जगत सिंह राजपूतों का सिरमौर था,
नौ आकाश एक दर्पण के समान है
उन पर वह एक पत्थर के समान था।[2]

शाहजहाँ ने इस पंक्ति पर आपत्ति प्रकट की और कहा कि जगत सिंह को राजपूतों का सिरमौर कहना उचित नहीं प्रतीत होता है, और दूसरे संग (पत्थर) और सिंह में ठीक तुकान्त भी नहीं बैठता था। कवि ने इस पर उत्तर दिया कि ''हम मुगल है, शब्दों में इस प्रकार का भेद नहीं मानतें।[3]

साएब :-

साएब इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं इन्हे एक नयी शैली का प्रवर्तक माना गया है।[4] ये बहुत दिनों तक काबुल में रहते थे जहाँ पर उनको जफर खाँ का आश्रय प्राप्त था। शाहजहाँ ने उनका उचित रूप से स्वागत किया तथा उन्हें मुस्तेद खाँ की उपाधि प्रदान की।[5] कवि को वह अपने साथ दक्षिण ले गये और वहाँ वह अपने संरक्षक जफर खाँ के साथ कश्मीर चले गये। उनका मन भारत में नही लगा क्योंकि उनको अपने पिता से दूर रहना खल रहा था। उन्होने सम्राट से मेशंहद जाने की आज्ञा माँगी। सम्राट ने उन्हें केवल जाने की

---

1. केटलाग आव दि पार्शियन मैनुस्क्रिप्टस इन दि विट्रिश म्युजियम, 1852, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 1001; बज्में तैमूरिया, पृष्ठ 206 (सक्सेना द्वारा उद्धृत)
2. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 263
3. वही
4. वही
5. वही

ही आज्ञा नहीं दी बल्कि उन्हें पाँच सौ रूपया रास्ते के खर्च के लिए दिया।[1] साएब इसी बाहने इरान लौट गये तथा वहाँ पर शाह अब्बास द्वितीय ने उनकों राजकवि नियुक्त कर दिया। साएव की कविता की प्रसिद्धि का व्यापक प्रसार उनके जीवनकाल में ही हो गया था। उन्हे ईरान का अन्तिम श्रेष्ठ कवि माना जाता है।[2]

सलीम :-

सलीम तेहरान के रहने वाले थे।[3] वह अन्य कवियों की ही भाँति आश्रय की खोज में भारत आये थे। वह तुरन्त ही छन्द को रच लेते थे। उनमें आशु सृजन का भी सामर्थ्य था।[4] इतना होने के बावजूद भी उनकी कविता लोकप्रिय न हो सकी और न ही उनकी योग्यता को व्यापक मान्यता ही प्राप्त हुई। वह इस्लाम खाँ की सेवा करते रहे। कूचविहार तथा आसान से सम्बन्धित उनकी कृतियों का विवरण एक लघु मसनवी से है।[5]

मसीह :-

हकीम रूकनुददीन उपनाम मसीह काशान के रहने वाले थे।[6] पहले वह शाह अब्बास प्रथम की सेवा करते थे परन्तु उनसे विगड़ कर वह भारत चले आये थे। यहाँ आने के बाद वह जहाँगीर और शाहजहाँ के कृपापात्र बन गये। कुछ समय के पश्चात वह ईरान लौट गये और वहीं पर सन् 1656 ई.

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 263
2. कैटलाग आव दि पर्शियन मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि विट्रिश म्युजियम पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 202; हिस्ट्री आव पर्शियन लिटरेचर इन मार्डन टाइम्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265-76; वज्मे तैमूरिया, पृष्ठ 194-95 (सक्सेना द्वारा उदधृत)
3. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 263
4. वही
5. अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 703; कैटलाग आव दि पार्शियन मैनुस्क्रिप्टस इन दि विट्रिश म्युजियम, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 264
6. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 264

में उनकी मृत्यु हो गयी। वह कवि ही नहीं बल्कि उच्च कोटि के चिकित्सक भी थे।

शाहजहाँ उन्हे बराबर याद करते थे और वह उनके लिये उपहार भी भेजते थे। ऐसा कहा जाता है कि मसीह के दीवान में एक लाख पक्तियाँ थी।[1] जब वह ईरान के शाह से नाराज होकर भारत आये थे तब वह यहाँ से अपने भूतपूर्व स्वामी को एक कसीदा लिखकर भेजे थे जिसकी प्रारम्भिक पक्तियां इस प्रकार है।

यदि आकाश का सिर सहसा प्रातः काल मेरे प्रति वोझिल हो जाय तो सांयकाल तक मैं उसके राज्य से सूर्य के समान बाहर चला जाता हूँ।[2] शाहजहाँ ने अपने राजतिलक के पश्चात् ये चार पक्तियाँ लिख कर पेश की-

विश्व का सम्राट शाहजहाँ।
प्रसन्नचित हर्षपूर्ण और सफल रहे।
उसके राजतिलक का वर्ष मैने यो वताया।
विश्व में रहे जब तक कि विश्व का अस्तित्व रहे।[3]

उसे इनाम में बारह हजार रूपये मिले।

रफ़ी :-

हसन वेग, ''रफ़ी'' उपनाम से काव्य रचना करते थे। वे मेशहद से बुखारा आये थे यहाँ पर उनको नज्र मुहम्मद खाँ ने फरमान तथा आज्ञा पत्र लिखने के काम में लगा दिया था।[4] सन् 1645 के लगभग भारत आये थे। यहाँ

---

1. अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पन्ना 795; इथे हरमैन-कैटलाग आव पर्शियन मैनुस्क्रिप्टस इन दि लाइब्रेरी आव दि इण्डिया आफिस नं. 1572; वज्मे तैमुरिया, पृष्ठ 196-97 (सक्सेना द्वारा उदधृत)
2. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 264
3. वही, पृष्ठ 264
4. वही

पर आने के पश्चात जब वह सम्राट शाहजहाँ के दरबार में कसीदा पढ़े, यहाँ पर उसे सरोपा और 3000 रूपये नगद तथा पाँच सदी का मनसब भी मिला।[1] वह पेशेवर कवि नहीं थे फिर भी उनकी शैली में एक मधुर प्रवाह था। जब भी वह अपनी रचनाओं को सम्राट के सामने रखते थे, उनकी बहुत अधिक प्रशंसा होती थी। शाहजहाँ नाबाद पर उन्होने एक मसनवी लिखा जिसमें मयूर सिहांसन की प्रशंसा में ये पक्तियां अंकित है-

यदि उसका पहरेदार निद्राग्रस्त हो जाय तो लाल माशी अपनी (आब) के छीटें उसके मुँह पर मारे।

यह कितनी सुन्दर और वांकी कल्पना है।[2]

फारूक :-

मुहम्मद फारूक रब्बाजा मुहम्मद सिद्धिक के गुणवान पुत्र थे।[3] वे पदाधिकारियों और दरबारियों के प्रिय थे तथा वे आनन्द दायक पत्र लिखते थे। सबसे पहलें उन्हें अफजल खाँ का संरक्षण प्राप्त हुआ था उसके बाद वह सईद खाँ के संरक्षण में काबुल में रहें।[4]

उम्मीशीराजी :-

उम्मीशीराजी यद्यपि नितान्त निरक्षर थे परन्तु फिर भी वह काव्य रचना में बहुत दक्ष थे। शाहजहाँ की उदारता एवं मुक्तहस्त से दान देने की प्रसिद्धि को सुनकर वह शीराज से शाहजहाँनाबाद आये थे और उसके बाद उन्होने शाही दरबार में कसीदे पेश किए तथा पुरस्कृत हो जाने के बाद वह घर लौट गये।[5]

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 264
2. अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 704; वज्में तैमुरिया पृष्ठ 207 (सक्सेना द्वारा उदधृत)
3. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265
4. तबकात-ए-शाहजहाँनी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 324(ब)-25
5. वज्में तैमूरिया, पृष्ठ 192-93, सक्सेना द्वारा उदधृत

बाक़िया नायनी :-

बाक्रिया नायनी शाहजहाँ के दरबार में एक लोकप्रिय कवि थे। उनका नाम वाकी था और उनकी जन्मभूमि नायन थी। वे ईराक और खुराशान में रहने के पश्चात भारत आये थे। सबसे पहले तालिब आमली के माध्यम से उनको एतमादुदौला मिर्जा गयास वेग का संरक्षण प्राप्त हुआ था। फिर वह राजकुमार खुर्रम के कृपापात्र बन गये थे। राजतिलक के बाद शाहजहाँ का उनके प्रति पहले के समान उदार व्यवहार रहा।[1] जब नौरोज के समारोह के समय वाकिया ने सम्राट के समक्ष एक कसीदा प्रस्तुत किया तो सम्राट ने कुदसी और कलीम के समान उनको भी रूपयों से तौलवाया और सारा धन उन्हें भेट में दे दिया।[2] बाक्रिया को संगीत कला का बहुत अच्छा ज्ञान था।

अब्दुल हमीद लाहौरी का कहना है कि "उनकी फारसी की रचनाओं में भारतीय स्वरों का सम्मिश्रण होने के कारण एक विचित्र आकर्षण है।[3] मुहम्मद सालेह कम्बू का कहना है कि- वह यूनान तथा ईरान के संगीत स्वरों के अनुसार गीत रचने में दक्ष है तथा अमीर खुसरब के समान "रेख्ता" में गीत लिखते हैं और भारतीय स्वर और लय का सम्मिश्रण कर अपनी रचना को चित्ताकर्षक कर देते है।[4]

मुनीर :-

भारतीय फारसी भाषा शैली में पद्य रचना करने बाले कवियों में सबसे पहला नाम मौलाना अबुल बरकत मुनीर उपनाम का है।[5] वे गद्य रचने में दक्ष थे तथा वह इतिहासकार मुहम्मद सालेह के जिगरी दोस्त थे। उनकी प्रतिभा केवल

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265
2. वही, पृष्ठ
3. वज्मे तैमूरिया, पृष्ठ 193, सक्सेना द्वारा उदधृत; पादशाह नामा, अंग्रेजी अनुवाद पूर्वोद्धृत भाग-1, अमल-ए-सालिह पूर्वोद्धृत, भाग-2
4. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265
5. अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पन्ना 710

फैजी से घट कर थी। उनकी कृछ रचनाएं मनमोंहक हैं।

शैंदा :-

मुल्ला शैदा[1] का पालन पोषण फतेहपुर सीकरी में हुआ था। उसके पश्चात वह दिल्ली में आकर बस गये थे। उनकी रसिकोक्ति बहुत तीखी थी और उनकी हाजिर जबाबी तात्कालिक थी। उनमें कुछ मौलिकता भी पायी जाती थी। वे एक घूट में कसीदा लिख देते थे।[2] कुदसी के तो वे कठोर आलोचक थे। अपने समकालीन मीर इलाही से उनकी जानी दुश्मनी थी। उनके आश्रय दाता क्रमशः अर्ब्दुररहीम खाने खाना, राजकुमार शहरयार और अन्त में शाहजहाँ हुए थे। उनको भारतीय होने का बड़ा गर्व था। ईरानी कवि लोग भारतीय फारसी के कवियों को रंच न गाँठते थे। शैदा ने इससे चिढ़कर ईरानी कवियों का मजाक उड़ाया था।[3] कुदसी के एक कसीदे की प्रत्येक पक्तियों की आलोचना की तथा अपनी आपत्तियों को उन्होनें छन्द वद्ध किया। उनकी एक पंक्ति यह है-

ए चतुर कवि, सोच विचार कर तौल,

क्योकि बुद्धि के तराजू में प्रत्येक अक्षर का पूरा पूरा मान होता है[4]

उनके घृष्टता तथा स्पष्ट वक्ता होने के कारण सम्राट शाहजहाँ उनसे कई बार असन्तुष्ट हो गये थे। एक बार तो उन्होने शैदा को दरबार से निकाल दिया था।[5] ऐसे अवसर पर जब कि शाहजहाँ को यह पक्ति सुनाई गई-

क्या तो जानता है कि लाल मदिरा विशुद्ध रस होती है,

सौन्दर्य की पोषक (ईश्वर) तथा प्रेम की पैगम्बर (ईश्वर का दूत) होता है।[6]

---

1. तबकात-ए-शाहजहाँनी, पूर्वोद्धृत, पन्ना 322; अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पन्ना 698-99, वज्में तैमुरिया, पृष्ठ 198-20, सक्सेना द्वारा उदधृत
2. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265
3. वही, पृष्ठ 266
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही

इस पर सम्राट को बहुत अधिक क्रोध आया और उन्होने शैदा को नगर से निकालने का दण्ड दिया। फिर शैदा ने अपनी सफाई में कवि सम्राट जानी की पक्तियाँ प्रस्तुत किये और फिर क्षमा याचना के रूप में एक लम्बा छन्द लिख दिया जिसकी अंतिम पक्ति यह है-

यदि बादशाह मुझे निकाल देगा तो मैं कहाँ का होकर रहूँगा,
तलवार जब हाथ से निकलती है तो कहाँ जाती है? [1]

सम्राट ने इस छन्द को सुनकर शैदा को क्षमा कर दिया। मखजने गंजूर के नमूने पर शैदा ने एक मसनवी की रचना की और उसका नाम "दौलते बेदार" रखा। अपने जीवन के अन्तिम समय में वे कश्मीर चले गये और वहीं पर उनकी मृत्यु हो गई।[2]

हाज़िक :-

हकीम हाज़िक, हकीम अवुल फतेहगीलानी के भतीजा थे। उनका जन्म और पालन पोषण भारत में हुआ था।[3] वे भारतीय और इरानी संस्कृति के सामजस्य का एक उत्कृष्ट नमूना है। राजतिलक के उत्सवों पर शाहजहाँ ने उनको 1500-6000 का मनसब प्रदान करने के बाद उन्हें राजदूत के रूप में तूरान भेज दिया।[4] वहाँ से वापस आने पर उन्होनें उन्हे अर्ज मुकर्रर के पद पर नियुक्त कर दिया। कुछ समय बाद उन्होंने अवकाश ग्रहण कर लिया। वे गर्वीले प्रवृत्ति के व्यक्ति थे, परन्तु उनकी सांस्कृतिक योग्यता बहुत ऊचे स्तर की थी। उनकी काव्य शैलीयों में पुराने एवं नवीन विचारों का सामजंस्य था। संवेग और भावनाओं से विभोर होकर वे कविता पढ़ते थे। उन्होने अनेको ग्रन्थो की रचना की वे अत्यन्त लोकप्रिय थे।[5] उनकी कुछ पक्तियां उदधृत है-

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 266
2. वही
3. वही, पृष्ठ 267
4. वही
5. तबकात-ए-शाहजहाँनी, पूर्वोद्धृत, पन्ना 321; अमल-ए-सालिह, पूर्वोद्धृत, पन्ना 710; वज्मे तैमूरिया, पृष्ठ 201-02, सक्सेना द्वारा उदधृत

"मेरा हृदय किसी प्रकार से भी शान्त नहीं होता,
मैं वसन्त ऋतु देखी, फूल देखे और पतझड़ देखा।।
आज राज मोमवत्ती के धुएं से गुलाब की सुगन्ध आती है।
। तो ऐसा प्रतीत होता है कि।
सम्भवतः बुलबुल ने अपने आँसु पतिंगे की राख पर गिराए हैं।।
मेरे हाथ में वह माला है
कि यदि मैं मर भी जाऊ तो वही फिरती रहेगी।। [1]

ख्याली :-

तबकाते शाहजहानी के लेखक के अनुसार हाफिज मुहम्मद ख्याली[2] योग्यता में अनवरी के सम स्तर के थे। ख्याली ने अपने जीवन में कभी भी न तो किसी धनवान के आगे हाथ फैलाया और न कभी किसी को प्रसन्न करने के लिए उन्होने काव्य रचना की। उन्हे जयोतिष, गणित ज्योतिष तथा गणित का अच्छा ज्ञान था।[3]

दिलेरी :-

दिलेरी एक युवक कवि थे। उनका जीवन वहुत गरीबी में व्यतीत हुआ था।[4] लगातार कई दिनो तक उन्हें भोजन तक नहीं मिल पाता था। वे हर्फी के हार्दिक प्रशंसक थे। उन्होने उनकी शैली के अनुशरण का काफी प्रयास किया। वे रूपवान लड़को पर रीझ जाते थे। वे नारियों से घृणा करते थे।[5]

माहिर :-

मुहम्मद अली माहिर ईरानी वंश के थे। उनका जन्म व पालन पोषण भारत में हुआ था।[6] वे सब जगह घूमते फिरते रहते थे। एक स्थान से दूसरे

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 267
2. तबाकात-ए-शाहजहाँनी, पूर्वोद्धृत, पन्ना 323 (ब)
3. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 268
4. वही, पृष्ठ 268
5. तबकात-ए-शाहजहाँनी, पूर्वोद्धृत, पन्ना 327 (ब)
6. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 268

स्थान पर जाना उनकी स्वाभाविक चर्चा थी बहुत अच्छे किस्म के संगीत और चित्राकर्षक सौन्दर्य उनके लिए आराध्य प्रलोभन थे। उनकी शैली सरल एवं ललित थी।[1]

ज़फर खाँ अहसन :-

जफर खाँ उपनाम अहसन ख्वाजा अबुल हसन तुरवती के पुत्र थें शाहजहाँ ने उनके पिता की जिन्दगी में जफर खाँ को कश्मीर का प्रान्तपति नियुक्त कर दिया था।[2] वे मिर्जा साएब के शिष्य बने रहे। कभी-कभी वे अपने गुरू की भी आलोचना करते थे। वे ईरानी कवियों के विशेष पोषक थे। सम्भवतः इसी कारण उन्हे अदुर्र रहीम खान खाना कहा गया है।[3] उनको काव्य के प्रति इतना ज्यादा अनुराग था कि उन्होने साएब कलीम कुदसी, सईदाई गीलानी की कृतियां उन्हीं के हाथ से लिखवाकर एक ग्रन्थ संग्रहीत कर दिया था और उसमें उन्होने उन सबके चित्र भी लगवाए थे।[4] वे स्वयं एक दीवान के रचयिता थे। उनकी कुछ पक्तियां उदधृत की जाती है-

मेरा मन आशा से भरा हुआ तेरे कुचे में आ रहा है।
(कृपया) उसकी रक्षा कर- किसी न किसी दिन वह तेरे काम ही आयेगा।

मधुशाला के कोनो में यही वार्ता होती रहती है कि हमको प्रिया तक पहुचाओं क्योकि (इस समय) हमारे मस्तिष्क पर ईद (की भावना) आच्छादित है। ‘‘हिन्द के प्रियतमों में उसके समान कोई भी गर्वीला माशूक नही, (वह) राम तो कहता है पर बश में नहीं आता है।’’[5]

मुल्ला तुगराई :-

मुल्ला तुगराई जहाँगीर के राज्यकाल के अन्त में भारत आये थे। और

---

1. अमल-सालिह, पूर्वोद्धृत, पन्ना 705 (ब)
2. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 268
3. वही
4. वही
5. बज्मे तैमूरिया, पृष्ठ 184-85, सक्सेना द्वारा उदधृत।

फिर उसके बाद वे दक्षिण से शाहजहाँ के दरबार में पहुँचे।[1] सम्राट हो जाने के पश्चात उन्होने उसे राजकुमार मुराद का मुन्शी बना दिया। वे राजकुमार के साथ बल्ख गये। उन्होने इस अभियान के बारे में अपना विवरण "मिरअत्-अल-फतूह" में किया है। उनकी अन्य रचानाएं कश्मीर की प्रशंसा में "फिरदौसियां" शाहशुजा की प्रशंसा में "कन्ज-अल-मुआनी" तथा मुराद की प्रशंसा में "ताज अलमदाए" है।[2]

हिन्दू इतिहासकार

ईश्वर दास नागर :-

यह गुजरात में स्थित पाटन नगर के निवासी थे उन्होने काजी शेख-उल-इस्लाम बिन अब्दुल बहीद से शिक्षा ग्रहण किया। शिक्षा को समाप्त कर लेने के पश्चात वे गुजरात के गर्वनर शुजाअत खाँ की स्वीकृति पर जोधपुर के अमीन नियुक्त हुए। एक युद्ध में उन्हें अपनी महत्वपूर्ण सेवा के उपलक्ष्य में मनसब तथा मेरठ में जागीर प्रदान हुई। उनकी साहित्यिक प्रतिभा की वहुत ज्यादा प्रशंसा हुई। इनके द्वारा रचित फतूहाते-आलमगीरी अपने समय का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।[3] इसका प्रथम अध्याय शाहजहाँ के बीमार होने से प्रारम्भ होता है। उसमें शासन को हस्तगत करने के लिए दारा शिकोह के प्रयासो का उल्लेख किया गयाहै। राजा जय सिंह और सुलेमान शिकोह द्वारा शुजा की पराजय का संक्षिप्त हाल इसमें मिलता है। इसके अतिरिक्त लेखक ने मुराद के द्वारा अली नकी के बध की सफाई प्रस्तुत किया है।[4] उनका यह कहना है कि अली नकी दारा से गाँठ किए हुए थे।

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 169
2. वही, पृष्ठ 169
3. सै. सुलेमान नदवी-दी एजूकेशन आफ हिन्दूज अण्डर मुस्लिम रूल,कराची, 1963, पृष्ठ 44
4. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 6

दूसरे अध्याय मे सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि औरंगजेब का मुराद से यह वादा करना है कि वे उसे गद्दी पर वैठा देने के बाद इस संसार से विरक्त हो जायेगे।[1] लेखक का यह भी कथन है कि खली लुल्ला खाँ ने दारा को हाथी से उतरने का परामर्श देकर उसके साथ विश्वासघात किया परुन्तु उनका यह कथन किसी ठोस साक्ष्य पर आधारित न होने के कारण पूर्ण रूप से विश्वसनीय नहीं है।[2]

सुजान राय खत्री :-

सुजान राय खत्री पंजाब के पटियाला नगर के मूल निवासी थे। इन्होने खुलासतुत-तवारीख नामक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना की जो बहुत परिश्रम एवं धैर्य से लिखा हुआ उच्च स्तर का कार्य था। यह आलमगीर के शासन काल में था।[3] उनका यह कथन है कि वे युवावस्था प्राप्त होने के बाद से उच्च शाही अधिकारियों के मुन्शी रहे।[4] उन्होने अपनी रचना के समबन्ध में रामायण से लेकर तारीखे बहादुर शाही तक आधारभूत ग्रन्थों की एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की है। उनका यह कहना है कि औरंगजेव तक जितने भी शासक हुए है उनके राज्य काल का उन्होने संक्षिप्त विवरण दिया है इसी कारण उसका नाम खुलासत रखा गया।[5] इनके ग्रन्थों के लगभग आधे भागों में सूबो तथा चगताई शासकों के पूर्ववर्ती हिन्दू और मुसलमान शासको के वृतान्त हैं हिन्दुओं के विषय में उन्होने कुम्भ के मेले का वर्णन किया है। उनका यह कहना है कि यह प्रति बारह बर्ष के बाद हरिद्वार में होता है।[6]

शाहजहाँ का हाथ खुसरव के बध में था या नहीं इस विषय के सम्बन्ध में वे संदिग्ध थे। उन्होने जहाँगीर के राज्यकाल की घटनाओं का संक्षिप्त

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 6
2. वही, भूमिका
3. दी एजूकेशन आफ हिन्दूज अण्डर मुस्लिम रूल, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 46
4. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, भूमिका
5. वही, भूमिका
6. वही, भूमिका

विवरण दिया है। शाहजहाँ के राज्यकाल के सम्बन्ध में उन्होने मुहम्मद वारिस का उल्लेख किया है।[1] उत्तराधिकार के युद्ध के बारे में वे लिखते हैं कि जसवन्त सिंह इसलिए हारे कि राजा जय सिंह सिसोदिया व राजा सुजान सिंह चन्द्रावत ने उनका साथ छोड़ दिया था। उनका यह कथन नहीं माना जाता है कि खलीलुल्ला के कहने से दारा हाथी पर से उतर गये थे। दारा का सिन्ध से गुजरात भागने के बाद की घटना से ग्रन्थ समाप्त हो जाता है और लेखक यह कहता है कि बानवे बर्ष की अवस्था में औरंगजेब दक्षिण में परलोक सिधार गये।[2]

भीमसेन :-

भीमसेन रघुनाथ दास कायस्थ के पुत्र थे। इन्होने नुसख-ए-दिलकुशा नामक ग्रन्थ की रचना की। अपने ग्रन्थ की प्रस्तावना में उन्होने यह लिखा है कि सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद उनका यह विचार था कि वह संसार से विरक्त हो जाय, परन्तु सम्बन्धियों के मोह के कारण उन्होने यह मार्ग नहीं ग्रहण किया।[3] अतः वीर सिंह वुन्देला के वंशज राव दलपत से उनकी मैत्री हो गयी और वे उसी की सेवा में लगे रहे। संक्षिप्त रूप से प्रस्तावना देने के पश्चात भीमसेन ने ग्रन्थ का आरम्भ राव दलपत की वंशावली से किया था उसके बाद उन्होने बुरहानपुर नगर का वर्णन किया है। प्रासंगिक रूप से मलिक अम्बर का जन्म एवं मरण की तिथि छन्द उदधृत की गयी है।[4] उन्होने खिरकी का भी हाल लिखा है। उनका यह कहना है कि इस नगर का संस्था पन मलिक अम्बर ने किया था, औरंगजेब ने उसके नाम को बदलकर औरंगाबाद कर दिया था। शाहजहाँ के विमारी के बाद से जो घटनाए घटी वह विशेषतः दक्षिण में घटी। उससे सम्बन्धित जो भी वृतान्त भीमसेन ने दिया है वह बहुत विश्वसनीय है।[5]

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, भूमिका
2. वही, भूमिका
3. वही, भूमिका पृष्ठ छ
4. वही, भूमिका पृष्ठ ज
5. वही, भूमिका

शाहजहाँ के राज्यकाल के इतिहास के सन्दर्भ में केवल पहले के बीस पन्ने ही महत्वपूर्ण है उन्होने भोसला शब्द की जो व्याख्या की है वह बड़ा रोचक है उनका कहना है कि इस वंश का संस्थापक राजा उरसेन था। वे चित्तौड़ से दक्षिण आये थे और परिन्दा में स्थित भोसा ग्राम में वे रहने लगे थे। इस गाँव के ही नाम पर उनके वंशज भोंसला कहलाने लगें।[1]

नरायन कौल अजीज :-

यह कश्मीरी थे। उन्होने तारीख-ए-कश्मीर लिखा। कश्मीर के सरदारों ने उन पर मातृ भूमि का इतिहास लिखने के लिए जोर दिया थां मलिक हैदर ने उनके लिए कुछ तथ्य कश्मीर के दीवान तथा सहायक गर्वनर आरिफ खान के समय में अनुदित संस्कृत के ग्रन्थों से एकत्र किया था। नरायन कौल ने इन तथ्यों को मौलिक संस्कृत के ग्रन्थों से तुलना करके अपनी पुस्तक में प्रयोग किया था। तारीख-ए-कश्मीर (1124ई.-1712ई.) में पूरी हुई थी।[2]

रूप नरायन :-

रूप नारायन हीरामन खत्री के पुत्र थे। वे सियालकोट के रहने वाले थे। 1129 हि. में उन्होने हिन्दुओं के पंवित्र तीर्थ स्थानों पर एक पुस्तक मखजन-उल-इरफान लिखी इसका वास्तविक नाम वृज महात्सम है।[3]

हिन्दू शिक्षा के केन्द्र :-

बनारस और नदियां हिन्दुओं के शिक्षा के केन्द्र थे।[4] वर्नियर लिखते है कि वनारस एक प्रकार का विश्वविद्यालय है परन्तु न तो उसमें कोई कालेज होता है और न ही उसमें तरह-तरह की कक्षाएं ही लगती है जैसा कि विश्वविद्यालयों में लगती है उसे पुराना विद्या का केन्द्र माना जाता था। विश्वविद्यालय या मुख्य विद्या के केन्द्र ऐसे स्थानों में होते थे जहाँ पर बड़े-बड़े

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, भूमिका पृष्ठ ज
2. दी एजूकेशन आफ हिन्दूज अण्डर मुस्लिम रूल पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 45-46
3. वही, पृष्ठ 48
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 139

विद्वान लोग अपना घर बनाकर रहते थे।[1] मुसलमान लोग राजधानियों में रहना पसन्द करते थे जबकि हिन्दू लोग मन्दिरों और धार्मिक स्थानों में रहना पसन्द करते थे जहाँ पर यात्रियों द्वारा गुरूओं को पैसा मिलता था।

इस प्रकार से निश्चित होकर बनारस, नदियां, मिथिला मदूरा, तिरहुत, पैथान, करहद, थट्टा, मुल्तान, सरहिन्द इत्यादि हिन्दू विद्या के महत्वपूर्ण केन्द्र थे।[2] शाहजहाँ के राज्य काल में प्रसिद्ध विद्वान सरहिन्द, थानेश्वर और अम्वाला में रहते थे। इनके पास दूर-दूर से छात्र आते थे और ज्ञानार्जन करते थे।

बनारस :-

बनारस पूरब में 12 सौ से 15 सौ ई0 तक विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र था।[3] यहा पर बहुत बड़े-बड़े विद्वान लोग रहना पसन्द करते थे। मुगलों के आने के बाद से एक नये युग का प्रारम्भ हुआ और 16वी. शताब्दी में बनारस में संस्कृत विद्या का बहुत तेजी से उत्थान हुआ और देश के कोने-कोने से विद्वान लोग आकर यहाँ इक्ठ्ठा होने लगे।[4] धर्माधिकारी, सेसी भट्ट और मौने प्रसिद्ध परिवार थे जिसने 1500 से 1800 ई. के बीच बहुत ज्यादा ख्याति प्राप्त की। कवीर और तुलसीदास बनारस में साहित्यिक कार्य में लगे रहे। यहाँ पर गुरूनानक और चैतन्य भी आये थे।[5]

मिथिला :-

उपनिषद काल से मिथिला विद्या का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। इसने चारो

---

1. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 341; मुन्तखब-उत-तवारीक अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 265
2. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 139
3. वही, पृष्ठ 139
4. अल्तेकर, ए.एस. ए हिस्ट्री आफ बनारस फ्राम प्री हिस्टोरिक टाइम्स टू प्रेसेन्ट डे, बनारस 1937, पृष्ठ 39-41
5. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 140

तरफ प्रसिद्धि प्राप्त की तथा वैज्ञानिक और अन्य विषयों पर भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगल काल में चारों तरफ से लोग यहाँ पर तर्क शास्त्र पढ़ने के लिए आते थे।[1] अकबर की प्रेरणा से रघुनन्दन दास ने दिग्विजय नामक बौद्धिक कार्य आरम्भ किया। इससे बादशाह इतने ज्यादा प्रसन्न हुए कि उन्होने पूरा मिथिला नगर को उपहार के रूप में दे दिया और रघुनन्दन दास ने अपने गुरू महेश ठाकुर को यह उपहार प्रदान कर दिया।[2]

विद्या के अन्य केन्द्र :-

तिरहुत[3] हिन्दू विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र था और गोकरन हद ब्राह्मणों का एक बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था।[4]

मुस्लिम शिक्षा के केन्द्र :-

मदरसा प्रायः माध्यमिक और उच्च विद्यालयों के अनुकूल ही शिक्षा प्रदान करती थी। यह शहर के मुख्य मस्जिदों से मिली रहती थी।[5] जहाँगीर ने इन मदरसों का मरम्मत करवाया और उन्होने ऐसा कानून बना दिया कि उन धनी लोगों की सम्पत्ति जिनका कोई उत्तराधिकारी न हो मदरसे की मरम्मत में लगाया जाय।[6]

आगरा :-

मुसलमान धर्माधिकारी और विद्वान लोग इन बड़े-बड़े नगरो में नौकरी पाने के लिए रहना शुरू किए जहाँ उन्हे प्रंशसक अनुयायी एवं शिष्य मिल सके। आगरा, दिल्ली, लाहौर, जौनपुर, गुजरात, सियालकोट, आहमदावाद ने विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया और धीरे-धीरे यह मुसलमानों के विद्या के

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 141
2. चक्रवर्ती, मनमोहन-हिस्ट्री आफ मिथिला एण्ड हिस्ट्री आफ नवया नयाया।
3. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 152-53
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 384
5. सूफी ज0एम0डी0 अल मिन्हाज, लाहौर 1941, पृष्ठ 3
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 143

विद्या के प्रमुख केन्द्र बन गये।[1]

पूरे मुगलकाल में आगरा को शिक्षा का एक बहुत बड़ा महत्वपूर्ण केन्द्र माना जाता था। मुगल शासको ने बहुत से विद्यालय खोल रखे थे।[2] जिनमें बड़े-बड़े विद्वान जैसे मौलाना अलाउद्दीन लारी[3] मुल्तान के काजी जलालुद्दीन[4] थानेश्वर के शेख अब्दुल फतह, सैयद सफीउद्दीन साफवी,[5] मीर कलाम हरवी[6] और अन्य लोग थे। बहुत से विद्वान लोग समाना के सैयद शाहमीर के यहाँ शिक्षा लेने जाते थे। मिर्जा मुफलिस जो उजवेग थे वे आगरा के ख्वाजा मुइनुद्दीन फरूखावादी के जामा मस्जिद में चार साल तक पढ़ाते रहे।[7] पीटर मुण्डी लिखते है कि आगरा में जैसुट लोगो के लिए भी कालेज बना हुआ था।[8]

दिल्ली :-

दिल्ली बहुत पहले से शाही परिवारों के निवास का केन्द्र था। उसे पुराना विद्या का केन्द्र माना जाता था। मुगलकाल में ऐसी परम्परा बनी रही और बहुत सी नयी नयी संस्थायें पनपती गयी।[9] सैकड़ो विद्यार्थी लोग यहाँ पढ़ने के लिए आते थे।

---

1. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 143
2. अवुल हसन अली नदवी- हिन्दुस्तान की कदीम इस्लामी दर्सगाहें, नदवतुल-मुन्नफीन, लखनऊ 1922, पृष्ठ 29
3. मुन्तखब-उत-तवारीख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 53
4. वही, भाग-3, पृष्ठ 124
5. वही, पृष्ठ 181
6. सै0 अहमद-तारीख-ए-आगरा, आगरा, 1931, पृष्ठ 120
7. मुन्तखब-उत-तवारीख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 218
8. ट्रेवेल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 208
9. हिन्दुस्तान की कदीम इस्लामी दर्सगाहें, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 23

शेख अब्दुल हक, जो जहाँगीर के समकालीन थे वे अखवारूल अखयार में एक मदरसा की चर्चा करते हुए लिखते है कि शाहजहाँ ने एक बहुत विशाल और भव्य शाही मदरसा जामा मस्जिद के दक्षिणी भाग में बनवया था जिसे दारूल बका कहा जाता है।[1] औरंगजेब के समय में मदरसाइ रहीमिया बनवाया गया था जिसमें बहुत अच्छे किस्म के अध्यापक हुए जैसे अब्दुल अजीज, शाह इस्माइल और अब्दुल कादिर।[2]

जौनपुर :-

जौनपुर मुस्लिम शिक्षा का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था जहाँ पर बड़े-बड़े विद्वान रहते थे। जौनपुर जिसे भारत वर्ष का शीराज कहा जाता था, इब्राहीम शार्की के शासनकाल में बहुत महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया था।[3] यहाँ पर बहुत से कालेज व मदरसे बने हुए थे। पूरे मुगल काल में इसका बहुत ज्यादा महत्व था। चारों तरफ से विद्वान लोग यहाँ पर पढ़ने के लिए आते थे। मुगल बादशाह इन्हे बड़ा प्रोत्साहन देते थे।[4]

गुजरात :-

गुजरात मुस्लिम शिक्षा का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। मुकुन्दराम के अनुसार गुजरात में मकतब स्थापित किए गए थे जहाँ पर पवित्र मौलवियों[5] के द्वारा इन्हे शिक्षा दी जाती थी। मियां वजीउद्दीन और शेख गदाई देहलवी यहाँ के प्रमुख विद्वान थे जो हुमायूँ के समय में थे।[6]

1052 हिजरी में गुजरात के नहखारा पट्टन में फैजसाफ नामक

1. सौ. अहमद-असर-उस सनादीद, कानपुर 1904, भाग-3 पृष्ठ 12
2. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 145
3. वही, पृष्ठ 146
4. फारूकी, जेड-औरंगजेब एण्ड हिज टाइम, इदारा-ए-अदवियात देहली, 1972, पृष्ठ 312
5. वंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए.डी., पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 91
6. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 146

मदरसा स्थापित किया गया था जो मस्जिद से लगा हुआ था। बरहान निजामशाह ने अहमदाबाद में एक कालेज की स्थापना की थी जिसको लंगरी दुवाजदा इमाम कहा जाता है।[1] 1697 में अकरामुददीन ने भी एक बहुत बड़ा कालेज बनवाया था।

कश्मीर :-

कश्मीर विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। यहाँ के स्वास्थवर्धक जलवायु, शान्तिमय वातावरण तथा चिन्ताकार्षक प्राकृतिक दृश्यों ने अनेकों विद्वानों को इतना ज्यादा मोहित कर दिया कि वे अपने ग्रन्थों की रचना करने के लिए तथा सुख से जीवन व्यतीत करने के लिए वहाँ पर स्थायी रूप से रहने लगे।[2] मुल्ला हसन फरोगी और मुल्ला मोसिन फानी कश्मीर के रहने वाले थे। ख्वाजा खाविन्द महमूद ने वहाँ पर अपना घर बना लिया था। मुल्ला शाह भी वहाँ पर अक्सर आते थे। कलीम और कुदसी तो बादशाहनामा को छन्दोवद्ध करने के लिए वही पर रहने लगे।

गुरू मुल्ला शाह बादख्शी जो कश्मीर मे पढ़े हुए थे वे जहांनआरा, जो शाहजहाँ की सबसे बड़ी पुत्री थी उनके आध्यात्मिक गुरू थे।[3] मिर्जा अबू तालिब कलीम कश्मीर गये और वहाँ जाकर उन्होने शाहजहाँ के शासनकाल की घटनाओं का काव्यात्मक ढंग से वर्णन किया।[4]

मुस्लिम शिक्षा के अन्य केन्द्र :-

मुस्लिम शिक्षा के बहुत से अन्य केन्द्र थे। अकबर ने फतेहपुर सीकरी में कई कालेज बनवाये थे।[5] अबुल फजल ने भी अपने नाम पर एक मदरसा

---

1. नाऊ इट इज काल्ड बरा इमाम का कोटला।
2. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 147
3. ओरियन्टल कालेज मैगजीन, पूर्वोद्धृत, भाग-3, पृष्ठ 4
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 147
5. अकवरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 531

बनवाया था।[1] शेख सादुल्ला ने बयाना में विद्वानों को इकट्ठा किया।[2] औरंगजेव ने भी डच लोगों से लखनऊ में फरहंगी महल लिया था। विद्या के अन्य केन्द्रों में ग्वालियर[3],सियालकोट,अम्बाला,और थानेश्वर का नाम आता है।

प्रारम्भिक शिक्षा :-

मुगलकाल में वर्तमान की भाँति व्यवस्थित पाठशालांए नहीं थी।[4] टोल या कालेज जिसे असम में गुरू गृह कहते है उच्च शिक्षा संस्थान थे जो अनुदान तथा धर्मदान से चलाये जाते थे।[5] यह टोल पाठशालांए मस्जिदों, एवं मकतवों में संलग्न थी। गाँवों में स्थान की कमी होने के कारण गुरू लोग छायादार वृक्षो के नीचे बच्चों को शिक्षित करने के लिए पाठ शालाएं चलाते थे।[6] अमीर लोंग अपनी इमारतों के किसी भाग में शिक्षण की व्यवस्था करते थे। हिन्दू लोगों में शिक्षण का कार्य ब्राह्मणों के द्वारा सम्पन्न कराया जाता था।

सत्रहवीं शताब्दी में मेन्डेलस्लो लिखते है- " ब्राह्मण भी पाठशालाएं चलाते थे, जहाँ वे वच्चों को पढ़ना और लिखना सिखाते थे।" प्रारम्भिक शिक्षा लड़किया लड़को के साथ ग्रहण करती थी।[7] हिन्दुओं में बच्चें पाँच बर्ष की अवस्था में शिक्षा प्रारम्भ करते थे।[8] सिख पाठशालाओं में बालको का प्रवेश पॉच और सात बर्ष की अवस्था के बीच होता था। सिख लोग प्रायः छः वर्ष की अवस्था में वच्चों को पाठशाला भेजते थे। मुसलमानों के वहाँ जब वच्चों की

---

1. मुन्तखब-उत-तवारीख, अंग्रेजी, अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 160
2. वही, पृष्ठ 103
3. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 132
4. नार्थ ईण्डयन सोशल लाइफ ड्यूरिंग मुगल पीरिएड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 86
5. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 334; ऐस्पेक्टेस आफ बंगाली सोसाइटी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 170-71
6. वही, पृष्ठ 88
7. नार्थ इण्डियन सोसल लाइफ डयूरिंग मुगल पीरियड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 87
8. निज्वार,वी.एस. पंजाव अण्डर दी लेटर मुगल्स, जालंधर, 1972, पृष्ठ 300

आयु चार बर्ष चार महीना और चार दिन हो जाती थी, तब वे विसमिल्लाह खुआनी (शिक्षा शुभारम्भ) की रस्म मनाते थे और उसके बाद वे बच्चो को मकतब में भेजना शुरू करते थे।[1] हिन्दुओं के बच्चे शिक्षा का प्रारम्भ भूमि पर चाक से ॐश्री या हरी शब्द लिखकर करते थे। वर्तमान समय में भी बच्चे भूमि पर धूल में अपनी उगली से लिखते थे अथवा लकड़ी की पट्टी पर लिखकर ही लिखना शुरू करते थे।[2] बंगाल में चाक से लिखने को हाथे खरी (हाथ में चाक लेने के पूर्व) के नाम से जाना जाता था, जिसका छात्र के जीवन में विशेष महत्व था।[3] अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात छात्र संयुक्त अक्षर (शब्द) का ज्ञान प्राप्त करते थे। उसके बाद उन्हें वाक्यों का अभ्यास करवाया जाता था जिससे उन्हें शब्दों की रचना के बारे में तथा उनके अर्थो के बारे में पर्याप्त ज्ञान हो जाता था।[4] सुलेख को विशेष रूप से महत्व दिया जाता था और और छात्रों को इस प्रकार का निर्देश दिया जाता था कि वे अच्छे सुलेख लिखने वालों की भांति अभ्यास करें।[5] शिक्षा के लिए देश के भिन्न-भिन्न भागों में अनेकों प्रकार की शिक्षण संस्थाए खोली गयी थी और उनके अपने कुछ विशेष पाठयक्रम होते थे जिनमें से कुछ के बर्णन यहा पर दिये जा रहे हैं।

---

1. जाफर,एस.एम.- एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया,पेशावर 1936,पृष्ठ 152-53
2. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 312
3. द्विजामाधव-मंगल चन्द्रेर गीत, कलकत्ता, यूनिवर्सिटी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 1952, पृष्ठ 217-18; मुकुन्द राम- कवि कंकन चण्डी, नटवर चक्रवर्ती द्वारा बंगवासी प्रेस लखनऊ से प्रकाशित, तृतीय संस्करण, पृष्ठ 215; कृष्णदास कविराज- श्री श्रीचैतन्य चरित अमृत, भक्त ग्रन्थप्रचार भण्डार, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण वि.स. 1355, पृष्ठ 3391
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 133
5. इ.ग.ई., भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 408-409

संस्कृत पाठशालाएँ :-

इन पाठशालाओं में छात्रों को प्रारम्भ से नागरी लिपि में शिक्षा दिया जाता था। पंजाव में इसका अध्ययन पंजावी या गुरूमुखी से प्रारम्भ किया जाता था। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद छात्र संस्कृत, व्याकरण, काव्य, पुराण, इतिहास, ज्योतिष, वेदान्त, न्याय, मन्त्र-तन्त्र, पूजा-पाठ तथा वैदिक चिकित्सा प्रणाली को सीखते थे।[1]

महाजनी स्कूल :-

महाजनी स्कूल या लेण्डी पाठशालाएं मुगल काल में समस्त पंजाव एवं उत्तरी प्रान्तों में फैली हुई थी। इन पाठशालाओं के शिक्षको को गुरू कहा जाता था।[2] और यदि शिक्षक मुस्लिम होते थे तो उन्हें मियां कहा जाता था। ऐसा कहा जाता है कि मुसलमान शिक्षक हिन्दू ब्राह्मण शिक्षकों के उत्तराधिकारी थे जिन्होने अपना धर्म परिवर्तन कर लिया था। कुछ गुरू लोग एक नगरों से दूसरे नगरों में भ्रमण करते थे तथा वे वहाँ के बनियों, व्यापारियों एवं खत्रियों के बच्चों के विभिन्न व्यापारिक समस्याओं, हिसाब वही लेखन आदि के बारें में निश्चित समय में प्रशिक्षण देते थे।[3]

पाठ्यक्रम :-

महाजनी पाठशालाओं में मानसिक रूप से हिसाब करना, व्यापार के बारे में लेन देन करना और वही खाता की शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध किया जाता था। महाजनों को उस समय लिखने व पढ़ने तथा नैतिकता और विनम्रता की शिक्षा दी जाती थी। उस समय महाजनी, सराफी लैण्डी, कायस्थी या मुंडिया पाठशालाओं के गुरू लोगों को भाई या भैया कहा जाता था।[4] ब्राह्मण या मुसलमान लड़के भी इस पाठशाला में शिक्षा ग्रहण करते थे। जिनका ध्येय आगे

---

1. पंजाव अण्डर दी लैटर मुगल्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 301
2. वही, पृष्ठ 303
3. वही
4. वही, पृष्ठ 304

चलकर भविष्य में शिक्षण करना था।[1] इस प्रकार सभी हिन्दू तथा मुसलमान दोनो ही लैण्डी पढ़ते थे।

हिन्दी स्कूल :-

पंजाव में हिन्दी स्कूल अधिक नहीं थे और जो भी स्कूल थे उनमें संस्कृत तथा गुरूमुखी पर विशेष रूप से बल दिया जाता था। उत्तरी प्रान्तों में हिन्दी स्कूलों में नागरी लिपि के साथ संस्कृत के अध्ययन को विशेष रूप से महत्व प्राप्त था।[2]

गुरूमुखी पाठशाला :-

गुरूमुखी पाठशाला में शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद यदि कोई छात्र पोधा या मियां या भाई बनना चाहता था तो उस व्यक्ति को दो ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त करना बहुत आवश्यक था। इसके साथ ही साथ उसे गुरूमुखी, व्याकरण, अंकगणित, इतिहास, पिंगल और प्रारम्भिक संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। यदि कोई ऊचे स्तर की शिक्षा प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए यह अनिवार्य होता था कि वह तर्क शास्त्र की न्याय पद्धति, पांतजलि, वेदांत आदि का अध्ययन करें।[3] जो व्यक्ति सबसे अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेता था उसे ज्ञानी या इरफान की पदवी दी जाती थी। जो दर्शन और धर्म के गूढ़ रहस्यों की उचित भाषा में ब्याख्या कर सके और लोगों को प्रचारक के रूप में ज्ञानार्जन करा सकें।[4]

परीक्षा प्रणाली :-

मुगलकाल में परीक्षा प्रणाली वर्तमान परीक्षा प्रणाली से सर्वथा भिन्न थी। उस समय न तो कोई परीक्षाएं ही उत्तीर्ण करनी पड़ती थी और न ही वर्तमान समय की भाति प्रश्नपत्र तैयार कराया जाता था। उस समय उत्तर

---

1. पंजाव अण्डर दी लैटर मुगल्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 304
2. वही
3. वही, पृष्ठ 299-300
4. वही, पृष्ठ 299-300

पुस्तिकाओं को जाँचने की भी प्रथा नहीं थी।[1] छात्रों से सम्बन्धित शिक्षक की सलाह पर छात्रों को निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी में पढ़ाया जाता था।[2] छात्रों को उच्च श्रेणी प्रदान करने के लिए शिक्षक उनकी कई स्तरों से जाँच करता था जैसे- नैतिक स्तर, शैक्षिक, उपलब्धि, व्यवहारिक ज्ञान आदि।[3]

छात्रो के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वास्तविक पथ प्रदर्शक शिक्षक था। जो छात्र अपने परिवार से दूर शिक्षक के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे उन विद्यार्थियों के लिए यह बात बहुत सत्य प्रतीत होती है।[4] शिष्यों की योग्यता-परीक्षण का एक अन्य आधार भी प्रचलित था। विद्वान लोग आपस में तर्क की गोष्ठियां या बाद-बिवाद करते थे जिनमें अध्यापक तथा शिष्य या कभी-कभी केवल शिष्य लोग भाग लेते थे।[5] इन वाद-विवाद और गोष्ठियों का उस समय शिक्षा प्रणाली में विशेष महत्व था।

किसी भी विद्यार्थी को टोल से शिक्षा समाप्त करने के पश्चात तब तक पूर्ण नहीं समझा जाता था जब तक कि वह विषय विशेष की बाद-विवाद गोष्ठियों में किसी अन्य विद्वानों के साथ भाग लेकर अपनी योग्यता का परिचय न दे दें।[6] उन दिनों बंगाल में एक विशेष प्रकार की शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। उस समय परीक्षार्थियों को हाथ से लिखा हुआ एक लेख सावधानी से पढ़ना-पढ़ता था और इसके लिए उसे बहुत कम समय दिया जाता था।[7] फिर एक सुई उस लेख के उपरी पृष्ठ के किसी एक शब्द पर चुभोया जाता था और धीरे-धीरे उसे पूरे लेख के आर-पार कर दिया जाता था।

---

1. एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 24
2. यूसूफ हुसैन, डा0-मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति की एक झलक, अनुवादक डा0 मुहम्मद उमर, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ प्रथम संस्करण पृष्ठ 86
3. नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ ड्यूरिंग मुगल पीरियड पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 90
4. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 334
5. एस्पेक्टस आफ बंगाली सोसाइटी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 184-85
6. वही, पृष्ठ 184
7. वही

उसके बाद परीक्षार्थी को अपनी तत्कालिक स्मृति के द्वारा यह बताना पड़ता था कि सुई प्रत्येक पृष्ठ के किस शब्द से होकर गुजरी है।[1]

गुरू-शिष्य सम्बन्ध :-

भारत बर्ष में गुरू को हमेशा से आदर की दृष्टि से देखा जाता था। मुगल काल में भी ऐसी ही परम्परा है। गुरू को आदर का विशेष पात्र समझा जाता था। जहाँ पर शिक्षार्थी लोग बहुत लम्बे समय तक घर से दूर रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे वहाँ पर गुरू और शिष्यों का सम्बन्ध बहुत ज्यादा घनिष्ठ हो जाता था।[2] गुरू लोग वहाँ पर शिष्यों के नैतिक विकास के लिए ही न केवल प्रयत्नशील रहते थे वल्कि वे उसके शारीरिक विकास एवं शिष्टाचार सम्बन्धी ज्ञान के लिए भी उत्तरदायी होते थे। इसी कारण शिष्यों को उचित व अच्छे गुरू की खोज करने के लिए बहुत दूर-दूर देशों का भ्रमण करना पड़ता था। शाहवली उल्लाह का दिल्ली का मदरसा, हदीस और तफसीर की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध था। स्यालकोट का मदरसा भी व्याकरण की शिक्षा के लिए बहुत प्रसिद्ध था।[3]

इससे इस प्रकार का निष्कर्ष निकलता है कि अच्छी व उचित शिक्षा के लिए, गुरू की खोज करने के लिए शिष्य लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे। गुरू और शिष्य के इस प्रकार स्नेह से युक्त और सम्माननीय सम्बन्ध का कारण सबसे ज्यादा गुरू था। गुरू अपने शिष्यों के साथ स्नेह का व्यवहार करता था। गुरू लोग अपने त्याग और निष्ठा के द्वारा शिष्य को दक्ष बनाने का हमेशा से प्रयास करते थे। गुरू शिष्यों के मानसिक और भौतिक विकास का उत्तरदायी था। गुरू लोग शिष्यों के भोजन, बस्त्र, आवास की यथा शक्ति पूर्ति करते थे।[4]

---

1. एस्पेक्टस आफ बंगाली सोसाइटी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 184
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 334
3. मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति की एक झलक, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 85
4. मुन्तखब-उत-तवारिख, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 147; मंगल चन्देर गीत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 217-18

बदायूनी ने शेख मुईन नाम के आदर्श अध्यापक के बारे में वर्णन किया है जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उसने अपने जीवन की सारी कमाइयों को उन लेखकों के वेतन भुगतान में खर्च कर दिया, जिन्हे उसने शिष्यों को बाटने के लिए अमूल्य पुस्तकों की प्रतियों को तैयार कराने के लिए रखा था। उस समय गुरू एवं शिष्यों का सम्बन्ध अत्यधिक घनिष्ठ एवं मृदु था परन्तु आजकल उन परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा था जिसका मूल कारण मुगल काल में प्रचलित दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली थी। इस समय शिक्षा प्रणाली कठोर एवं अनुत्पादक थी तथा उसमें बहुक्षेत्रीय मानसिक विस्तार की कमी थी।

शिक्षण में पुरस्कार एवं दण्ड :-

जहाँ विद्यार्थियो को उनके अच्छे कार्य के लिए पुरस्कृत किया जाता था वही पर उनकी गलतियों के लिए उन्हें दण्डित भी किया जाता था। हिन्दू धर्म में विद्यार्थियों को कठोर दण्ड देने का विधान नहीं था फिर भी मुगल काल में जानबूझकर शरारत करने पर, रोज के कार्यो की उपेक्षा करने पर, शिक्षक या सहपाठियों के साथ दुर्व्यवहार करने पर या किसी भी प्रकार का उत्पात करने पर उनके लिए दण्ड की व्यवस्था की गयी थी। अनुशासन को कायम रखने के लिए शिक्षकों की एक ही वेंत बहुत काफी था।[1]

इसके अतिरिक्त भी बहुत प्रकार के दण्ड देने की व्यवस्था की गयी थी जैसे हाथों और पैरों को बांधना, धूप में खड़ा करना,[2] कक्षा में बहुत ज्यादा समय तक रोके रखना,[3] पाठ की दस या पन्द्रह बार आवृति करवाना या लिखवाना[4] कभी-कभी उन्हें थप्पड़ मारना, कान ऐंठना ता मुर्गा बनवाना,[5] उन्हें

1. एस्पेक्टस आफ बंगाली सोसाइटी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 178
2. नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ डयूरिंग मुगल पीरिएड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 88
3. कलकत्ता रिव्यू, 138वीं प्रति, जनवरी, 1950, नं. 4, पृष्ठ 934
4. सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 138
5. इ.ग.ई., भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 408

पंजे के बल बैठाना आदि विविध प्रकार के दण्ड देने की व्यवस्था थी।

शिक्षा में पुरस्कार एवं दण्ड का कोई लिखित विधान नहीं था। शिष्यो को अपने अनुशासन में रखने के लिए और उनकी उत्पाती प्रवृतियों को हटाकर श्रेष्ठ बनाने के लिए शिक्षक अपनी इच्छा व स्वभाव के अनुकूल ही दण्ड देने की व्यवस्था करते थे।

सैन्य शिक्षा :-

मुगलकाल में वर्तमान समय की भाँति सैन्य शिक्षा के लिए किसी भी प्रकार का विद्यालय नहीं था। शासक लोग अपने शहजादों को सैनिक शिक्षा दिलाने के लिए तथा शासन प्रबन्ध को सीखने के लिए व्यक्तिगत रूप से शिक्षा की व्यवस्था करते थे।[1] राज्य के बीरो, सरदारों एवं उस्तादों के साथ शस्त्रास्त्रों के प्रयोग का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान अर्जित करने के लिए अवसर प्रदान किए जाते थे। रण क्षेत्र सैन्य शिक्षा के व्यवहारिक ज्ञान के लिए सबसे बड़ा केन्द्र था।[2]

उपरोक्त वर्णन से ऐसा स्पष्ट होता है कि लोग व्यवहारिक सैन्य शिक्षा का ज्ञान रण क्षेत्र में प्रप्त करते थे सैद्धान्तिक एवं सैन्य शिक्षा के लिए बहुत सी पुस्तकें उपलब्ध थी। शाहजहानामा-फिरदौसी, तारीख खलफा-ए-अव्वासिया, अज इमाम सालबी, मआसिर-उल-वजरा, आदाब-उल-हरब, अलशुजाआ-अज-फरेब-मुदव्विर, फतवा-जहाँदारी-अज-जियाउददीन बरनी, तारीख जहाँ कुशा अज जावेनी और तुजुक तैमूरी में युद्ध कौशल ऐसी शिक्षांए थी जिससे फौजी सरदार लाभान्वित होते थे।[3]

1. सै0सबाहुददीन अब्दुर्रहमान-हिन्दूस्तान के अहद-ए-वस्ता का फौजी निजाम, मआरिफ प्रेस आजमगढ़ 1960, पृष्ठ 447
2. वही, पृष्ठ 448-49
3. वही, पृष्ठ 449

अष्टम अध्याय

कला का विकास

अष्टम अध्याय

कला का विकास

मानव की प्रत्येक अभिव्यक्ति यदि उसमें सुरूचि और संस्कार का योग हो, कला के अर्न्तगत आ सकता है। ललित कलाओं में वास्तु या स्थापत्य कला, मूर्ति कला, संगीत कला, की चर्चा की गई है। मानव के सूक्ष्मतम तत्व इन्हीं के माध्यम से देखा जाता है। साहित्य स्वयं किसी सीमा तक ललित कला माना जाता है।

मध्यकाल में भारतीय संस्कृति का विकास उस समय की कलात्मक अभिव्यक्तियों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कला के सभी रूपों में निश्चित रूप से निखार और परिपक्वता आलोच्यकालीन भारतीय कला की विशेषता थी। सांस्कृतिक चेतना का वाहक होने के कारण साहित्य कला को सम्बद्ध करता है और उसकी व्याख्या करता है। अतः कला की संवेदना साहित्य में निश्चित रूप से प्रतिविम्वित होती है कलाएं अनन्त मानी जाती है। किन्तु भारतीय परम्परा में चौंसठ कलाओं का वर्णन प्राचीन काल से होता चला आया है।[1]

शाहजहाँ के राज्यकाल की शान जनता की निगाहों में उस युग के साहित्य की अपेक्षा कला में कही अधिक प्रकाशमान है। मुगल सम्राटों का ध्यान वास्तुकला की उन्नति पर केन्द्रित था। उस जमाने में जो भी इमारते बनी वो

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद- प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद, पृष्ठ 16

इन्जीनियरों के उच्चतम कौशल का जीता जागता चित्र है उनका आकर्षण और उनकी ताजगी पहले से विद्यमान है।[1] यह संसार के कोने-कोने से आने वाले सभी यात्रीयों की आंखो को परम सुख प्रदान करती है और वे लोग उसकी खुले दिल से प्रशंसा करते है।

उनमें भव्यता और शान्ति पाई जाती है और उनमें रमणीयता एवं उत्कर्ष तो फूट सा जान पड़ता है विशेषज्ञ लोगों को कहीं कहीं पर उनकी अंलकृतता खटकने लगती है और वह उसको भद्दा समझने लगते है। किन्तु जहाँ तक सामान्यलोगों की बात है वे उसके सौन्दर्य मण्डल को देखकर चकित हो जाते है।[2] यदि शाहजहाँ के राज्यकाल से सम्बन्धित साहित्य नष्ट हो जाता और सिर्फ उसकी बनवाई हुई इमारते ही केवल शेष रह जाती तो भी निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि इतिहास में यह युग उच्चतम शोभा एवं शान का प्रतीक था।[3]

स्थापत्य कला :-

मनुष्य सभ्यता और संस्कृति की निश्चित अवस्था में पहुचकर गाँव, नगर, सड़के, मन्दिर सभागृह आदि का निर्माण किया और राजनीतिक सुरक्षा की दृष्टि से नगरों को घेरकर दुर्ग बनाया। राजप्रसादों एवं देव मन्दिरों को अलंकृत किया। हिन्दू और मुसलमानी स्थापत्य कला एक दूसरे से प्रभावित होती गयी, जिससे नई मान्यतायें नई रूचियां और नई उपलब्धियां प्रभूत रूप से सामने आती हैं। मुगलकाल में सम्राट जहाँ जहाँ गये वहां पर वास्तुकाल के प्रति अपनी अनुकूल अभिरूचि का चिन्ह छोड़े बिना नहीं रह सका। अजमेर में शेख मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह की मस्जिद तथा सागर के किनारे बारहदरी उसकी अभिरूचि के ज्वलन्त प्रमाण है।[4]

---

1. मुगल सम्राट शाहजहां, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 275
2. वही, पृष्ठ 275
3. वही, पृष्ठ 275
4. वही, पृष्ठ 276

इतिहासकारों का कहना है कि उसने लाहौर, अम्बालाबारी, फैजाबाद, सहारनपुर जिला, ग्वालियर, काबुल और अन्य नगरों में इमारतें बनवाई परन्तु सबसे अधिक सुरंक्षित और श्रेष्ठ नमूने आगरा और दिल्ली में स्थित हैं।[1]

आगरा का किला[2] अकबर के काल से लेकर शाहजहाँ के काल तक विभिन्न शैलियों की इमारतों का एक अनमोल समुह माना गया है। शाहजहाँ ने यहाँ पर दीवाने आम, दीवाने खास एवं जनाना महलों का निर्माण करवाया था। इसमे सदन गलियारे और मंडप शुद्ध श्वेत संगमरमर के बने हुए थे।[3] समन वुर्ज दूसरी सुन्दर इमारत है किसी समय इसमें बहुत बहुमूल्य रत्न जड़ा था। यही पर शाहजहाँ ने अपने प्राण त्यागे। अन्तिम समय उसकी आँखे उसकी प्रिय पत्नी के मजार अर्थात ताजमहल पर गड़ी हुयी थी।[4]

दीवाने-आम :-

झरोखा दर्शन में एक घण्टा विताने के पश्चात सम्राट दरबारे-आम में आता था। यह लाल पत्थरों की एक शानदार इमारत है इसमें चालीस खम्भे लगे हुए हैं इसके तीन पार्श्व बगल के प्रांगणो से सटे हुए हैं तथा चौथे पार्श्व की एक लम्बी दीवार बनी है जिसके बीचो बीच हॉल के स्तर से कुछ ऊचाई पर एक आला (दरीया अर्थात खिड़की) बनी हुई है। यह विशुद्ध श्वेत संगमरमर का वना हुआ है इसमें चित्रकारी की अद्भूत सजाबट की गयी है और इसमें अनेकों प्रकार के फूल जड़े हुए है।[5]

आगरा के दीवाने-आम की बनावट बहुत ही सादी है किन्तु दिल्ली के किले में जो दीवाने-आम है उसकी कारीगरी अनुपम मानी गयी है। इसी प्रकार का एक हाल लाहौर के किले में भी स्थित है उसका आकार बहुत ही साधारण है परन्तु उसका उद्देश्य भी वही है जो आगरा और दिल्ली के दरबारे-आम का

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 276
2. आगरा हिस्ट्रारिकल एण्ड डिस्क्रिप्टव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 74-79
3. वही, पृष्ठ 82
4. वही, पृष्ठ 86
5. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 251

है। जब कभी भी सम्राट दौरे पर जाते थे, बड़े खम्भो को जोड़कर दीवाने-आम की व्यवस्था कर दी जाती थी।[1]

दीवाने-खास :-

सम्राट दीवाने-आम से होकर दीवाने-खास[2] में जाते थे। आगरा तथा दिल्ली दोनों स्थानों के दीवाने खास का निर्माण शाहजहाँ के राज्यकाल में हुआ था। आगरा के दीवाने-खास का विवरण ट्रैवर्नियर ने दिया है।[3] तथा दिल्ली के दीवाने-खास[4] का मनमोहक चित्र वारिस प्रस्तुत किया है। यहाँ पर सम्राट लगभग दो घण्टे रहता था और वे कार्य सम्पन्न किये जाते थे जो राजनितिक एवं प्रशासनिक कारणों से खुलेआम नहीं किये जा सकते थे। उच्च शाही मन्त्री सम्राट के सामने अपने आवेदन-पत्र रखते थे जिन पर सम्राट या तो स्वयं आदेश लिखते थे या लिखवा देते थे। सद्र निर्धनों के खास-खास मामलों को पेश करता था तथा मदद-ए-मआश अर्थात दान वितरण के लिए सम्राट की अनुमति लेता था। सम्राट चित्रकारों या कशीदाकरों के कामों का भी निरीक्षण करता था। दारोगा-ए-इमारत वहाँ पर हमेशा उपस्थित रहता था तथा शाही इमारतों की रूप रेखा के सम्बन्ध में सम्राट की स्वीकृति को प्राप्त करता था।[5] इमारतों के मानचित्रों पर पूरी बहस होती थी। शासनकाल के प्रथम भाग में शाहजहाँ वास्तुकला के सम्बन्ध में आसफ खाँ सम्राट का प्रमुख परामर्शदाता माना जाता था। दीवाने-खास में सम्राट के सामने प्रशिक्षित बाज, शिकरे और चीते भी पेश किए जाते थे।[6] इस दीवाने खास में शाहजहाँ का शवकफन में लपेटकर

---

1. मुगल सम्राट शाहजहां, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 251
2. अकबर तथा जहाँगीर के समय यह गुस्लखाना कहलाता था, शाहजहाँ ने इसका नाम दौलत खान-ए-खास रखा, सक्सेना द्वारा उदधृत पादशाहनामा, अंग्रेजी भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 220
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 5-9
4. मुहम्मद वारिस-पादशाहनामा, पृष्ठ 17-23, सक्सेना द्वारा उदधृत
5. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 252-253
6. वही, पृष्ठ 253

ताबूत में रखा गया था बाद में उसे दफनाने के लिए ताजमहल ले जाया गया था।[1]

शाहबुर्ज :-

दीवाने खास से उठने के पश्चात सम्राट शाह अर्थात शाही मीनार में आता था, इस बुर्ज को शाहजहाँ ने सफेद संगमरमर से बनवाया था। शाहबुर्ज से मुगल हरम की स्त्रियाँ नीचे खुले मैदान में होने वाले पशु-युद्धों को देखा करती थीं। इसके दूसरी ओर बादशाह संगमरमर के सिहांसन पर बैठता था। यहाँ पर बहुत गोपनीय गोष्ठी होती थी। राजकुमारों और तीन या चार विशिष्ट अधिकारियों के अतिरिक्त कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता था। अपने कार्य के खत्म होने के पश्चात कोई भी पदाधिकारी वहाँ पर रूक नहीं सकता था। शाह बुर्ज में गोपनीय निर्णय लिए जाते था तथा प्रांतीय कर्मचारियों के नाम गुप्त पत्रों का मसौदा तैयार किया जाता था।[2]

अमीन कजवीनी का कथन है कि उसे सम्राट प्रायः यही पर बुलाकर उसके लिखे हुए इतिहास को सुनते और शुद्ध करते थे।[3] शाहबुर्ज में लगभग दो घड़ी का समय व्यतीत होता था।

ताजमहल :-

आगरा की इमारतों के सौन्दर्य का मुकुट ताज महल है सम्भवतः संसार की समस्त इमारतें में यह सबसे खूबसूरत है।[4] हेवेल इसको भारत की बीनस-अ-मीलो बतातें है और उसका यह कथन है कि यह एक आर्दश कल्पना का प्रतीक है तथा वास्तुकला की अपेक्षा इसका सम्बन्ध विशेष रूप से मूर्तिकला से है। उसकी वास्तु तथा शिल्पीय भव्यता उसकी उच्चतम मृदुलता तथा उसके

---

1. श्रीवास्तव, आशीर्वादीलाल- मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ 170
2. वही, पृष्ठ 253
3. शाहबुर्ज में जो कार्य होता था उसका विवरण देते हुए कजवीनी ने अपनी ओर भी संकेत किया है(सक्सेना द्वारा उदधृत) बादशाहनामा,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 141
4. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 277

निर्मित करने वाले कलाकरों के कौशल एवं उत्कृष्ट अभिरूचि के भाव को शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करना कठिन ही नहीं वल्कि असम्भ्व सा प्रतीत होता है। उसके विशुद्ध श्वेत संगमरमर उसके चित्ताकर्षक स्कन्द कलश, तथा उसकी सुन्दर काट की जालियां, उसकी शुद्ध पच्चीकारी भाव वर्णन को चुनौती देती है। वस्तुतः वह सुन्दरता का अद्भूत नमूना है और हमेशा ही वह आनन्द की वस्तु बना रहेगा।[1]

भारतीय वास्तुकला के क्षेत्र में न कभी उसके समान कोई इमारत बनी है न ही उसकी कल्पना ही की गयी है कुछ इमारत इससे भी अधिक विशाल मानी जाती है और कुछ में इससे भी अधिक सम्पन्नता पायी जाती है परन्तु इस प्रकार की भव्यता और सादगी का उत्कृष्ट सन्तुलन कहीं दिखाई नहीं पड़ता था परन्तु यह स्मारक रचना एवं अंह में तो कल्पित हुई पर कोमलता से परिपूर्ण हो गई है।[2]

यद्यपि ताज की शोभा के मुल्यांकन में लेखकों का एकमत माना जाता है, परन्तु उसके मूल तत्व और शैली के सम्बन्ध में बहुत मतभेद पाया जाता है मेजर स्लीमैन ने अपने ग्रन्थ ''रेम्बिल्स एण्ड रिकलेक्शन्स'' मे एक विचित्र सुझाव प्रस्तुत किया है। उसका कथन है कि इसकी रूपरेखा का निर्माण एक फ्रांसीसी इंजीनियर ऑस्टिन-इ-बोरडो[3] ने किया था उसने ऑस्टिन का उस्ताद ईसा से तादात्म्य स्थापित करने की भी चेष्टा की है। किन्तु ऐतिहासिक प्रमाणों से उसके सुझाव की संपुष्टि नहीं होती है।

विसेंट स्मिथ ने मनरीक के कथन के आधार पर इतालवी जरमीनों वैरोनियों[4] को इसके अभिकर्म का जन्मदाता बताया है। परन्तु सर जान मार्शल एवं ई0वी0 हैवेल ने इस धारणा को दोषपूर्ण ऐतिहासिक प्रमाण एवं इमारत की

---

1. हैवेल, ई.वी.- इण्डियन आर्किटेक्चर, लन्दन 1913, पृष्ठ 29
2. वही, अध्याय-2, आगरा हिस्टारिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 100-123; स्मिथ, विन्सेन्ट ए- हिस्ट्री आफ फाइन आर्टस इन इण्डिया एण्ड सिलोन, पृष्ठ 181-182
3. स्लीमैन डब्लू.एच. रैम्बल्स एण्ड रिकलेक्शन्स, भाग-1, पृष्ठ 385
4. हिस्ट्री आफ फाइन आर्टस इन इण्डिया एण्ड सिलोन,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 183-85

आन्तरिक शैली के आधार पर रद्द कर दिया है।[1]

यद्यपि ताज का निर्माण केवल एक व्यक्ति ने नहीं किया था वल्कि इसके रूप को निखारने के लिए विभिन्न कारीगरो, शिल्पकारों, और कलाकारों ने भी पारस्पारिक सहयोग किया था। देश विदेश से विशेषज्ञ बुलाए गए थे इनमें से कुछ के नाम है- उस्ताद ईसा, नक्शा बनाने वाला, अमानत खाँ शीराजी तुगरा लेखक, उस्ताद मुहम्मद हनीफ, ईस्माइल खाँ, मुहम्मद खाँ खुशनसीव, मोहनलाल एवं मनोहर सिंह पच्चीकार थे। आश्चर्य तो यह है कि इन दक्ष कलाकरों ने एक ऐसी इमारत खड़ी कर दी जो विश्व में अदभूत माना गया है। ताज भारत की विशुद्ध भावनाओं का प्रतीक है यह दाम्पत्य स्नेह का एक अछूता नमूना माना गया है।[2] शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज की यादगार में ये मकवरा बनवाया था जो किसी समय में विश्व के अद्भूत चीजों में माना जाता था और संसार के कोने-कोने से लोग इसको देखने आते हैं। ताजमहल 1632ई. में बनवाना आरम्भ किया गया और 1648 ई. में यह पूरा हुआ।[3] इसको बनवाने में पचास लाख रूपयें खर्च हुए।[4]

गृह निर्माण कला :-

भारत वर्ष में मकान जलवायु के आधार पर बनाया जाता है चूकि यहाँ पर बहुत अधिक गर्मी पड़ती थी इसलिए यहाँ ऐसे दरवाजे और खिड़कियां बनायी जाती थी जिससे रोशनी और गर्मी का बचाव हो सकता था। असीरिया और पर्शिया की तरह से चपटी छते जिससे गर्मी के दिनों में ढंडा रहे, बनाने की प्रथा यहां भी है।[5]

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278
2. वही, पृष्ठ 278
3. वैम्बर गैसकोइन-दी ग्रेट मुगल्स दिल्ली, पृष्ठ 182
4. चोपड़ा, पी.एन., पुरी वी. एन., दास एम.एन.- ए सोशल कल्चरल एण्ड एकोनोमिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, दिल्ली 1974, पृष्ठ 227
5. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 86

वर्नियर ने यूरोपिय इतिहासकरों को इस वात के लिए दोषी ठहराया है कि उन लोगो ने भारतीयों के गृह कला के मूल बातों की चर्चा नहीं की है और यह सिद्ध किया है कि भारतीय भवन पश्चिमी कला की तुलना में कम अच्छे थे। यह सत्य है कि पेरिस, लन्दन या एमस्टर्डम में जो भी परिपाटी है वह भारत की जलवायु के कारण दिल्ली में नहीं बनाया जा सकता था[1] फिर भी सुविधा और आराम की दृष्टि से भारतीय भवनों का निर्माण किया जाता था।[2]

मुगलों के महल :-

बादशाह राजा या राजकुमार का राजधानी में जो भी महल रहता था आकर्षण का विषय माना जाता था। वह एक दिवाल या खाई से घिरा हुआ होता था। प्रायः यह नदी के किनारे बनवाया जाता था जहाँ पर प्राकृतिक सौन्दर्य हो।[3] महलों के दो भाग होते थे। अन्दर के भाग में ऐसे कमरे होते थे जिनमें राजा और उनके परिवार के लोग रह सकें। वाहरी भाग में दीवाने आम, दीवाने खास और भण्डार घर होता था। महलों के पास अच्छे-अच्छे बाग बगीचे होते थे जिसमें तरह-तरह के फूल खिले होते थे और तालाब भी होता था। बागीचों में पानी भरने की नाली वनी रहती थी। ऐसे भी भवन होते थे जहाँ से लोग पशुओं का होड़ या संगीत प्रदर्शन देखते थे। घोड़ो, हाथियों और गायों के लिए अस्तवल बनवाया जाता था।

अकबर[4] ने आगरा[5] लाहौर और इलाहाबाद में जो महल बनवाये थे वह मुगलों के महलों के उदाहरण माने जाते हैं।[6] शाहजहाँ ने अकबर के आगरे

---

1. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 240
2. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 86
3. वही, पृष्ठ 87
4. इण्डियन आर्चिटेक्चर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 153
5. पर्सी ब्राउन- दि इण्डियन आर्चीटेक्चर, दि इस्लामिक पीरिएड तारपोरेवाला, बाम्बे, पृष्ठ 100
6. इण्डियन आर्चीटेक्चर, पूर्वोद्धृत, पृष्ट 163

के महल को नष्ट करके संगमरमर का महल बनवाया था।[1] अकबरी महल और जहाँगीरी महल देखने से उसका पूरा चित्र सामने आ जाता है। अकबर का इलाहाबाद का महल अब टूटे-फूटे हालत में पड़ा हुआ है। फतेहपुर सिकरी में जो भवन बनवायें गए हैं वो आराम और सुविधा की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।[2] दिल्ली के किले[3] में जो महल बनवाया गया है वह बड़ा सुन्दर है और इसके चार भाग हैं दीवाने आम में बड़ा सुन्दर बाग बना हुआ है जिसके एक तरफ संगमरमर के महल बने हुए हैं और दूसरा भाग नदी के तरफ पड़ता है। इसके महलो में एक दीवाने खास भी है जिसमें एक हम्माम हैं शाहजहाँ के भवनों में दीवाने आम और रंग महल बहुत सुन्दर था।[4]

दिल्ली का महल[5] एक सुव्यवस्थित इमारत है जिसमें एक ही समय में एक-एक रूपरेखा चित्र के अनुसार बनाया गया है। पूर्वी देशों मे यह सौन्दर्य एवं शान की दृष्टि से अद्वितीय है। सम्भवतः यह संसार भर में अनोखा है। यह अकबर के फतेहपुर सीकरी वाले महल से विपरीत है। यदि एक मरदाने ओज का प्रतीक है तो दूसरा जनानी साज सज्जा का नमूना है। दोनों में अपना-अपना आकर्षण है। केवल दिल्ली का महल एक ऐसा इमारत है जिसके द्वारा हम इस बात का अन्दाजा लगाने में समर्थ हो सकते हैं कि सम्पूर्ण महल के आकार की क्या रूपरेखा हो सकती है।[6]

इसका मुख्य प्रवेश द्वार लाहौरी दरवाजा पश्चिम में चाँदनी चौक की ओर है अन्दर की तरफ एक बड़ा सा आगन है। दीवाने आम के सामने नौवतखाना बना हुआ है यह आगरे के नौबूतखाने से अधिक शानदार है। महल

---

1. दि इण्डियन आर्चीटेक्चर दि इस्लामिक पीरिएड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 100
2. इण्डियन आर्चीटेक्चर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 171
3. वही, पृष्ठ 199-200
4. दि इण्डियन आर्चीटेक्चर (दि इस्लामिक पीरिएड), पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 3
5. पादशाहनामा, पृष्ठ 16, सक्सेना द्वारा उदधृत
6. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278

के उत्तरी भाग में सुप्रसिद्ध दीवाने खास बना हुआ है। शाहजहाँ की समस्त इमारतों में यह सबसे अधिक सुसज्जित है। तकनीकी दृष्टिकोंण से इसकी शैली उत्कृष्ट न भी हो परन्तु इसकी शोभा निराली है। इसमें ताज की सादगी का सर्वथा अभाव है क्योंकि इसकी परिकल्पना का आधार ही दूसरा था। इसका उद्देश्य शाहजहाँ के ऐश्वर्य की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करना था। इस विचार से यह सम्पूर्ण सफलता को अभिव्यक्त करता है।[1] अमीर खुसरों[2] की पक्तियां इस इमारत की कल्पना को यथार्थ रूप से स्पष्ट करती है-

यदी धरातल पर कहीं स्वर्ग है।
'तो' वह यहीं है, यहीं हैं, यहीं है।।

हिन्दुओं के महल :-

सोलहवी और सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दुओं के जो महल राजपुताना के स्थानीय राजधानियों में जैसे वीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर, ओरछा, दतिया, उदयपुर या जयपुर में बने हुए थे। उनकी कोई निश्चित शैली नही थी।[3] फरगुसन लिखते है कि ये केवल सुविधा के लिए बने हुए थे। ये महल वास्तव में मुगल शैली या भारतीय फारसी शैली पर आधारित था। इसमें छोटे-छोटे महल, जनाना घर आंगन बगीचे इत्यादि बने हुए होते थे।[4]

ओरछा (बुन्देलखण्ड) में जहाँगीर महल जिसको राजा वीर सिंह देव ने (1605 से 26) बनवाया था। यह एक भारतीय मध्यकालीन महल का उदाहरण है। बहुत भव्य और कलात्मक ग्वालियर का महल हिन्दू महल का एक अच्छा प्रमाण है। दतिया में राजा वीर सिंह का महल 1620 में बना हुआ था जो जहाँगीर मन्दिर से छोटा माना जाता था।[5]

---

1. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278
2. पादशाहनामा, पृष्ठ 23, सक्सेना द्वारा उदधृत।
3. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 90
4. दि इण्डियन आर्चिटेक्चर, दि इस्लामिक पीरिएड, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 127-30
5. सोशल लइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 91

उच्च वर्गों के महल :-

देश के विभिन्न भागों में अमीरों ने मकान बनाने के लिए किसी निश्चित शैली का अनुकरण नहीं किया है किसी भी निश्चित क्षेत्र की जलवायु, सामग्रियों की उपलब्धि भवन बनवाने वाले की इच्छा पर निर्भर था।[1] कुछ मकान लोग ऊचाई पर बनवाते थे जहाँ पर खुली हवा मिल सके। मकानों में चिमनी बनाने की प्रथा थी क्योंकि मकानों के अन्दर आग नहीं जलाये जाते थे। ऊपरी कमरों में दरवाजे और खिड़कियां होती थीं लेकिन शीशे नहीं होते थे। एक आदर्श मकान एक फूलवारी वाले बाग के बीच में बनाया जाता था जिसमें आगन, वृक्ष और पानी, वेसिन या पोखरा होता था।[2] मेन्डेलस्लो ने लिखा है कोई भी अच्छा मकान ऐसा नहीं होता था जिसमें बगीचे न हो और तालाब न हो।[3]

मकान दो खण्ड के होते थे, मर्दाना और जनाना। एक ड्राइंग रूम होता था जहाँ पर अमीर लोग आने वालों का स्वागत करते थे और दरबार लगाते थे, एक ख्वाबगाह या सोने का कमरा, एक रसोई घर आंगन इत्यादि बना रहता था।[4] साधारणतया तीन या चार कमरे होते थे जिसमे खुली हवा आती थी। एक खुला छाजन होता था जहाँ परिवार रात में सो सकें[5] और जहाँ पर खुली हवा आ सके। उपरी भाग में एक वरसाती होता था जो बरसात के दिनो में काम आता था। यूरोपियन यात्री अमीरों के मकानों की बड़ी प्रशंसा करते है।[6] जो बड़े विशाल और सुन्दर बने हुए होते थे।[7]

न्यूहाफ लिखते हैं कि युरोप के मकान इतने ऊंचे नहीं होते थे जितने

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 91
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 248
3. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 54
4. वही, पृष्ठ 64
5. जहागीरर्स इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 66
6. वही, पृष्ठ 67
7. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेस्डर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 64

हिन्दुस्तान के। विदेशी यात्री लिखते है कि घर का फाटक बहुत ऊँचा होता था और वह आँगन के बाद बना होता था जो ऊँची-ऊँची दिवारों से घिरा होता था और जिसमें अतिथियों का स्वागत किया जाता था।[1] हिन्दू लोग मकान के बाहरी भाग को बहुत सजाकर रखते थे जिसका निचला खण्ड पत्थर और सिमेण्ट से बना होता था और जिसके उपर लकड़ी का काम बढ़ई द्वारा तैयार किया जाता था। मकानों की छतें चपटी होती थीं।[2]

सूरत के भवन :-

सूरत के व्यापारियों के मकान सुन्दर और आकर्षक होते थे। यह ईंटे और चूने से बनाया हुआ कई मंजिल का मकान होता थां खिड़कियों में अधिकतर लकड़ियों का प्रयोग होता था जो डामन से मंगाया जाता था और जिस पर अच्छी-अच्छी फूल पत्ती बनी होती थी। बाहर से ये सादे बने होते थे लेकिन अन्दर से इसमें तरह-तरह की सजावट होती थी। मेन्डेलस्लो ने सूरत के आसपास बड़े खूबसूरत मकान और बगीचे देखे थे।[3]

कश्मीर के भवन :-

कश्मीर के तीन मंजिला और चार मंजिला मकान होता था तारीखे रशीदी में इस बात का उल्लेख मिलता है कि कश्मीर में कम से कम पाँच महल[4] के भवन होते थे और हर भाग में हाल, गैलरी और टावर बना होता था।

खुलासत-उत-तवारीख में इस बात का वर्णन मिलता है कि "निचले भाग में जानवर और कुर्सी मेज रखे जाते थे और दूसरे खण्ड में लोग रहते थे। तीसरे और चौथे में सामान रखा जाता था।"[5] भूकम्प के कारण कश्मीर के

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 95
2. वही, पृष्ठ 95
3. ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 225; द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 12
4. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82
5. सरकार जदुनाथ- इण्डिया आफ औरंगजेब, पृष्ठ 112

मकान लकड़ी के बने होते थे।[1] पालसर्ट ने मकानों के बाहरी भाग की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ये मकान बाहर से हवादार होते थे जिसमें बाहर से अच्छा काम किया होता था। इसकी छतें लकड़ी की बनी होती थी जो बड़ा सुहावना लगता था।[2]

खुलासत में कश्मीर के चलते हुए मकान की चर्चा की गयी है।[3] अधिकांश मकानों में बगीचा बना होता था और कहीं-कहीं पर छोटा सा झील बना होता था जो किसी नहर से जुड़ा होता था और जिसमें लोग नाव में मनोरंजन के लिए जाते थे।[4]

आगरा के भवन :-

वर्नियर ने आगरे में बहुत से अमीरों के मकानों को देखा जो बड़े कीमती किस्म के बने हुए थे। वनिया या हिन्दू व्यापारी इतने बड़े मकानों में रहते थे जो महल की तरह मालुम पड़ता था।[5] फतेहपुर सिकरी में बीरबल का बड़ा भव्य मकान बना हुआ था। इसका निचला भाग दो सीढ़ी ऊँचा बना हुआ है और निचले भाग में चार कमरे बने हुए है।

ट्रेवर्नियर आगरे में अमीरों के मकान से बहुत प्रभावित हुआ और उसने आगरे को भारत वर्ष का सबसे बड़ा नगर माना है[6] निकोलस विदिग्टन ने आगरे को लाहौर से कम महत्व दिया है। मान्सरेट दिल्ली में अमीरों के मकानों को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ जिसमें हरे पेड़ होते थे।[7]

---

1. आइन-ए-अकवरी, अंग्रेजी अनुवाद भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 352
2. जहागीरर्स इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 34
3. इण्डिया आफ औरंगजेब, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 70
4. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82
5. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 285
6. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 86
7. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 97

खुलासत में दिल्ली के अमीरों के मकानों की बड़ी प्रशंसा की गयी है दिल्ली के मकानों मे बहुत अच्छे किस्म के छज्जे और खिड़कियाँ रहती थी और आंगन में तालाब होता था। जहाँ पर लोग गर्मियों के दिनों में रहते थे।[1]

गरीबों के रहने के लिए मकान :-

गरीबों के मकानों के विषय में किसी भी विदेशी यात्री ने कोई चर्चा नहीं की है। वे लोग फूस की झोपड़ियों के बारे में चर्चा करते थे जिनमें खिड़कियाँ नहीं रहती थी और एक ही कमरा होता था। दूसरी झोपड़ी या हरियाली मकानों को बहुत अधिक सुन्दर बना देती थी।[2] दूसरे तरह के मकान मिट्टी के बने होते थे जिसमें मिट्टी की दिवाले छँह या सात फुट की बनी होती थी।

अबुल फजल[3] ने इन मकानों की मजबूती के बारे में चर्चा की है जबकि इन फूस के मकानों में प्रायः आग भी लग जाती थी। वर्नियर ने दिल्ली के अग्निकाण्ड की चर्चा की है कि प्रायः साठ हजार झोपड़ियां इनमें जल गयी[4] और झोपड़ियों में लोग चटाई पर सोते थे और थोड़े से वर्तनों को रखकर वे जीवन व्यतीत करते थे।

गरीबो के मकान बाँस और पेड़ की डालियों से बने रहते थे और कुछ लोग घास और फूस से अपने मकानों को बनाते थे। मनुची लिखते है कि पटना में फूस और खजूर की पत्तियों के मकान बनाये जाते थे जिसकी पुष्टि ट्रेवर्नियर ने किया है।[5] राल्फ फिच ने वाराणसी से पटना यात्रा करते हुए गरीबों के मकानों को मिट्टी व भूसे से बना हुआ देखा था।[6]

---

1. इण्डिया आफ औरंगजेब, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 5
2. द वायजेज आफ, टू दि ईस्ट इण्डीज, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 261
3. जहाँगीरर्स इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 67
4. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 246
5. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 101
6. अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 23-24

विदेशी लोग भारतीयों की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं कि ये लोग पेड़ो के बड़े प्रेमी होते थे। गाँव और शहर दोनों में पेड़ो की प्रथा थी। हर हिन्दू लोग अपने-अपने घरों में तुलसी का पेड़ लगाते थे जिसकी पूजा की जाती थी।[1] पित्रा डेलावेले ने 1623 में ये देखा कि जो कच्चे मकान होते थे उनको लोग गोबर से लीप देते थे और अपना जीवन वे बहुत साधारण ढंग से व्यतीत करते थे।[2]

मध्यम वर्ग के मकान :-

जहाँगीर के समय में दो या तीन खण्डों के मकान बनते थे जो बड़े हवादार होते थे।[3] ट्रेवॅर्नियर ने लिखा है कि वाराणसी में अधिकतर मकान ईटों और पत्थर के बने रहते थे।[4] यदि उनके मकान मुख्य सड़क पर बने होते थे तो वे अपने मकानों के नीचे के हिस्सों को दुकानों के रूप में इस्तेमाल करते थे उसे लोग व्यापार के रूप में भी प्रयोग में लाते थे।[5]

मोती मस्जिद :-

शाहजहाँ ने भारत में बहुत उच्च कोटि के मस्जिद बनवाये थे। दिल्ली और आगरे का जामा मस्जिद और आगरे के किले की मोती मस्जिद बहुत ही भव्य थे।[6]

मोती मस्जिद सात वर्ष (1645-53) में बनकर तैयार हुआ था। इस पर तीन लाख रूपया खर्च हुआ था। इसमें उत्कृष्ट कला एवं शिल्प के आश्चर्य सम्मिश्रण का नमूना पाया जाता है। इसके बनाने में श्वेत संगमरमर का प्रयोग किया गया है परन्तु इसमें पच्चीकारी की जरा भी सजावट नहीं मिलती है।[7]

---

1. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 103
2. वही, पृष्ठ 103
3. आगरा हिस्टारिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 4
4. ट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 96
5. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 99
6. आर.नाथ- सम ऐस्पेक्ट्स आफ मुगल आर्चिटेक्चर,दिल्ली 1976,पृष्ठ 140
7. मुगल सम्राट, शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 277

यह मस्जिद हयात वक्श बाग के पास बना हुआ है इसके चारो तरफ बड़ी ऊँची ऊँची दिवाले हैं। बाहरी दिवालें लाल पत्थर की बनी हुयी हैं लेकिन मस्जिद सफेद संगमरमर की है इसमें तीन सीढ़ियाँ है जो बीच का गुम्बद है वह किनारों के गुम्बद से ऊँचा है।[1]

जामा मस्जिद :-

जामा मस्जिद किले के बाहर उत्तर पश्चिम दिशा में स्थित है[2] इसका निर्माण शाहजहाँ की ज्येष्ठ पुत्री जहांनआरा वेगम ने कराया। जो पाँच वर्ष 1648ई. में बनकर तैयार हुआ और इसकी लागत पाँच लाख रूपये मानी जाती है। इस इमारत की रूपरेखा सुस्पष्ट है इसकी परिसज्जा बहुत उत्तम है और इसके आयाम बहुत ही भव्य माने जाते है। यह लाल पत्थर की बनी हुयी है तथा इसकी कुर्सी बहुत ऊँची है। मस्जिद के अन्दर दो तरफ बारहदरियाँ बनी हुयी है।[3]

सराय एवं विश्राम गृह :-

यहाँ पर थके हुए यात्री विश्राम करते थे और यहाँ से चिट्ठियों के भेजने के साधन भी उपलब्ध थे।[4] डा. कानूनगो के अनुसार- इन सरायों के द्वारा पूरे साम्राज्य मे एक जाल विछा हुआ था।[5] यूरोप के यात्री मुगल बादशाहों के सरायों की बड़ी प्रशंसा करते हैं[6] अकबर ने यह आदेश दिया था कि उनके पूरे

---

1. सम अस्पेक्ट्स आफ मुगल आर्चिटेक्चर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 140
2. बादशाहनामा, पूर्वोद्धृत, 406
3. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, 277
4. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 55
5. कानूनगों, के.आर.- शेरशाह, कलकत्ता 1921, पृष्ठ 392
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 65;
   ए वायेज टू सूरत इन दि इयर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 312

साम्राज्य में सराय बनवाया जाए।[1] इसकी पुष्टि ऐन ने की है।[2]

निकोलस विलिंग्टन जो जहांगीर के समय में भारत वर्ष आया था वह हर दस कोस पर सराय पाया था। वहां पर खाना बनाने और मवेशियों के रहने का प्रबन्ध था।[3] हर कोस पर मीलों का एक पत्थर लगा होता था और हर तीन मील पर एक कुँआ बना हुआ था। सराय या मस्जिद सड़क के किनारे बनवाया गया था जहाँ पर चोरी और डकैती का डर न रहें।[4]

मनुची ने औरंगजेब के समय में हर रास्ते पर सराय बना हुआ पाया था। नौरिस लिखते है कि ये सराय बहुत गंदे होते थे जिसमें केवल ऊँट के ड्राइवर रखे जा सकते थे। वर्नियर ने भी इस सराय की आलोचना की है। जहां पर पुरूष स्त्री और मवेशी रखे जाते थे।[5] मनुची ने इन बड़े सरायों की प्रशंसा की है।

मेन्डेलस्लों ने आगरा के बने हुए सरायों की प्रंशसा की है जहां पर रहने और सुरक्षा का अच्छा प्रबन्ध था।[6] कुछ सराय इतने बड़े बने हुए थे जिनमें एक हजार आदमी, ऊँट और गाड़िया रखी जा सकती थी। पुरूषों और स्त्रियों के रहने का स्थान अलग अलग बना हुआ था।[7] सबसे बढ़िया सराय बेगम साहिबा का था जो शाहजहां की सबसे बड़ी लड़की जहांनआरा ने दिल्ली में बनवाया था। वर्नियर ने इसकी तुलना पेरिस के शाही महल से की है[8] इसमें

---

1. अकबरनामा, अग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 381; स्टोरिया दी मोगोर भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 116
2. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 232
3. अर्लिट्रेवेल्स इन इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 225
4. सोशल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 147
5. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 235
6. द वायेजेज एण्ड ट्रेवेल्स इाफ दि अमवेसडर्स, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 351
7. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-1, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 68
8. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 28

उपर कमरे बने हुए थे तथा सुन्दर बगीचे और पानी के टंकी भी थी[1] सराय में विदेशो से धनी व्यापारी आते थे जो फारस और उजवेकिस्तान से सुरक्षित ढ़ग से सामान लाते थे। हर सराय में एक अधिकारी होता था। सरायों में सुरक्षा की अच्छी व्यवस्था थी। रात में फाटक बन्द करते समय सबको अपना सामान देखना पड़ता था। सुबह फाटक खुलने के पहिले सामान की जाँच कर ली जाती थी। चोरी गये सामान को तलाश करके चोर को कड़ी सजा दी जाती थी।[2]

खानकाह मुहम्मदया :-

यह खानकाह हजरत सैयद मुहम्मद और सैयद अहमद के नाम से कालपी (बुन्देलखण्ड) में प्रसिद्ध है। इसका निर्माण सैयद अहमद साहब ने अपने पिता मुहम्मद साहब की यादगार में 1650-55ई. में करवाया था। यह खानकाह बहुत बड़े भू-भाग पर बना हुआ है इसके अहाते में तीन बड़े गुम्बद एक कुआं तथा 100 से अधिक कब्रे हैं इसी खानकाह से एक सुरंग चौरासी गुम्बद के लिए गई है जिसकी लम्बाई एक किमी. से अधिक होगी। इसके बगल में नवनिर्मित मस्जिद है शाहजहाँ द्वारा इस खानकाह में बहुत बड़ी जायदाद खर्च के लिए लगाई गई थी।[3] हजरत का उर्स हर साल मनाया जाता है जिसमें बाहर से लोग आते है बाहर से आये हुए भक्तों को दो दिन तक बराबर खाने पीने का प्रबन्ध यहां की कमेटी द्वारा किया जाता है।

हजरत खुर्रम शाह की खानकाह (दरगाह) :-

कोंच में लगभग ढाई सौ वर्ष पूर्व एक सूफी सन्त हजरत खुर्रम शाह हुए है जो एक सिद्ध पीर थे। कहा जाता है कि एक बार तत्कालिन मुगल सम्राट सम्भवतः औरंगजेव उनसे मिलने के लिए आए, सम्राट ने उक्त सन्त की सिद्धि का साक्षात्कार करना चाहते थे। अतः उन्होने अपने सिद्ध का प्रर्दशन करते हुए

---

1. स्टोरिया दी मोगोर भाग-2, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 83
2. ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, पुर्वोद्धृत, पृष्ठ 28
3. मदनी, अब्दुल कययूम-बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास (831-1947ई.) पृष्ठ 125

जिस दिवाल पर बैठे थे उसे चलने का आदेश दे दिया आदेश पाकर दिवाल चलने लगी यह देखकर सम्राट बहुत प्रसन्न हुए।[1] सन 1755 ई. में उनकी दरगाह वनाई गयी। अभी हाल में कोंच में इसी इदगाह मैदान में खुदाई के दौरान पाँच सौ बर्ष पुरानी दो मजारे[2] मिली, इन मजारों का रूप इतना प्राचीन होते हुए भी नया ही प्रतीत होता है ये मजारे हिन्दू और मुस्लिम तथा अन्य श्रद्धालुओं के लिए भी आदरणिय है।

चित्रकला :-

फारस के महान कलाकार विहजाद के द्वारा जिस चित्रकला के शैली की प्रगति हुयी उसी परम्परा को भारत वर्ष में हुमायूँ के द्वारा आरम्भ किया गया था।[3] पूर्व मुगल बादशाहों ने, दरबार से सम्वन्धित चित्रकारों को समय-समय पर पुरस्कार तथा विभिन्न उपाधियों[4] से सम्मानित किया। निरन्तर शाही-संरक्षण में चित्रकला प्रगति करती रही।

शाहजहाँ ने चित्रकला में अपने पिता की परम्परा को जारी रखा। चित्रकला का विभाग मुहम्मद फकीरूल्ला[5] की देखरेख में था और मीर हाशिम उसका सहायक था। वह रूप चित्रण की कला में दक्ष था। सम्राट के अलावा दरबार के अन्य व्यक्ति भी चित्रकला का पोषण करते थे। जैसे दारा शिकोह और आसफ खाँ। दारा शिकोह के चालीस लघु रूप-चित्रों का संग्रह अब भी उपलब्ध है। उसे देखकर उस युग की कलाकृति की कल्पना की जा सकती है।[6]

---

1. तिवारी, मोती लाल, बुन्देलखण्ड दर्शन, पृष्ठ 125
2. दैनिक जागरण, 10 नवम्वर, (प्रकाशन तिथि)
3. ए सोशल,कल्चरल एण्ड एकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 195-96
4. अब्दुल अजीज- दी इम्पीरियल लाइब्रेरी आफ दी मुगल, इदारा-ए-अदवियात-ए-देहली, 1974, पृष्ठ 35
5. हिस्ट्री आफ फाइन आर्टस इन इण्डिया एण्ड सिलोन,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 208-09
6. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 279

शाहजहाँ के काल के प्रसिद्ध चित्रकारों में गोवर्धन मुहम्मद नादिर, हुनहर बालचन्द, अनूप चतुर, विचित्तर, और चितरमन का मूर्तिकला बहुत प्रसिद्ध था और कई बादशाहों के मूर्तियों को भी चित्रित किया गया था।[1] नूरजहाँ तथा मुमताज महल के चित्र भी बड़े सुन्दर ढ़ंग से बनाये गये थे। शाहजहाँ के काल के बहुत से छोटे चित्र मुगल काल के महानता के प्रतीक है। कभी-कभी शिकार खेलते हुए या साधू महात्माओं से बादशाहों के भेट को चित्रों में अंकित किया गया था। इनके समय में चित्रकला उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी।[2] डा. शान्ति स्वरूप के अनुसार शाहजहाँ के समय में बहुत से तरह के रंगों का प्रयोग और उसमें सजावट के बाद भी कला का पतन आरम्भ हो जाता है।

शाहजहाँ के समय की चित्रकला में कई दोष और परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। सर्वप्रथम उसमें मौलिक तेज एवं सहजता मे नितान्त अभाव पाया जाता है यद्यपि हस्तकला तो पहले के समान सुरक्षित दिखाई पड़ती है। परन्तु रूपरेखा या भाव में हेरफेर के कोई भी प्रयास नहीं के बराबर माने जाते हैं दूसरे शब्दों में मौलिकता की अपेक्षा नकल पर अधिक बल दिया गया है।[3] अद्भूत और विलक्षण की आश्चर्यजनक इच्छा भी सुस्पष्ट होती है। सम्भवतः यह उपाय मौलिकता को छिपाने के लिए था। इस समय सुसज्जित हाशिए का भी प्रचलन था। इसके बिना कोई भी रूप चित्रण पूर्ण नहीं समझा जाता था कुछ हाशियों में फूल पत्तियों की सजावट पायी जाती है तो किसी में चिड़ियों या पशुओं के चित्र पाये जाते हैं।[4] रंगो को चमकदार बनाने और चित्रो में भरने की प्रवृति पायी जाती है। सुनहरे रंग के अत्यधिक प्रयोग द्वारा चित्रो को चटक बनाया गया है। यह समसामयिक वास्तुकला का प्रतिबिम्ब माना जाता है।[5]

---

1. ए सोशल, कल्चरल, एण्ड एकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया, पूर्वोद्धृत,पृष्ठ2002
2. वही, पृष्ठ 200
3. मुगल सम्राट शाहजहाँ, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 279
4. वही, पृष्ठ 279
5. वही, पृष्ठ 279-280

राजपूत चित्रकला :-

इसके दो भाग थे। राजस्थानी और पहाड़ी पहला राजस्थान और बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सीमित था जिसको कभी-कभी जयपुरी कलम भी कहते हैं।[1] जयपुर, विकानेर, और उदयपुर के दरबारों में इसके मुख्य केन्द्र थे। पहाड़ी कलम शिवालिक पहाड़ियों में जिसमें पुंछ, जम्मू, वाशोली, मध्य हिमाचंल क्षेत्र, टेहरी, गढ़वाल, सम्मिलित थे।[2]

राजस्थानी कला के दो भाग थे एक राम के पुजारी थे जो राम के समय के चित्र बनाते थे उसमें राम, लक्ष्मण, भरत शत्रुघन, सीता और हनुमान इत्यादि के चित्र थे। दूसरे वे जो कृष्ण के पुजारी थे वे कृष्ण राधा, गोपियों, ग्वालों और गायों के चित्र बनाते थे।[3]

मूर्तिकला :-

मुसलमानों की धर्मान्धता से भारतीय मूर्तिकला को बहुत अधिक क्षति हुयी फिर उसके बाद आधुनिक युग का प्रार्दुभाव हुआ। उनके विरोध एवं उपेक्षा के कारण मूर्तिकला का विकास रूक गया था और फिर किसी तरह से राजस्थान और गुजरात की मूर्ति परम्परा सुरक्षित रह सकी।[4]

धार्मिक उद्देश्यों से कुछ मूर्तिया अंकित की गई जो कला की दृष्टि से निष्प्राण थी।[5] शोभा के लिए मुसलमानी प्रभाव से मूर्तियों के अंलकरण के स्थान पर रत्नजटित पच्चीकारी की प्रतिष्ठा हुई।[6] इतने विरोध और प्रतिकूल प्रभाव होने पर भी अपनी सुदृढ़ और परमोन्नत परम्परा के कारण मूर्तिकला उस समय भी मृत नहीं हुयी थी।

---

1. ए सोशल, कल्चरल एण्ड एकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 201
2. वही, पृष्ठ 201
3. वही, पृष्ठ 202
4. वर्मा, राम नरेश- हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृष्ठ 382
5. वही, पृष्ठ 382
6. वही, पृष्ठ 382

वैष्णव मूर्तिकला की निम्नलिखित प्रवृत्तिया आधुनिक युग की अपनी विशेषताएं और उपलब्धियां है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की प्रतिमा का एक साथ विधान, सीताराम की मूर्तियों का अंकन नवीनतम और गोवर्धन पर कृष्ण के बालरूपों का निर्माण राधा वल्लभ और युगल किशोर की मूर्तियों का अंकन वैष्णव युग की प्रवृत्तियां थी।[1] आलोच्ययुगीन साहित्य में मूर्तिकला के सम्बन्ध में कम उल्लेख आते है। वास्तुकला के प्रसंग में खम्भे पर मूर्तियां उकेरने[2] का वर्णन मिलता है। डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने शुंग कालीन शालमंजिका की स्तम्भ प्रतिमाओं की परम्परा में जायसी द्वारा उल्लिखित इन प्रतिमाओं को माना है।[3]

पत्थर की गढ़ी हुई और कढ़ी हुयी पुतलियों का उल्लेख तुलसी ने किया है जो इस प्रवृति के सामान्य प्रचलन का सूचक है।[4] मानस में जनकपुर के विवाह मण्डल में उन्होने मंगल द्रव्य लिये हुए देव प्रतिमाओं का वर्णन किया है। जो कला से हटकर धर्म भाव के प्रधानता की सूचना देता है। सूरदास ने पाहन की पुतरियों का उल्लेख किया है।[5] सन्त कवि रविदास ने पाहन प्रतिमा का उल्लेख किया है।[6] निषेध प्रसंगो में कबीर ने मूर्ति का नाम लिया है किन्तु उसके निर्माण के सम्बन्ध में कोई आवश्यक सूचना नहीं दी जाती है। मिट्टी की मूर्तियों की परम्परा भारत में बहुत पुरानी है आलोच्य युग में भी यह वर्तमान थी। इसकी सूचना जमाल कवि के एक दोहे से प्राप्त होती है।[7] सांचे में ढालकर मूर्तियों को बनाने के सम्बन्ध में कुछ उल्लेख प्राप्त होते है।[8] सांचे में ढली हुयी प्रतिमा की चर्चा नारायण

---

1. वर्मा, राम नरेश- हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका, पृष्ठ 382
2. पद्मावत, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 278
3. वही (टिप्पणी-2), पृष्ठ 278
4. गीतावली, अयोध्या काण्ड, पूर्वोद्धृत, पद 19
5. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 2788
6. रामानन्द शास्त्री (स्वामी)- सन्त रविदास और उनका काव्य, पृष्ठ 118
7. जमाल के दोहे, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 36
8. वलभद्र- शिख नख, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पत्र सं. 9

दास ने की है[1] जिसको इस कला के विकास की सूचना प्राप्त होती है। वेलिकार ने काष्ठ प्रतिमा को मन्दिरों में प्रतिष्ठित होने का वर्णन किया है।[2] शाहजहाँ इस बात को पसन्द नहीं करते थे कि अपने पूर्वजों की भांति मूर्तियों का नकल उतारा जाय। संयोग वश उसका उत्तराधिकारी औरंगजेब हुआ जो कला को तनिक भी प्रोत्साहंन नही देता था[3] क्योंकि वह इसे धर्म के विपरित मानता था। उस समय निकाले हुए कलाकार प्रान्तीय राजधानियों में शरण पायें या फिर अमीरों के दरबार में चले गये। वे लोग स्थानीय कला संस्थाओं का निर्माण किए और धीरे-धीरे कला का पतन हो गया।

संगीत :-

अन्य ललितकलाओं की भांति मुगल काल में संगीत कला एवं संगीत शास्त्र के क्षेत्र में पर्याप्त परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। शाहजहां के समय से संगीत के क्षेत्र में प्रदर्शन प्रियता और अलंकरण की प्रवृति बढ़ने लगी थी।[4] अबुल फजल[5] ने संगीत को मनोरंजन का बहुत बड़ा साधन माना है जो गांव और शहर दोनों में प्रचलित था।[6] गाने की प्रक्रिया चारो तरफ प्रचलित थी। जूता बनाने वाले, ईटे का काम करने वाले, समुद्र में जहाजों पर काम कने वाले झुंडों में गाते थे। नवयुवतियां जो गांव में पानी भरने के लिए जाती भी वे भी गाती थी। वे बीस या तीस के झुण्डों में गाती हुयी जाती और आती थी। धनी लोग गायन और वादन दोनों पसन्द करते थे।[7] संगीत के किस्मों में ध्रुपद, चिन्द, ब्रुवा

1. नारायण दास- छिताई वार्ता, पृष्ठ 20
2. वेलिकिशन- रूक्मिणी री, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 1
3. ए सोशल कल्चरल एण्ड एकोनामिक हिस्ट्री आफ इडियां पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 233
4. डा0 नगेन्द्र- हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास षष्ट्म भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2030 वि. पृष्ठ 21
5. आइन-ए-अकवरी- अंग्रेजी अनुवाद भाग-1 पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 611
6. दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स, ट्रेवल्स इन टू, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 82
7. अकबरनामा,अग्रेजी अनुवाद भाग-2,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 211, भाग-3,पृष्ठ 378

बंगुला, चुतकलाही, तराना, लचारी, छन्द, सदर, देशक, उस समय प्रसिद्ध थे। कांचनी दरवार का प्रिय वर्ग था।[1]

अकबर ने गायन एवं वादन में दक्ष कलाकारों को दरबार में सम्मान दिया। अबुल फजल अकबर के दरबार के छत्तीस संगीतज्ञों के नाम बताते है तानसेन तथा बाज बहादुर इनमें प्रसिद्ध थे। संगीतज्ञ लोग सात दलों में विभाजित थे, प्रत्येक दल सप्ताह में एक दिन सम्राट का मनोरंजन करता था। जहाँगीर तथा शाहजहाँ के काल में भी यह परम्परा प्रचलित रही।[2]

हिन्दू तथा मुस्लिम संगीत पद्धतियों का मुगल दरबार में मुक्त रूप से समन्वय हुआ। जहांगीर तथा शाहजहां ने भी इस परंपरा को जारी रखा। जहांगीर के दरबार में जहांगीर दाद, खुर्रम दाद, परवेज दाद, तथा हमजा प्रसिद्ध थे। शाहजहां स्वयं संगीतज्ञ था तथा कभी कभी वे गोष्ठियों में भी भाग लेते थे।[3] उनके दरबार में तीस बहुत बड़े संगीतज्ञ और वाद्य संगीतज्ञ उपस्थित थे। उनमें सबसे प्रसिद्ध जगन्नाथ सूरसेन लाल खाँ, महापात्र और दूरंग खाँ थे।[4]

जहांगीर और शाहजहाँ के काल में वादन और गायन संगीत की बड़ी प्रगति हुयी थी। औरंगजेब द्वारा संगीत के वहिष्कार करने पर भी उस समय दरबारी संगीतकारों को देशी राजाओं तथा सामन्तों के यहां शरण लेनी पड़ी। जहां पर संगीत के शास्त्रीय पक्ष के निर्माण से ज्यादा आश्रयदाताओं की रूचि प्रमुख थी। अतः संगीत के शास्त्रीय पक्ष का धीरे-धीरे पतन होने लगा।[5] 1665-66 में राग दर्पन लिखा गया और औरंगजेब के शासनकाल में मुरक्काई

---

1. ट्रेवेल्स, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 196
2. मुगल शासन प्रणाली, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 260
3. वही, पृष्ठ 260-261
4. ए सोशल कल्चरल एण्ड एकोनामिक हिस्ट्री आफ इंडिया,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 237
5. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास षष्ठ भाग, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 22

दिल्ली लिखा गया जो इस बात का सबूत है कि संगीत मे अब भी लोग रूचि रखते थे।[1]

नृत्य :-

भारत में नृत्य को उत्कृष्ट कला के रूप में सभ्यता के उषाकाल से स्वीकार किया गया है तभी से लेकर आज तक इसकी अनेक शास्त्रीय एवं लौकिक शैलियां विकसित हो रही है।[2] भारत के लोग जीवन का इस सर्वग्राह्य कला से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है आदि काल से लोकनृत्य अनेक रूप-विकास के साथ प्रचलित है और आज यह सम्पूर्ण विश्व में आकर्षण का केन्द्र है।

आलोच्यकाल में संगीत के अनिवार्य अंग के रूप में नृत्य की प्रतिष्ठा थी।[3] नृत्य की गतियां वाद्य और गायन के ताल, लय और मात्रा के अनुसार होती है वस्तुतः इन तीनो का सापेक्ष महत्व होता है। गायन की भाति नृत्य की भी उत्तरी और दक्षिणी दो प्रणालियां प्रचलित हैं। जिनमें से उत्तरी भारत की नृत्य पद्धति आलोच्य काल में वर्णित है। स्वभाव भेद से नृत्य दो प्रकार का है, तांडव और लास्य। अधिक आवेगपूर्ण पुरूषोचित तीव्रता वाला नृत्य तांडव नृत्य और कोमल गति सम्पन्न लास्य नृत्य कहा जाता है।[4]

आलोच्ययुग में अष्टछापी कवि कृष्णदास ने तीन स्थलों पर इन भेदों का वर्णन किया है।[5] नृत्य के बोल और संगीत के पारिभाषिक शब्द इस प्रकार है ता, ता थेई, थेई[6], तत, थेई, ता ता थेई, उरप, तिरप गति[7] आदि। इसका वर्णन अनेक कवियों ने किया है। लखनऊ जयपुर और दिल्ली के भाग में कत्थक

---

1. ए सोशल कल्चरल एण्ड एकोनामिक हिस्ट्री आफ इण्डिया,पूर्वोद्धृत,पृष्ठ 238
2. हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास, प्रथम भाग, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 657-660
3. अग्रवाल,सरयू प्रसाद- अकवरी दरबार के हिन्दी कवि, में संगीतकार,पृष्ठ 360
4. सुधाकर आचार्य- नृत्य भारती, पृष्ठ 7
5. कृष्णदास के पद, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 379
6. सूरसागर, पूर्वोद्धृत, 1149
7. नन्ददास- नन्ददास पदावली, पृष्ठ 333

नृत्य बहुत पुरानी परम्परा थी। आध्यात्मिक ढंग से लोग इस नृत्य में भाग लेते थे।[1] यह प्रायः कत्थकों के समूह द्वारा होता था जो रामायण और महाभारत से घटनाओं का उद्धरण नृत्य द्वारा प्रस्तुत करते थे।[2] यह उत्तरी भारत में बहुत ज्यादा प्रचलित था। कत्थक प्रायः दरबारी वस्त्र धारण करते थे जो फारस की परम्परा के अनुकूल था। मुगल काल में इसी प्रकार के नृत्य की चर्चा मिलती है।[3]

धनिको के लिए नाचना मनोरंजन का साधन था। अच्छे अच्छे मौकें पर नाचने वाली लड़कियों को नचवाया जाता था ऐसे मौके पर वे नाचती, गाती और मेहमानों को खुश करती थीं।[4] बड़े शहरो में स्त्रियां नाचती थीं।[5] रस्सी पर नाचना[6] भी प्रचलित था। अमीर लोग अखाड़े में नांच देखने जाते थे।[7] औरंगजेब ने नाचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया और उसने यह आदेश दिया कि जो भी नाचने वाली लड़कियां है वे या तो शादी करलें या फिर राज्य छोड़कर चली जायं।[8]

1. ए सोशल कल्चरल एण्ड एकोनामी हिस्ट्री आफ इण्डिया, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 233
2. वही, पृष्ठ 234
3. वही, पृष्ठ 235
4. ट्रेवेल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 216
5. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 9; ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 182
6. मुन्तखब-उत-तबारीख, अंग्रेजी अनुवाद भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 97
7. आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-3, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 258
8. स्टोरिया दी मोगोर, भाग-2, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 09

ग्रन्थानुक्रमणिका

ग्रन्थानुक्रमणिका

सन्दर्भग्रन्थ

हिन्दी :-

अग्रवाल, सरयू प्रसाद - अकबरी दरबार के हिन्दी कवि एवं संगीतकार

आलम - माधवानल काम कन्दला

कवि श्यामलदास - वीरविनोद, राज्य मन्त्रालय, उदयपुर द्वारा प्रकाशित,1886

कृपाराम - हिततंरगिणी

कृपा निवास - भावना पच्चीसी

कृपानिवास पदावली, डा0 त्रिलोकी नारायण दीक्षित, हिन्दी विभाग लखनऊ

केशवदास - रसिक प्रिया

राम चन्द्रिका, टीकाकार, भगवान दीन इलाहाबाद, 2004वी सम्वत्

कृष्णदास - कृष्णदास के पद

कृष्णदास कविराज - श्री श्रीचैतन्य चरित्र अमृत,भक्त ग्रन्थ प्रचार भण्डार, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण वि.स. 1355

कृष्णदास उपाध्याय - भोजपुरी ग्राम गीत, प्रयाग

कवि सूदन - सुजान चरित्र, षष्ठ अंग, छंद 42

कबीर - कबीर ग्रन्थावली, सम्पादक, पुष्पालाल सिंह

कबीरदास - वीजक,टीकाकार,विश्वनाथ सिंह वाम्वे,सम्वत्,1961

गंगा कवि - गंग कवित्त, सम्पादक, वटे कृष्ण

चाचा वृन्दावन दास - लाड़सागर, ब्रज प्रेमानन्द सागर

जायसी मलिक मुहम्मद - पद्मावत, संजीवनी व्याख्या
सम्पादक डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल

जीवराम "युगल प्रिया" - रसिक प्रकाश भक्त माला

जमाल - जमाल के दोहे,सम्पादक पंडित महावीर सिंह गहलोत

टंडन मायारानी - अष्टछाप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन

तुलसीदास - श्रीकृष्ण गीतावली, गीता प्रेस गोरखपुर,
कवितावली, गीता प्रेस गोरखपुर
रामचरित मानस, गीता प्रेस गोरखपुर
गीतावली, वालकाण्ड, गीता प्रेस गोरखपुर
दोहावली, गीताप्रेस गोरखपुर

तानसेन - संगीतसार

तोष कवि - सुधानिधि

दास, राम चरण - अष्ट्याम पूजा विधि

दास, श्याम सुन्दर (राय साहब) - हिन्दी शब्द सागर, भाग-4

दास, श्रीकृष्ण - माधुर्य लहरी

दादू दयाल - श्रीदादू दयाल की वाणी

द्विजा माधव - मंगल चन्देर गीत, कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रकाशन
द्वारा, प्रकाशित 1952

द्विवेदी, हजारी प्रसाद - प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद

देव - सुखसागर तरंग

नगेन्द्र, डा0 - हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास षष्ठ भाग, नागरी
प्रचारिणी सभा वाराणसी सं. 2030

नरोत्तम दास - सुदामा चरित

नागर समुच्चय	-	उत्सव माला, प्रकाशन ज्ञान समुद्र, प्रेस वम्बई
नारायण दास	-	छिताई वार्ता
नन्ददास	-	नन्ददास पदावली
पाण्डेय राजवली	-	हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास प्रथम भाग, अध्याय-5
पलटूदास	-	शब्दावली
परमानन्द	-	परमानन्द सागर
पद्माकर	-	राम रसायन वालकांड जगद्विनोद
पारीख, द्वारका प्रसाद	-	सूर निर्णय
प्रसाद, महेश	-	इस्लामी त्योहार और उत्सव वनारस (एन0डी0)
ब्रजवासीदास	-	ब्रजविलास, महाराजा बलरामपुर, पुस्तकालय, वलरामपुर गोण्डा में सुरक्षित
वलभद्र	-	रस विलास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी शिखनख, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
वांकी दास ग्रन्थावली	-	कृष्ण पच्चीसी,सम्पादक,पुरोहित हरि नारायण शर्मा
मीरा मिश्रा	-	महाराजा अजीत सिंह एवं उनका युग, राजस्थान, हिन्दीग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1973
मीरा	-	मीरा सुधा सिन्धु
मिश्र श्याम विहारी (राय वहादुर)	-	मिश्र बन्धु विनोद भाग-2
मिश्र, भगीरथ	-	हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास भाग-7, नागरी प्रचारिणी सभा, वनारस सं. 2029वि0
मुकुन्दराम	-	कवि कंकनचण्डी नटवर चक्रवर्ती द्वारा वंगवासी प्रेस लखनऊ से प्रकाशित, तृतीय संस्करण
यूसुफ हुसेन	-	मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति की एक झलक, अनुवादक डा. मुहम्मद उमर, भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ़ प्रथम संस्करण

राम चरण (रामसनेही) - लक्ष-अलक्ष जोग
अमृत उपदेश, नवम प्रकाश
अणमो विलास, पदंदश प्रकर्ण

रामानन्द शस्त्री (स्वामी) - सन्त रविदास और उनका काव्य

राठौर, पृथ्वीराज - वेलि कृशन रूकिमणी री,
सम्पादक डा0 आनन्द प्रकाश दीक्षित

रहीम - रहीम रत्नावली

रसखान - सुजान रसखान

लालदास - अवध विलास

लाला, भगवान दीन - विहारी सतसई

वर्मा, धीरेन्द्र - अष्टछाप

वर्मा, रामनरेश - हिन्दी सगुण काव्य की सांस्कृतिक भूमिका

व्यास, कृष्णानन्द - संगीत राग कल्पद्रुम, दूसरा भाग

शर्मा, रतन चन्द्र - मुगलकालीन सगुण भक्ति काव्य का सांस्कृतिक विश्लेषण,संस्करण 1979 ई0 जयपुर पुस्तक सदन, जयपुर

शर्मा, श्रवण लाल - व्रतोत्सव चन्द्रिका

शर्मा, देवेन्द्र - हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास भाग-5 नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी सम्बत् 2031

शर्मा, गोपीनाथ - राजस्थान का इतिहास शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1937

शान्ति कुमार नानूराम (व्यास) - रामायण कालीन संस्कृति

शुक्ल, राम चन्द्र - मलिक मुहम्मद जायसी ग्रन्थावली शुक्ल आचार्य

रामचन्द्र, शुक्ल आचार्य - हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

शुक्ल, सोमनाथ - हिन्दी साहित्य के आधार पर भारतीय संस्कृति

सूरदास - सूरसागर, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग 1916

सान्याल,एन.एस.वी. - सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्रयाग 1916

सिंह, भगवती प्रसाद - रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय

सुन्दरदास ग्रन्थावली - सवैया, प्रकाशन राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

सुधाकर आचार्य - नृत्य भारती

सेनापति - कवित्त रत्नाकर, हिन्दी परिषद, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित प्रथम संस्करण

सिंह, राम इकवाल (राकेश) - मैथिली लोक गीत, प्रयाग, 1999 विक्रम संवत

अंग्रेजी :-

ओविग्टंन जे0 - ए वायेज टू सूरत इन दि इयर 1689, लन्दन 1696

करेरी - इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थेवेनाट एण्ड करेरी, भाग-3, अनुभाग-3, सम्पादक सुरेन्द्र सेन, नई दिल्ली 1949

ग्रोस, एफ0 एस0 - ए वायेज टू दि ईस्ट इंडीज विद जनरल रिफ्लेकशन आंन दि टूडे आफ इण्डिया लन्दन भाग-2

टेरी - वायेज टू ईस्ट इण्डिया, लन्दन 1655

ट्रेवर्नियर जीन वापतिस्ता ट्रेवेल्स इन इण्डिया, सम्पादक वाल, लन्दन 1889

डेलावैले, पित्रा - दि ट्रेवेल्स आफ ए नोवुल रोमन इन टू ईस्ट इंडीज एण्ड अरेवियन डिसर्टा, लन्दन 1664

ट्रेवेल्स आफ पित्रा डेलावेले अनुवादक जी0 आर्क्स, सम्पादक ग्रेहकल्यूत सोसाइटी, लन्दन 1892

डी, लांयट - दि एम्पायर आफ दि ग्रेट मुगल्स,ट्रेवेल्स इन टू,अंग्रेजी जे0 ए0 गोलेन एण्ड एनोटेड द्वारा एस0 एन0 बनर्जी बम्बई, 1928

थेवेनाट,मोनसियर डी. ट्रेवेल्स आफ, इन टू दि लेवेन्ट, तीन भाग, अंग्रेजी अनुवाद 1686

निकोलो, मनुची - स्टोरिया दी मोगोर, अनुवादक विलियम इरविन, लन्दन 1907-08

पेंलसार्ट - जहांगीर्स इण्डिया, अनुवादक मोरलैण्ड तथा गेइल, कैम्ब्रीज, 1925

पियरार्ड फ्रानकोज आफ लेवल - द वायेजेज आफ दि ईस्ट इंडीज, द मालदीव्स, अंग्रेजी अनुवाद, एच0सी0पी0 वेल, हाकल्यूत सोसाइटी लन्दन

पीटर मण्डी - ट्रेवल्स आफ, इन यूरोप एण्ड एशिया, अनुदित आर0सी0 टेमपुल, खण्ड-2 ट्रेवेल्स इन एशिया, हकल्यूत सोसायटी 1914

फास्टर विलियम - अर्लि ट्रेवेल्स इन इण्डिया, लन्दन 1927

वर्नियर फ्रेन्कोइस - ट्रेवेल्स इन मुगल एम्पायर, अनुवादक ए0 कान्स्टेवुल, 1861, सम्पादक स्मिथ आक्सफोर्ड 1934

मेन्डलस्लो अलवर्ट - द वायजेज एण्ड ट्रेवेल्स आफ दि अमवेसडर्स, द्वितीय संस्करण, लन्दन 1669

मान्सरेट एस0जे0 - दि कमेंटेरीज,अनुवादक जे0एस0 हालैण्ड,लन्दन 1922

मैकालिफ, एम0ए0 - दि सिख रिलिजन, आक्सफोर्ड 1909

मैनरिक सेवेशियन - ट्रेवेल्स, अनुवाद सी0ई0 लार्ड एण्ड हास्टन, भाग-2, लन्दन 1927

रो, सर टामस - दि एम्वेसी आफ टू दि कोर्ट आफ दि ग्रेट मुगल, सम्पादक विलियम फास्टर लन्दन 1899

लिन्सचोटेन - द वायेजेज आफ, टू दि ईस्ट इंडीज अंग्रेजी अनुवाद भाग-1, कोक वर्नल, लन्दन, भाग-2, पी0ए0टाइल, लन्दन 1885

सर टामस रो और फ्रायर - ट्रेवेल्स इन इण्डिया इन दि सेवेन्टीन्थ सेन्चुरी, लन्दन 1873

स्टेवोरिनस जे0एस0 - वायेजेज टू दि ईस्ट इंडीज, अंग्रेजी अनुवाद, सैमुएल हुल विलकॉफ भाग-3, लन्दन 1798

हैमिल्टन,एलेक्जेंडर - ए न्यू एकाउन्ट आफ दि इस्ट इंडीज भाग-2, लन्दन

उर्दू :-

आजाद, मुहम्मद हुसैन - दरबार-ए-अकबरी 1921 (उर्दू)

अबुल हसन अली नदवी - हिन्दुस्तान की कदीम इस्लामी दर्सगाहें नदवतुल-मुसन्तफीन, लखनऊ 1922

अबुल अमान अमृतसरी - सिख मुस्लिम तारीख हकीकत के आइने में,इदारा-ए-सकाफत-ए-इस्लामियाँ, लाहौर, 1958

जायसी मलिक मुहम्मद - पदमावत, उर्दू अनुवाद, पंडित भगवती प्रसाद, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ

जमील, जालिवी - तारीख-अदब-ए-उर्दू, जिल्द, प्रथम संस्करण मदीना प्रेस विजनौर 1938 एजूकेशन बुक हाउस दिल्ली 1975

मुहम्मद अयूब खाँ - आलमगीर हिन्दुओं की नजर में, प्रथम संस्करण, मदीना प्रेस विजनौर 1938

मुहम्मद हसन - हिन्दी अदब की तारीख ओरियंटल लाग मेन पब्लिकेशन द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण, 1922

मुहम्मद हुसैन आजाद - आव-ए-हयात, नवल किशोर प्रेस लखनऊ द्वारा प्रकाशित 1922

मुहम्मद उमर - हिन्दुस्तानी तहजीब का मुसलमानो पर असर, मन्त्रालय सूचना एवं प्रसारण विभाग,नई दिल्ली 1975

शिवली नोमानी - शेर-उल-अजम, नवल किशोर प्रेस लखनऊ संस्करण 1910 व 1922, भाग-3

मजामीन-ए-आलमगीरी, दर मतवा कानपुर 1911

सै.सबाहुद्दीन अब्दुर्रहमान- हिन्दुस्तान के अहद-ए-वस्ता का फौजी निजाम, मआरिफ प्रेस आजमगढ़ 1960

- हिन्दुस्तान के मुसलमान हुकमरानों के अहद के तमुददुनी जलवे, मआरिफ प्रेस आजमगढ़, 1963

सै0 अहमद - तारीख-ए-आगरा, आगरा 1931

- असर-उस सनादीद, कानपुर 1904 भाग-3

अनूदित फारसी ग्रन्थ :-

अबुल फजल - अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, एच0 वेवरिज भाग-1, भाग-2, भाग-3, कलकत्ता 1904

- आइन-ए-अकबरी, अंग्रेजी अनुवाद, भाग-1 ब्लाखमैन, एच0 कलकत्ता 1873, भाग-2 तथा भाग-3, एच0एस0 जैरट तथा जदुनाथ सरकार, कलकत्ता 1948 तथा 1949

अहमद निजामुद्दीन - तवकात-ए-अकबरी, वी0डे0 द्वारा अंग्रेजी अनुवाद भाग-1, कलकत्ता 1927

इब्न हसन बुरहान - तुजुक-ए-वालाजाही, अंग्रेजी अनुवाद मुहम्मद हुसैन नैनार

कजवीनी मिर्जा अमीनाई - वादशाहनामा, पब्लिक लाइब्रेरी लाहौर

खाफी खाँ, मु0 हाशिम - मुन्तखब-अल-लुबाब, अनुवादक मुहम्मद फारूकी, नफीस अकादमी कराची द्वारा प्रकाशित 1963

ख्वान्दामीर - कानून-ए-हुमायूँन,अंग्रेजी अनुवाद वेनीप्रसाद,1940

गुलबदन वेगम - हुमायूँनामा, अंग्रेजी अनुवाद, ए0एस0 वेवरिज, लन्दन 1902

चन्द्रभान ब्राहमन - बहार चमन, यदुनाथ सरकार ने इसके कुछ अंश का अनुवाद, इण्डिया आफ औरंगजेव में किया है प्रकाशक, सान्याल एण्ड कं0 प्रिन्टर्स 1901

जहाँगीर - तुजुक-ए-जहांगीरी, अंग्रेजी अनुवाद, ए0 रोजर्स एवं वेवरिज, कलकत्ता 1909-14

फरिश्ता - तारीखे फरिश्ता, अंग्रेजी अुनवाद जान ब्रिग्स, हिस्ट्री आफ दि राइज आफ मोहम्मडन पावर इन इण्डिया, भाग-2,3,4 कलकत्ता 1909-10

बावर - बावरनामा, अंग्रेजी अनुवाद, लुज्जाक एण्ड कम्पन्नी लन्दन 1921

बदायूनी अब्दुल कादिर - मुन्तखब-उत-तवारीख,अंग्रेजी अनुवाद रेकिंग भाग-1, लो भाग-2, हेग भाग-3,कलकत्ता 1898,1884,1925

मुहम्मद वारिस - पादशाहनामा, (डा0 वनारसी प्रसाद सक्सेना द्वारा उदधृत)

मुहम्मद मुस्तैद खाँ साकी - मआसिर-ए-आलमगीरी, अनुवादक सरकार अदुनाथ, कलकत्ता 1953; मआसिर-ए-आलमगीरी, अनुवादक फिदा आली तालिब प्रकाशक जामिया उस्मानिया हैदराबाद (दक्किन)

राय चतुर्मन सक्सेना - चहार गुलशन इसका आंशिक अनुवाद इण्डिया आफ औरंगजेब में सरकार जदुनाथ ने किया है, जो सान्याल एण्ड कं प्रिन्टर्स द्वारा प्रकाशित हुई, 1901

लाहौरी अब्दुल हमीद - पादशाहनामा, अंग्रेजी अनुवाद, इलियट एण्ड डाउसन

शाहनवाज खाँ - मआसिर-उल-उमरा, सम्पादक, मौलवी अब्दुर्रहीम, विवलिओथिका इण्डिया कलकत्ता 1888

सादिक खाँ - तबकात-ए-शाहजहाँनी (डा0 बनारसी प्रसाद सक्सेना द्वारा उद्धृत)

सालिह, मु0सालिह कम्बो - अमल-ए-सालिह, बिबलिओथिका इण्डिका एवं वि0स0 अति 2622

आधुनिक ऐतिहासिक ग्रन्थ :-

अब्दुल अजीज - दी इम्पीरियल लाइब्रेरी आफ दी मुगल्स, इदारा-ए-अदवियात-ए-देहली 1974

अशरफ के0एस0 - लाइफ एण्ड कन्डीशन आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, कलकत्ता 1935

अल्तेकर ए0एस0 - दि पोजीशन आफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, बनारस 1935

- ए हिस्ट्री आफ बनारस फ्राम प्री हिस्टोरिक टाइम्स टू प्रेसेन्ट डे, बनारस 1937

आर0 नाथ	–	सम एस्पेक्ट्स आफ मुगल आर्किटेक्चर,दिल्ली,1976
आर्मे आर.	–	हिस्टारिकल फ्रेग्मेण्ट्स आफ दी मुगल एम्पायर, लन्दन 1805
ओर, डब्लू0जी0	–	ए सिक्सटीन्थ सेन्चुरी इण्डियन मिस्टिक्स दादू दयाल एण्ड हिज फालोअर्स
इरविन विलियम	–	लेटर मुगल्स, भाग-1,2 कलकत्ता 1922
इलियट एण्ड डाउसन	–	हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज टोल्ड वाईइट्स ओन हिस्टोरियन्स, भाग 1-6, लन्दन
इथ हरमैन	–	कैटलाग आफ पर्शियन मैनुस्क्रिप्ट्स इन दि लाइब्रेरी आफ दि इण्डिया ऑफिस नं. 1572
इलियट, टी0 एस0	–	नोट्स टुबर्डस दि डिफिनीशन आफ कल्चर लन्दन 1948
एलिजावेथ कूपर	–	हरम एण्ड दि परदा, लन्दन 1915
ओझा, पी0एन0	–	नार्थ इण्डियन सोशल लाइफ ड्यूरिंग मुगल पीरिएड, ओरियन्टल पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,दिल्ली 1975
कानूनगो, के.आर.	–	दाराशिकोह,कलकत्ता 1936, शेरशाह,कलकत्ता 1921
गुप्ता टी. सी. दास	–	एस्पेक्ट्स आफ बंगाली सोसाइटी कलकत्ता, यूनिवर्सिटी प्रकाशन, कलकत्ता 1935
	–	बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चुरी ए.डी. कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रकाशन, कलकत्ता 1914
गुप्ता, आर0वी0वी0ए0	–	हिन्दू हॉलीडेज कलकत्ता 1919
चक्रवर्ती मनमोहन	–	हिस्ट्री आफ मिथिला एण्ड हिस्ट्री आफ नवया नयाया
चोपड़ा, पी0एन0	–	सम ऐसपेक्ट्स आफ सोसायटी एण्ड कल्चर ड्यूरिंग दि मुगल एज, आगरा 1963
	–	सम ऐसपेक्ट्स आफ सोसल लाइफ ड्यूरिंग दि मुगल एज आगरा 1963

चोपड़ा, पी0एन0 - ए सोशल, कल्चरल एण्ड एकोनामिक

पुरी,वी.एन.,दास,एम.एन. - हिस्ट्री आफ इडियां, दिल्ली 1974

जेम्स, ई.ओ. - मैरेज एण्ड सोसाइटी

जेम्स इविंग - दाविस्तान-उल-मजाहिव, अंग्रेजी अनुवाद 1843

जफर शरीफ - कानून-ए-इस्लाम, क्रूक विलियम, आम्सफोर्ड,1921

जैन, सतीश कुमार - प्रोगेसिव जैनस आफ इण्डिया, प्रकाशन शर्मन साहित्य संस्थान, प्रथम संस्करण 1975

जाफर, एस0एम0 - एजूकेशन इन मुस्लिम इण्डिया, पेशावर, 1936

टॉड जेम्स - ऐनल्स एण्ड ऐण्टीक्यूटीज आफ राजस्थान सम्पादक, विलियम क्रुक, कलकत्ता 1960

टाइटस एम0टी0 - इण्डियन इस्लाम,आक्सफोर्ड,यूनिवर्सिटी प्रेस 1930

डफ, जेम्स ग्रान्ट - ए हिस्ट्री आफ दि मराठाज, भाग 1-3 कलकत्ता 1912

ताराचन्द्र डा0 - इन्फलुएन्स आफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर इलाहावाद 1954

त्रिपाठी, मोती लाल - बुन्देलखण्ड दर्शन झाँसी,1988

थामस पी0 - हिन्दू रिलिजन कस्टम्स एण्ड मैनर्स बम्बई 1954

थामस एच0 वानडे वेल्डे - आइडियल मैरेज

दुवोइस (व्यूचम) - हिन्दू मैनर्स कस्ट्मस एण्ड सोरीमनीज आक्सफोर्ड 1906

घुर्ये, जी0एस0 - कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया, न्यूयार्क 1950

निन्जार, वी0एस0 - पंजाव अण्डर दी लेटर मुगल्स, जालन्धर 1972

निजामी, के.ए. - स्टडीज इन मेडीवल इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, इलाहावाद 1956

पन्त, डी0 - कामर्शियल पालिसी आफ दी मुगल्स डी.वी. तारापोरी वाला एण्ड संस बम्बई 1930

पाण्डेय, राजवली - ए सोशियों रिलिजस स्टडी आफ दि हिन्दू सैकरेमेन्ट्स, विक्रम पाब्लिकेशन्स भदेनी, वनारस, 1949

- हिन्दू संस्कार वाराणसी 2014

पर्सी ब्राउन - दि इण्डियन आर्किटेक्चर (दि इस्लामिक पीरियड) तारपोरेवाला, वाम्बे

फारूकी जेड - औरंगजेव एण्ड हिज टाइम, इदारा-ए-अदबियात देहली 1972

बेम्बर गैसकोइन - दी ग्रेट मुगल्स नयी दिल्ली

ब्राउन, इ0जी0 - हिस्ट्री आफ पर्शियन लिटरेचर इन मार्डन टाइम्स (1500-1924)

बुहलर जी0 - द लाज आफ मनु, आक्सफोर्ड, 1886

बेनी प्रसाद - हिस्ट्री आफ जहांगीर

महालिगंम, टी0वी0 - एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड सोशल लाइफ अन्डर विजयनगर, मद्रास 1940

मदनी, अब्दुल कययूम - बुन्देलखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास झाँसी, प्रथम संस्करण 2002

मुजीव एम0 - इस्लामिक इन्फलुएन्स आन इण्डियन सोसाइटी मेरठ 1972

माथुर एन0एल0 - रेडफोर्ट एण्ड मुगल लाइफ, दिल्ली, 1964

मजुमदार, वी0पी0 - सोशियो एकोनामिक हिस्ट्री आफ नार्दन इण्डिया, कलकत्ता 1960

मेजर वक, सी0एच0 - फेप्स फ्रेयर एण्ड फेस्टीवेल्स आफ इण्डिया, कलकत्ता 1917

मुकर्जी, इला - सोशल स्टेट्स आफ नार्थ इण्डियन विमेन, आगरा 1972

मोरलैण्ड, डब्लू0एच0 - इण्डिया ऐट दि डेथ आफ अकबर, लन्दन 1920

मुहम्मद लतीफ (सैयद) खान वहादुर - आगरा हिस्टारिकल एण्ड डिस्क्रिप्टिव, कलकत्ता 1896

यासीन मुहम्मद - ए सोशल हिस्ट्री आफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ, 1958, प्रथम संस्करण

रिसले हरवर्ट - दी पीपुल आफ इण्डिया, 1960

रेड, चार्ल्स - कैटलाग आफ दि पर्शियन मैनुस्क्रिप्टस इन दि विट्रिश म्युजियम

रांस, ई0 डेनियस - एन एल्फावेटिकल लिस्ट आफ दि फीस्ट्स एण्ड हॉलिडेज आफ दि हिन्दूज एण्ड मुहम्डंस, कलकत्ता, 1914

- हिन्दू मुहम्डन फीस्ट्स, कलकत्ता 1944

रो, सर टामस - दि एम्वेसी आफ टू दि कोर्ट आफ दि ग्रेट मुगल्स, सम्पादक बिलियम फास्टर लन्दन 1899

ला, नरेन्द्र नाथ - प्रमोशन आफ लर्निंग इन इण्डिया ड्यूरिंग मुहम्मडन रूल, लन्दन, संस्करण 1916

लोक कोर्टी ने - फर्स्ट इग्लिश मेन इन इण्डिया, प्रकाशन जार्ज रोटलेज एण्ड संस, लन्दन 1931

वेस्टमार्क - मैरेज

विन्सेन्ट ए0 - हिस्ट्री आफ फाइन आटर्स इन इण्डिया एण्ड सिलोन

शियरिंग - हिन्दू टाइम्स एण्ड कास्टस, भाग-1, बनारस 1872

शर्मा, एस0आर0 - भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास,आगरा 1937

शर्मा, श्रीराम - दि रेलिजस पालिसी आफ दि मुगल एम्पर्स, आक्सफोर्ड 1940

- स्टडीज इन मेडिवल इंडियन हिस्ट्री, शोलापुर 1956

- मुगल गवर्नमेन्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, बम्बई 1951

सक्सेना, वनारसी प्रसाद - मुगल सम्राट शाहजहाँ जयपुर, 1974

सरकार जदुनाथ - हिस्ट्री आफ औरंगजेव भाग-5 कलकत्ता 1912-25

- चैतन्य की लाइफ एण्ड टीचिंगस, एस.सी. सरकार एण्ड सन्स कलकत्ता 12

- एनेकडोट्स आफ औरंगजेव एण्ड अदर हिस्टारिकल एसेज, द्वितीय संस्करण 1925

- स्टडीज इन मुगल इण्डिया, कलकत्ता 1919

- इण्डिया आफ औरंगजेव

स्लीमैन डब्लू.एच. - रैम्बल्स एण्ड रिकलेक्शनस्, भाग-1

सूफी, जी.एम.डी. - अलमिन्हाज, लाहौर 1941

स्मिथ, वी0ए0 - अकबर दि ग्रेट मुगल आक्सफोर्ड, 1919

सै0 सुलेमान नदवी - दी एजूकेशन आफ हिन्दूज अण्डर मुस्लिम रूल, कराची, 1963

ह्यूग, टी.पी. - ए डिकशेनरी आफ इस्लाम, लन्दन, 1885

हैवेल, ई.वी. - इण्डियन आर्किटेक्चर, लन्दन 1913

त्रिपाठी, राम प्रसाद - राइज एण्ड फाल आफ दि मुगल एम्पायर इलाहावाद 1955

श्रीवास्तव, हरिशंकर - मुगल शासन प्रणाली दिल्ली 1974

- मुगल कालीन भारत,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पन्नी आगरा संशोधित संस्करण 1065

श्रीवास्तव,आशीर्वादी लाल - मुगल कालीन भारत, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पन्नी, आगरा संशोधित संस्करण 1065

- अकबर दी ग्रेट, भाग-1, आगरा 1964, भाग-2, आगरा 1967

सतीशचन्द्र - पार्टीज एण्ड पालिटिक्स ऐट दि मुगल कोर्ट अलीगढ़ 1959

- उत्तर मुगलकालीन भारत का इतिहास, मेरठ 1974

सागर, सत्यप्रकाश – क्राइम एण्ड पनिशमेन्ट इन मुगल इण्डिया दिल्ली 1947

शरण, परमात्मा – स्टडीज इन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री दिल्ली 1952

– दि प्राविन्शियल गवर्नमेंट आफ दि मुगल्स इलाहावाद 1941

गजेटियर्स, जरनल्स एण्ड मैगजीन्स :-

ओरियन्टल कालेज मैगजीन, लाहौर (उर्दू) अगस्त, 1937 भाग-3, नं. 41
आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट, भाग-8 तथा भाग 23 ।
इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया, जिन्द प्रथम।
इण्डियन कल्चर, भाग-4, नं. 1, 1937 ।
इस्लामिक कल्चर, अप्रैल, 1934 ।
कलकत्ता रिव्यू 138वीं प्रति, जनवरी 1956, नं. 4 ।
कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, गीताप्रेस गोरखपुर
कलकत्ता मन्थली, 1971 ।
जरनल पंजाव हिस्टोरिकल सोसाइटी।
जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी (वाम्बे) -3 ।
जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री अप्रैल 1960 ।
जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, भाग-4, 1938 ।
जरनल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता, 1935 ।
जरनल आफ यूनाइटेड प्रोविनसेस हिस्टोरिकल सोसाइटी, जुलाई 1942 ।
जरनल आफ वेन्कटेस्वर ओरियन्टल इन्स्टीटयूट, तिरूपति, भाग-7, 1946 ।
जरनल एण्ड प्रोसीडिंग आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल, कलकत्ता 1924, 1926 ।
जरनल आफ दि डिपार्टमेण्ट आफ लेटर्स, 8वी प्रति, कलकत्ता यूनिवर्सिटी 1922।
जरनल आफ दी यू.पी. हिस्टोरिकल सोसाइटी इलाहाबाद प्रति सं. 26,16 ।
प्रोसिडिंग आफ दी इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, नाइन्थ सेशन, पटना, 1946 ।
मार्डन रिब्यु, जनवरी 1924, अक्टूवर 1923 ।
मधुमती, अप्रैल-जुलाई 1962, राजस्थान साहित्य अकादमी।
सेन्सस आफ इण्डिया, भाग-1, अनुभाग-3, 1931ई.।
सेन्सस रिपोर्ट आफ सेन्ट्रल प्राविन्सेस।
बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियन्टल एण्ड अफरीकन स्टडीज लन्दन-1 1917 ।

संकेताक्षर

इ० ग० ई०	–	इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया
इ० क०	–	इण्डियन कल्चर
ज० इ० हि०	–	जरनल आफ इण्डियन हिस्ट्री
ज०रा०ए०सो०	–	जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी
ज०यू०प्रा०हि०सो०	–	जरनल आफ यूनाइटेड प्राविनेंस हिस्टोरिकल सोसायटी
ज०प्रो०ए०सो०व०	–	जरनल एण्ड प्रोसीडिंग आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ वंगाल
ज०रा०ए०सो०व०	–	जरनल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी आफ वंगाल